मालवी आख्यान

मध्यप्रदेश के मालवा जनपद की गाथाएँ

डॉ. पूरन सहगल

मालवी आख्यान

मध्यप्रदेश के मालवा जनपद की गाथाएँ

डॉ. पूरन सहगल

प्रधान सम्पादक
रेनू तिवारी

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल-462002
फोन – 0755-2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2015 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/- रुपये (तीन सौ केवल)

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

ISBN -978-93-83899-06-7

आख्यान अपने जनपद के भूगोल, वहाँ के निवासियों का स्वभाव, व्यक्तित्त्व और तमाम तरह के जीवनानुभव को अपने में संरक्षित किये हुए होता है। जनपदीयता में इन आख्यानों के उत्स और प्रचलन का यही मूल कारण भी रहा है। सभी जनपद के आख्यान अपनी कथावस्तु में पृथक होते हैं। आख्यान का गान एक-दूसरे जनपद में तो हो सकता है, लेकिन उनमें व्यक्त विचार का संश्लेष तो उसी जनपद में पाया जायेगा, जहाँ वह पैदा हुआ है। इन अर्थों में एक आख्यान की भूमि निश्चित होती है। आख्यानों में केन्द्रीय रूप से मनुष्य की इच्छाओं, प्रवृत्तियों, गुण-अवगुण आदि मनोजगत की समस्त आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। जनपद के एक आख्यान में यदि उत्सर्ग की कथा केन्द्रीय है, तो उस जनपद के दूसरे आख्यान भी उत्सर्ग, त्याग या बलिदान की प्रवृत्तियों को ही व्यक्त करते प्रायः मिलते हैं। ऐसा नहीं होता कि जनपद का एक आख्यान तो उत्सर्ग की बात करे और दूसरा मोह को व्यक्त करता हो। इसी प्रकार से एक तथ्य की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि आख्यान में व्यक्त मूल प्रवृत्तियों और नायक-नायिकाओं के कथा चरित अनुसार ही उस जनपद के मूल निवासियों का स्वभाव पाया जाता है। आख्यान एक तरह से उस जनपद के निवासियों की प्रवृत्तियों का गान है।

मानव की अच्छी प्रवृत्तियों का गान तो समझा जा सकता है, लेकिन बुरी प्रवृत्तियाँ गान का हिस्सा क्यों हुई होगी? इस पर भी विचार की आवश्यकता है। हमारी समग्र स्वीकृति ही सम्भवतः इसका मूल कारण रही हो। अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, मोह-त्याग, संलिप्तता-निर्लिप्तता आदि सभी पक्ष जीवन के लिए आवश्यक हैं। दोनों ही प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से पुष्ट होती हैं। हमारी सम्वेदनाओं-

मनोभावों को गान माध्यम में अधिक निकट तक प्रस्तुत किया जा सकता है। अभिव्यक्ति के अन्य पक्ष उतने कारगर सिद्ध नहीं होते।

मध्यप्रदेश पाँच सांस्कृतिक जनपदों में विभक्त है- जो क्रमशः बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, चम्बल, निमाड़ और मालवा के नाम से जाने जाते हैं। यह जनपदीय विभाजन सांस्कृतिक और भौगोलिक वैविध्य के कारण है, जिसमें बोली-भाषा, रहन-सहन, पहनावा और खान-पान केन्द्रीय है। इन्हीं कारणों से जनजीवन और उससे निर्मित परम्पराओं में भेद भी है।

मालवा जनपद में पाये जाने वाले आख्यानों की मूल प्रवृत्ति में त्याग की अभिव्यक्ति प्रमुखता से हुई है। मालवी भाषा के तीन आख्यानों क्रमशः राजयोगी भरथरी, ढोला-मरवण और पाबूजी के जीवन चरित पर आधारित इन गाथा गीतों का संकलन एवं अनुवाद अकादमी के अनुरोध पर मालवी लोक साहित्य के अध्येता डॉ. पूरन सहगल ने किया है।

आशा है लोक साहित्य में उत्सुक पाठकों-अध्येताओं को यह प्रयास रूचिकर लगेगा। और वे अपनी प्रतिक्रिया से अवगत भी करायेंगे।

- अशोक मिश्र

अनुक्रम

पुरोवाक्	—	9
राजयोगी भरथरी	—	39
ढोला–मरवण	—	121
लोकदेवता पाबू धरमी	—	185

पुरोवाक्

लोक जीवन और लोक साहित्य का सम्बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसा जल और कुंभ का। दोनों एक दूसरे के पूरक एवं धारक हैं। दोनों में से एक का भी अस्तित्त्व कमतर नहीं आँका जा सकता। 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' से बहुत आगे एक सात्विक, समर्थवान और प्राणवान अर्थ सम्पन्न शब्द है। यों कहा जाए कि लोक केवल शब्द होने के बजाए लोक जीवन का प्रतिनिधि भी है। लोक एक आस्तिक परंपरा है। वह स्वाभिमानी, निर्दंभी और निर्विकारी भाव मुक्त सारतत्त्व का सजग पहरुआ है। यह लोक साहित्य उसी परम–चरम ऊर्जावान 'लोक' का चित्रगुप्त है। इसीलिए वह जनप्रतिनिधि कहलाने का उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वाह भी है। वह लोक भी है, लोक का प्रतिनिधि भी है। वह स्वरूप भी है। छाया भी है। माया भी है। वह लौकिक होकर भी पारलौकिक एवं पारदर्शी है।

लोक साहित्य का सर्जक स्वयं लोक ही होता है। इसीलिए लोक साहित्य को सर्वजनीन सर्वस्वीकृत और सर्वमान्य कहा जाता है। यह लोक मान्य साहित्य पारंपरिक होते हुए भी सदा युगानुकालिक, प्रासंगिक एवं नित नवीन बना रहता है।

पारंपरिक एवं श्रुति आधारित होने के कारण इसमें पाठांतर और भाषांतर होना एक सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह देशकाल से भी परे होकर असीम और अपरिमित होता है। लोक साहित्य की यात्रा पैरों पर नहीं पदों पर होती है। यह सात समंदर पार की यात्रा करता हुआ 'सच्चा सौदा' करके लौटता है। यह कह पाना बहुत कठिन है कि वह कहाँ कितना छोड़ आया और कहाँ से कितना ले आया। यदि कोई

लोककथा, लोकगाथा या लोकगीत अथवा लोक साहित्य की कोई विधा पंजाब में कही–सुनी जाती है, तो वही मालवा में भी कही–सुनी जाती है। उदाहरण के लिये गोगा पीर की गाथा राजस्थान, मालवा से लगाकर सुदूर पंजाब में भी सुनी–कही जाती है। यह बात भिन्न है कि इसमें भाषांतर और पाठांतर हुआ है, जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसी प्रकार भर्तृहरि और गोपीचन्द की लोकगाथा सुदूर सिंध तक गायी जाती है। भाषा और लोक संगीत में किंचित अन्तर के अतिरिक्त कोई भी परिवर्तन नहीं पाया जाता।

भर्तृहरि जिन्हें विक्रमादित्य का ज्येष्ठ भ्राता कहा गया है। इन्हें इस गाथा के अनुसार तथा उपलब्ध अन्य लोक गाथाओं–कथा गीतों एवं किंवदंतियों के अनुसार परमवीर, परम ज्ञानी एवं परम भोगी कहा गया है। तीनों गुणों के अतिरिक्त वे नीतिशास्त्र के ज्ञाता थे। नीति शतक, श्रृँगार शतक वैराग्य शतक एवं वाक्यपदीय जैसे कालजयी ग्रंथों के सर्जक भर्तृहरि ही थे।

भोग की अतिशयता निश्चित रूप से विरक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। जिस प्रकार धन की तीन स्थितियाँ दान, भोग और नाश बखानी गई है, उसी प्रकार भोग की भी तीन स्थितियाँ हैं। भोग की अतिशयता से एक न एक दिन उचाट की स्थिति और वैराग्य की जागृति होती है।

भर्तृहरि के साथ भी यही हुआ। वे अंततः राजा से योगी बन गए– और लोक में 'राज योगी भरथरी' कहलाए। गोरख से उनका सम्पर्क और उनकी उनसे दीक्षा पर यहाँ चर्चा नहीं करना है। इसका तार्किक उत्तर संग्रहीत गाथा में से ही खोजना होगा। लोक उन्हें गोरख का ही शिष्य मानकर उन्हें नाथ सम्प्रदाय का योगी मानता है। यह नाथ सम्प्रदाय की लोक आस्था और स्वीकृति का ही प्रतिफल है। उन्हें कहीं भी 'भरथरी नाथ' नहीं कहा गया है। केवल भरथरी ही कहा गया है। नाथ योगी भरथरी को सारंगी पर पूरे अंचल में खूब गाते आ रहे हैं। भरथरी के चरित्र को लेकर अनेक नाट्य प्रदर्शन भी हुए हैं। लोक में वे बहुत ख्याति सम्पन्न योगी है। लोक गायक अधिकतर पिंगला प्रसंग को गाते हैं। भरथरी की लोक गाथाएँ लगभग उत्तरी भारत के सभी अंचलों में वहाँ की लोक बोली में गायी–बजायी जाती हैं। यहाँ संग्रहीत गाथा उनके जीवन के अनेक प्रसंगों पर ही प्रकाश नहीं डालती है, बल्कि उनके जन्म से (पूर्व जन्म से भी) योग सिद्धि होने तक का लोक प्रमाणिक चित्रण भी है। यही इस गाथा की विशेषता भी है। इतना विशद् एवं सम्पूर्ण चित्रण अन्यत्र कहीं भी एक स्थान पर नहीं मिलता ।

लोक साहित्य का ही एक महत्त्वपूर्ण पक्ष विरद बखाण या गाथा साहित्य है।

लोक गाथाएँ किसी वीर पुरुष के वीरत्व, देवपुरुष के देवत्त्व अथवा दानदाता के दानतत्त्व के कथानक का गीतमय संयोजन होती है। इनकी भाषा सहज, सरल और बोधगम्य होती है। संवादात्मक शैली में सृजित ये लोक गाथाएँ अथवा विरदें वस्तुतः अपने नायक के प्रति आस्था का विनम्र निवेदन है। इन गाथाओं का संयोजन नाट्यशैली में होता है। सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं पर आधारित ये गाथाएँ मूल रूप से महाकाव्य के विधान के अनुसार विकसित की जाती हैं। इनकी संरचना इतनी सहज होती है कि इन्हें सामान्यजन बिना किसी बाधा के समझ लेता है। लोक कथाएँ और गाथाएँ हमारे लोक साहित्य एवं संस्कृति की झिलमिलाती, मनभावन और तम हरणी दीपमालाएँ हैं। इन्हें किसी सूर्य की प्रतीक्षा नहीं होती, ये स्वयं प्रज्ञ एवं अज्ञ और ज्योर्तिमय होती है।

इन गाथाओं के गायक एवं सर्जक दोनों ही लोक के सामान्य जन ही होते हैं। कभी–कभी इसके सर्जक और गायक एक ही वर्ग के भी होते हैं। परंपरा से वाचिक रूप में बखानी जाने वाली ये लोक गाथाएँ जनआस्था के प्रतीक रूप में खेड़े–खेड़े–ढाणी, ढाणी गायी और प्रदर्शित की जाती हैं।

जिस प्रकार लोकगाथा साहित्य, लोक साहित्य की प्राचीन लोक विधाओं में से एक लोक स्वीकृत विधा है। उसी प्रकार इसका प्रदर्शन भी बहुत ही रोचक और आस्थापरक है। इसके वाचन को पड़ वाचन या पड़ प्रदर्शन कहा जाता है। अपने–अपने पूज्य देवता के चरित्र को एक पट (वस्त्र) पर चित्रित किया जाता है। लोक गायक गाँव के किसी सार्वजनिक स्थान पर उस पट या पड़ को टाँग देता है। उस क्षेत्र में अंधेरा रखा जाता है। लोक गायक जिस घटना का अपनी गायिकी द्वारा बखान करता है, लोक गायक की सहयोगी उसकी पत्नी पड़ पर अंकित उसी घटना वाले चित्र पर प्रकाश डालकर बखान को दोहराती है। इस प्रकार घटनाओं का क्रमिक विकास होता जाता है। गाथा और पड़ का चित्रांकन दृश्यपूर्ण हो जाता है। यह अद्‌भुत चित्र–प्रकाश गाथा संयोजन छाया प्रकाश का प्राचीनतम उपक्रम है। जिस प्रकार लोक साहित्य का सीमा निर्धारण संभव नहीं है, उसी प्रकार लोक गाथाओं के लोक नायकों के प्रति आस्था भाव की सीमा निर्धारित कर पाना भी असंभव है।

बाबा रामदेव को पूरा मेवाड़, मारवाड़ बल्कि समूचा राजस्थान जिस आस्था से पूजता है, उतनी ही आस्था से समूचा मालवा–निमाड़ भी पूजता है। देवनारायण केवल राजस्थान के ही लोक देवता नहीं है, वे तो मालवा में भी उसी भाव से आराधे जाते हैं। मालवा तो देवनारायण पर और भी अधिक आस्था रखता है। मालवा–देवास तो उनका ननिहाल है। बचपन से युवा होने तक देवनारायण मालवा में ही रहे हैं। इतना ही नहीं,

नागदेवी ने धार के अपने भाई खागलदेव की पुत्री पीपलदे से उनका विवाह करके देवनारायण जी को मालवा का जंवाई भी बना दिया। इनकी गाथा को 'भारत' के रूप में गाया जाता है। इनकी गाथा का पड़वाचन भी किया जाता है। प्रकारांतर में धार मालवा में नागवंशीय राजाओं की सत्ता का होना भी इस गाथा से स्पष्ट होता है। शोधार्थियों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है।

पाबूजी की पड़ गाथा तो अनेक वर्षों से मालवा में उनके गायक भोपों द्वारा बाँची–बखानी जाती है। दशपुर जनपद तो इन भोपों का प्रिय क्षेत्र रहा है। वे यहाँ बस भी गए हैं। आमेरी कंजार्ड़ा पठार और पामाखेड़ा झार्ड़ा क्षेत्र में इनके स्थाई निवास हैं।

गोगाजी की पूजा भी नागदेवता के रूप में की जाती है। वे वासक नाग के ही अवतार माने जाते हैं। इन्हें केवल राजस्थान या मालवा में ही नहीं, महाराष्ट्र–पंजाब और सिंध क्षेत्र में भी पूजा–आराधा जाता है। गोगाजी, पाबूजी के जंवाई थे। पाबूजी की भतीजी और बूड़ाजी की बेटी केलमदे का विवाद गोगाजी से हुआ। पाबूजी सिंध के लंकास्थली क्षेत्र के शक्तिशाली राजा दूदा सूमरा से सांडनियाँ (साँडें) छीनकर लाए थे। इस प्रकार राजस्थान में साँडें लाने वाले पाबूजी ही थे। ये साँडें उन्होंने (सौ सांडे) अपनी भतीजी केलमदे को हथलेवे में दीं और शेष राज्य में हरदलाइका ने पाला। यही कारण है कि ऊँट पालने वाली रेबारी जाति पाबूजी को विशेष रूप से पूजती है। लोक गायक ने इसी लंका स्थली को लंका तथा दूदा सूमरा को रावण कहा है। संभवतः सिंध नदी का विस्तृत जल क्षेत्र ही समुद्र रूप में बखाना गया हो। वैसे भी समुद्र और नदी दोनों को दरिया ही कहा जाता है।

लोक साहित्य की भाषा और उसका पाठ सदैव बदलता रहता है। इसका मूल कारण इसकी वाचिक परंपरा है। इसके गायक लगभग निरक्षर ही होते हैं।

उपरोक्त वर्णित देव पुरुषों में एक बात और समान रूप से देखी जा सकती है। इन सभी ने गायों की रक्षा में अपने प्राण निछावर किए थे। ये सभी वचन पालक, जन रक्षक एवं धर्मरक्षक थे। सत्य एवं सतीत्त्व की रक्षा इन सबका मुख्य आचरण रहा। सबके वाहन घोड़े–घोड़ियाँ थे। ये सभी घोड़े–घोड़ियाँ शक्ति सम्पन्न थी। पाबूजी की घोड़ी कालमी शक्ति का अवतार थी, तो तेजाजी की घोड़ी मनुष्यों की बोली बोलती थी। रामदेवजी का सीतला घोड़ा भी शक्ति सम्पन्न था। नाग के साथ सबका संबंध रहा। तेजल ने नाग को वचन देकर उनसे डँसवाया और फिर उसी रूप में वे पूज्य भी हो गए। गोगाजी तो स्वयं ही नाग के अवतार माने जाते हैं। देवनारायण एवं खागलदेव भी नाग विष उतारने में शक्ति सम्पन्न देवपुरुष मान्य हैं। इन सबके देवरे सर्वत्र स्थापित

हैं। पाबूजी की विशेष पूजा यदि रेबारी समाज करता है। तेजाजी की जाट समाज, देवनारायणजी की विशेष मान्यता गायरी और गुजर समाज करता है तो रामदेवजी को मेघवाल समाज पूजता है। मेघवाल समाज के संतों की तो मान्यता यह भी है कि बाबा रामदेवजी, राजा अजमलजी के पुत्र न होकर उनके सेवक सायर मेघवाल के पुत्र थे। डालीबाई भी उसी सायर मेघवाल की ही बेटी थी। इस प्रकार डालीबाई उनकी मुँहबोली नहीं, बल्कि सगी बहन थी। भगवान कृष्ण के संदेशानुसार सायर मेघवाल ने अपना पुत्र अपने स्वामी अजमल जी को पालने में ही दे दिया था। कृष्ण द्वारा जन्म के समय होने वाले अवतारी बालक के लक्षण घंटाल आदि बजना तथा कंकू के पगल्ये मंडना सायर मेघवाल के आँगन में हुए थे। अजमलजी का पुत्र तो वीरमदेव था, जो रामदेव जी से बड़ा था। रामदेवजी ने पूरे क्षेत्र में भैरू राक्षस के आतंक से मुक्त करवाया। उन्होंने वर्गभेद को मिटाकर समतामूलक समाज की स्थापना की। भैरू राक्षस संभवतः आज के आतंकवादियों की तरह ही कोई खतरनाक एवं शक्ति सम्पन्न आतंकी रहा होगा। संभव है उसका भी कोई संगठित दल हो। राजा भी जिसका सामना करने में अक्षम था। रामदेवजी ने उस आतंकवाद का अंत कर राज्य में सुख–शांति कायम की।

यह विषय शोधार्थियों के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि कृष्ण के बाद सार्वजनिक रूप से गोरक्षा के रूप में एक विशेष समय और क्षेत्र में अवतारी पुरुषों को अपने प्राणों तक निछावर करने पड़े। संभव है तब गौ ही धन हो, किन्तु विशेषकर मारवाड़ में लाखों गायों के भरण–पोषण की क्या सुविधा रही होगी? इसी प्रकार के नाग संदर्भों से उस क्षेत्र में नाग जातियों के वर्चस्व का संकेत तो नहीं करता? दशपुर जनपद में नाग देवताओं के अनेक देवरे हैं।

दशपुर क्षेत्र मेवाड़ और हाड़ौती के बीच का क्षेत्र है तथा मालवा का उत्तरी–पश्चिम भाग है। यहीं से मालवा का क्षेत्र प्रारंभ होता है। इन लोक देवताओं को इस क्षेत्र में पूरी आस्था और विश्वास के साथ बखाना जाता है। पूजा और आराधा जाता है। गाँव–गाँव में इनके देवरे हैं। गाँव–गाँव में इनके भोपे हैं। इनके देवरों पर दरबार लगता है। भाव होते हैं। न्याय होता है और रोग–सोग निवारण होता है।

मालवा के विभिन्न क्षेत्रों और बोलियों में भी इन लोक देवताओं की गाथाएँ बखानी जाती हैं। दशपुर में बखानी जाने वाली यह गाथा 'लोक देवता पाबूपाल धरमी' की विशेषताओं में मुख्य विशेषता इसकी स्थानीय मालवी दसौरी (दशपुरी) है। दशपुरी मालवा में बखानी जाने के कारण तथा किंचित पाठान्तर के कारण यह अब तक उपलब्ध गाथा पाबूजी की अन्य गाथाओं से भिन्न है। गायिकी के साथ वार्ता (कमेंटरी) परंपरा

अन्य कुछ गाथाओं में भी देखी जा सकती है। तेजाजी (वीर तेजल) की मेरे पास उपलब्ध गाथा में भी इसी शैली का निर्वाह किया गया है।

पाबूजी की गाथा में जो खास बात है वह यह है कि अन्य गाथाओं में जब देवली को उसकी गायें जिनराज खीची से छुड़वाकर पाबूजी लौटा देते हैं, तब वे स्वर्ग से आए विमान से स्वर्गारोहण करते हैं। इस गाथा में भी वे देवली से कहते हैं–'देवली अपनी गायें सम्हालो।' स्वर्ग से मेरा विमान आ गया है, अब मैं अपने देश जाऊँगा। तब देवली चारणी अपने तपोबल से उनके प्राणों को ढाबती (रोकती) है। उन्हें पाट पर बैठाकर उनकी आरती उतारती है। फिर उन्हें उनका यशगान बखान करके सुनाती है। गाथा सुनाने के पश्चात् देवली से वचन मुक्त पाबूजी जब विमान पर बैठना चाहते है, तब देवली चारणी उनसे निवेदन करती है कि आप तो शक्ति की अवतार केसर कालमी (घोड़ी) पर बिराजो, इसका भी अवतार काल पूरा हुआ। यही आपको आपके 'देस' ले जाएगी। पाबूजी देवली का मान रखते हैं। विमान आगे चलता है और केसर पर सवार पाबूजी पीछे। ऐसे कुछ पाठ भेद हैं जो इस गाथा को बहुत भावुक बना देते हैं। कथानक की रक्षा सभी गाथाओं में समान रूप से एक जैसी हो ही गई है।

इस गाथा का अंतिम दृश्य बहुत भावुक है। ऐसा ही तेजल धोल्या की गाथा में भी है। दर्शक–श्रोता भाव विभोर हो उठते हैं। सबकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। मैंने तेजल और पाबूजी की गाथाओं को कई बार सुना है। बाबा रामदेवजी की गाथा–कथा को भी सुना है। अन्तिम स्वर्गारोहण के क्षणों को लोक गायक अपनी भावपूर्ण वाणी में प्रस्तुत करता है, तब समूचा माहौल शोकाकुल हो उठता है। मैंने इन आख्यानों में महिलाओं को सुबकते हुए तथा वृद्धजनों को पगड़ी के छोर से आँखें पोंछते हुए देखा है।

प्रस्तुत लोकगाथा 'लोक देवता पाबू धरमी' मैंने पहली बार महागढ़ रहते हुए दुरगपुरा गाँव में पड़ावरत भोपों से सुनी तथा उसका पड़वाचन दृश्य भी देखा था। यह घटना सन् 1970 ईस्वी के मई महीने की है। उसके बाद डूंगजी–जवारजी पर शोध करने के दौरान भी लोक गायकों से पाबूजी, तेजाजी, देवनारायणजी और राममदेवजी के आख्यान सुने। इस दौरान मेरा सम्पर्क लोक गायकों से विशेष रूप से रहा। फिर चन्द्रसखी पर शोध के दौरान मेरा सम्पर्क बर्रामा के ठा. शिवदानसिंहजी कछेला से हुआ। उनसे भी इन गाथाओं के कुछ अंश व गद्य कथा–गाथाएँ सुनी। उन्हीं के निर्देश पर मेरा सम्पर्क ढाणी के मेहदानसिंह काछेला से हुआ। उनकी उम्र लगभग पिच्चासी वर्ष की रही होगी। उनसे तीन–चार बार सम्पर्क हुआ। उनसे यह गाथा पूरी तरह से

सुनी और लिखी। लिखने के बाद उन्हें सुनाई भी, उनकी संतुष्टि पाकर मैंने इसे पूर्णता दी। मेहदान जी काछेला ने बताया कि यह पूरी गाथा उनकी बड़ी पत्नी रुगमा को पूरी तरह याद थी। कई बार वह रेबारी समाज में उसका वाचन भी करती थी। तभी मैं भी उसके साथ उसका सहयोग करता था। इसीलिए मुझे भी याद है। बाद की पीढ़ी को याद नहीं है। आप कागज पर उतार रहे हैं तो यह पाबूजी की गाथा अमर रह जाएगी। रुगमा को तो पता नहीं कितने भजन और कथाएँ याद थे। अब किसी को भी याद नहीं है। रुगमा जब सुनाती थी, तब उसे भान ही नहीं रहता था कि उसका लुगड़ा कहाँ जा रहा है। जबकि, वह डेढ़ हाथ का घूँघट काढ़ती थी। ऐसा लगता था मानों उसे शक्ति भवानी का भाव आ गया हो। वह शक्ति भवानी की सवेरे शाम दो–दो घंटे पूजा करती थी। दोनों नवरात्रे निराहार रहकर माता के व्रत करती थी। देखा जाए तो रुगमा शक्ति ही थी। हम कछेलों में गायें पालना और शक्ति भवानी को पूजना यही बड़ा धर्म है। हमारी औरतें यह सब काम करती हैं। वे कविता भी करती हैं। पक्की बात तो नहीं कहता, किन्तु हो सकता है यह गाथा उसी ने रची हो। इतना कहते–कहते मेहाजी कछेला (उन्हें इसी संबोधन से पुकारते थे) भाव–विभोर होकर मौन हो जाते हैं।

लोक देवता देवनारायण की पड़ पर राजस्थान में तो बहुत काम हुआ है। डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. पुष्पेन्द्र मेनारिया, रानी लक्ष्मीकुमारी चुंडावत, शिवसिंह चोयल 'जुगनू' ने देवनारायण पर शोधपूर्ण कार्य किये हैं। श्री भगवतीलाल जोशी ने तो देवनारायण पर विस्तृत शोध कार्य किया है। दशपुर जनपद की दसौरी मालवी की देवनारायण की गाथा का भी अपना महत्त्व है। इस क्षेत्र में देवनारायण के अनेक देवरे हैं।

लोक आस्था के इन लोक देवताओं की गाथाओं के अतिरिक्त नाथ लोक गायकों द्वारा गायी जाने वाली 'राजा भरथरी' की गाथा का महत्व भी इस क्षेत्र में बहुत है।

ढोला–मरवण की गाथा जिसे हम प्रेमगाथा और वीरगाथा दोनों में गिन सकते हैं। पूरे मालवा और राजस्थान–गुजरात में अलग–अलग ढंग से बखानी जाती है। इन लोकाख्यानों की विशेषता यह है कि इन्हें मंच पर खेलना बहुत सहज है। आख्यान गायिकी के साथ–साथ सूत्रधार की कमेंटरी इनकी अतिरिक्त विशेषता है। ढोला–मवरण की मूल कथा गुजरात की हो या राजस्थान की, इसकी पहचान और बखान की परम्परा पूरे उत्तरी भारत में है।

आज ये सभी आख्यान और इनके गायक समाप्त होते जा रहे हैं। इन आख्यानों में लोक संस्कृति की जो भीनी–भीनी सुगंध है, वह अद्‌भुत है। वस्तुतः ये गाथाएँ, विरदें,

आख्यान हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रमाणिक दस्तावेज हैं। इन्हें सम्हालना, इन्हें खोजना, इनका संपादन करना तथा इन पर अनुशीलनपरक दृष्टि से शोध करना बहुत आवश्यक है। यह कार्य हमें लोक धर्म पालन की दृष्टि से करते रहना चाहिए।

प्रस्तुत संकलन में तीन गाथाएँ संकलित हैं– राजयोगी भरथरी, ढोला–मवरण का प्रेमाख्यान एवं लोक देवता पाबूधरमी। तीनों लोक गाथाएँ तीन भावों एवं रसों का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। आध्यात्म, प्रेम (विरह) एवं वचन पालन। वीररस तीनों गाथाओं में प्रस्तुत है। यदि हम आध्यात्म, प्रेम और वीर रस को एकमेव कर दें, तब उसमें से जो लोक मंगल का भाव प्रकट होगा, वह लोककल्याणी भाव होगा। गंगा, यमुना और सरस्वती जैसा है यह गाथा त्रिवेणी संगम। मालवी लोकभाषा का यह लोक मंगल मालवी माता के चरणों में तीन कमलों का वन्दनीय उपहार है। श्वेत, श्याम और लाल कमलों की यह युति बिहारी के उस दोहे का स्मरण करवा देती है।

अमिय हलाहल मदभरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि–झुकि परत, जेहिं चितवत इकबार।।

तीनों लोकगाथों का भी प्रभाव ऐसा ही है। पढ़ते–सुनते कभी भरथरी का वैराग्य भाव जागृत हो उठता है, कभी मरवण की विरह व्याकुलता हृदय में पीड़ा जागृत कर देती है तथा कभी पाबू धरमी की वचन पालन की प्रतिबद्धता और गौओं की रक्षा करते–करते प्राणोत्सर्ग का उन्मेष। तीनों मानवीय भावों का समन्वय मानव मूल्यों को रक्षित–सुरक्षित कर लोक गाथाओं के प्रति वंदनीय भाव प्रकट करने को उद्यत मन भाव विभोर हो उठता है।

इस कारण मैंने इसे 'मालवी लोक गाथाओं की त्रिवेणी' कहा है। वस्तुतः यह गाथा ग्रंथ वैराग्य, वेदना और वीरत्त्व का ग्रंथ है।

यदि यह संकलन प्रकाशित होकर लोकार्पित होता है, तब इसका सीधा श्रेय श्री अशोक मिश्रजी को जाता है। उनका आश्वासन और प्रोत्साहन मुझे अपने संग्रह को पुनर्जीवित करने की श्रम साधना का बल मिला।

तार–नितार

लोक पुरुषों के चरित्र को समझना और समझकर पुनः ले जाकर लोक को ज्योर्तिमय करना, अभीष्ट हो तब हमें सबसे पहले लोक में जाकर उन्हें खोजना होगा।

राजयोगी भरथरी हों अथवा महाराजा वीर विक्रमादित्य या फिर सरस्वती पुत्र महाराज भोज या फिर दशपुर के यशोधर्मन मालवा–मेवाड़ के लोक देवता देवनारायण, पाबूजी, तेजाजी, रामदेव जी। कृष्ण–राम तथा सभी अवतारी देवपुरुष वस्तुतः लोक में ही रमते हैं। लोक में ही उनका वास्तविक स्वरूप सुदर्शित होता है। बड़े–बड़े महाकवियों ने उन्हें इतना श्रृँगारित कर दिया गया है कि उनका लोक स्वरूप निखरकर लोक में अलौकिक हो गया है।

लोकपुरुष की न तो कोई परिभाषा की जा सकती है और न ही कोई विशेष पहचान। लोक पुरुष में लोक की सहजता, विशाल हृदयता, निर्दंभता, निर्विकारिता और सौम्यता होती है। धैर्य एवं सहनशीलता उनके स्थाई गुण हैं। लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति ही उनके लिए प्रमाणिक आचार संहिता, इष्ट और अभीष्ट होती है। यदि यूँ कहा जाय कि वे ही लोक संस्कृति के सर्जक, संवाहक और संरक्षक भी होते हैं।

इनके चरित्र को लोक से खोज लाना अनेक पत्थरों को तोड़कर हीरा निकाल लाने जैसा श्रम साध्य, अर्थ साध्य, समय साध्य एवं धैर्य साध्य कार्य है। हताशा और निराशा का इस दुष्कर कार्य में कहीं भी स्थान नहीं है। लोक साहित्य का यायावर शोधार्थी भी अपने अभीष्ट लोक नायकों के ही समान अपरिभाष्य होता है। वह अथाह सागर में गहरी गोतें लगाकर रत्नमणियाँ खोजने का महत्त कार्य करता है। वह न तो कभी थकता है न हताश होकर शोध संकल्प से च्युत होता है। निन्यानवे प्रयत्नों के पश्चात् भी वह रत्न मणियाँ खोज लाने के प्रयत्न में जुटा रहता है। अन्ततः वह सफल भी हो जाता है।

लोक के साहित्य पर चर्चा करने से पहले हमें लोक को समझना होगा। लोक, जिसे अगम, अपार और अपरिमित कहा जा सकता है। लोक, जिसका ओर–छोर नापना सम्भव नहीं लगता। ऐसे लोक को किन्हीं शब्दों में बाँध लेना बहुत कठिन है। इसका न आदि है न अंत। जहाँ तक यह कायनात हमें दिखलाई पड़ती है, वहाँ तक लोक है। जहाँ तक हमारी सोच–स्मृति, समझ या साक्ष्य पहुँच सकती है, वहाँ तक लोक है।

लोक का अर्थ 'दृष्टा' होता है। इसलिए वह दृष्टा है। वह हमारी समस्त गतिविधियों का साक्षी होता है। पुराणों, अरण्यकों, उपनिषदों और लोककथा, गीतों की यश कीर्तियों में लोक व्याप्त है। जिस प्रकार ईश्वर लोक में व्याप्त है, उसी प्रकार यह समग्र लोक ईश्वर में व्याप्त है। ईश्वर अर्थात् लोक! लोक अर्थात् ईश्वर! वेदव्यास ने जब कहा होगा– प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवैन्नरः' तब बहुत सोच–समझकर कहा होगा। व्यासोवाच अर्थात् कृष्णोवाच और कृष्णोवाच अर्थात् ईश्वरोवाचः।' श्रीमद्भगवद्

गीता श्रुति से स्मृति और फिर कृति बनी। भगवान कृष्ण ने कहा– अर्जुन ने सुना। व्यास ने समझा, जाना और उसे भाषा दी। जैमिनीय ब्राह्मण ग्रंथ का उद्घोष है– 'बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः' यह उसकी बहुमुखी विस्तीर्णता की और सर्वव्याप्ति की व्यवस्था है। तीनों लोकों में जो हम देख सकते हैं अथवा कल्पना कर सकते हैं, उन सबको लोक ही कहना होगा। लोक अर्थात् जीवन की समग्रता, सहजता एवं सम्प्रभुता।

वेद भी लोक में ही व्याप्त है। इसीलिए उन्हें 'आगम' कहा गया है। वेदों का आगम लोक से हुआ। यदि वेद अपौरिषेय है, तो उनका सबसे प्रथम आगमन लोक में हुआ, ऐसा कहना होगा। वेद श्रुतियाँ, ऋचाएँ लोक में वाचिक परम्परा से कृति परंपरा में आईं। उसी आगम से निगम आते हैं। इस प्रकार वेद दीर्घकाल तक लोक में ही व्याप्त रहे। इसीलिए वेद भी लोक सम्मत ही है। वेद और ईश्वर लोक में व्याप्त हैं, जो तीन लोकों और चौदह भुवनों में व्याप्त हैं। उनकी सत्ता और महत्ता सर्वत्र सुपूजित एवं सुस्वीकृत है। वेद, ईश्वर और लोक तथा भाषा; ये समानार्थी एवं स्वयंभू सत्ता सम्पन्न होते हैं, इसीलिए गीता कहती है– 'अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।' गीता–15/18

जो वेदोक्त है वह वैदिक भाषा है और जो लोकोक्त है वह सर्वसिद्ध लौकिक है। संस्कृति की संवाहक भाषा होती है। जो भाषा वेदेत्तर है उसे तो लौकिक ही माना जाएगा। इस प्रकार तो संस्कृत भी वेदेत्तर भाषा ही है, उसे भी लोकभाषा कहना होगा और वेदों को भी लोक साहित्य ही माना जाएगा। वेद अनेक वर्षों तक ऋषि कंठों में जीवित रहे। उन्हें वाचिक परम्परा से कृति में दर्ज किया गया। जिस प्रकार वेद किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं रचे गए। उसी प्रकार लोक साहित्य भी समूह रचित होता है। उसके रचियता का नाम कोई नहीं जानता। वह पौरुषेय होकर भी अपौरुषेय है। इसीलिए मैं लोक साहित्य को वेदों की श्रेणी में ही रखता हूँ। उसे लोकवेद कहना होगा। लोक साहित्य लोक का वारिस होता है। वह उसकी प्रथाओं और परम्पराओं को सहेज कर रखता है। लोक बहुत संवेदनशील होता है। भले ही पत्थर में संवेदना नहीं हो किन्तु मिट्टी में तो होती है। लोक मिट्टी के जैसा होता है। उर्वरा, जीवंत और संवेदनशील। उसमें माता जैसी ममता होती है। माँ के आंचल जैसी शीतलता और सुरक्षा होती है। उसमें अमृत जैसा दूध होता है। इसीलिए उसे मिट्टी कहता हूँ। वह धारक और पोषक होता है। धरती, माता इसीलिए कहलाती है। लोक भी धरती जैसा ही होता है। धरती और माता ही गर्भधारण कर पाती है। लोक में भी वही क्षमता होती है। वह गर्भधारण करता है। लोक साहित्य उसके गर्भ से उत्पन्न उसका उत्तराधिकारी माना जाता है। परम्परा से वह सदा विकासमान होता है। वह लोक का यश गायक

चारण होता है। इसकी शक्ति भी लोक से कम नहीं होती। उपनिषदों, अरण्यकों, पुराणों, आख्यानों, उपाख्यानों, गाथा–गीतों, कथा–कहावतों में वह सदा जीवित बना रहता है। कंठानुकंठ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वह वाचिक परम्परा में विद्यमान बना रहता है। सदा नवीन और प्रासंगिक। वह युग के साथ चलता है। कभी–कभी वह युग को अपने अनुरूप चलाता भी है। उसमें निहित प्रथाएँ और परम्पराएँ संस्कृति का सृजन करती हैं।

एक लोक नायक सत्य पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। उसके वंशज और उसके अनुयायी उस परंपरा का पीढ़ी–दर पीढ़ी निर्वाह करते हैं। एक सत्यवादी पूरे समाज को सत्यवादी हो जाने का संदेश दे जाता है। एक सुसंस्कृत परंपरा का निर्माण कर जाता है। एक राजा अपने वचन पर अटल रहता हैं। अपने प्राण तक निछावर कर देता है। वचन भंग नहीं करता। उसके वंशज और प्रशंसक उस संदेश को पारंपरिक रूप से आत्मसात् कर लेते हैं। एक किंवदंती और कहावत का निर्माण होता है– 'रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।' 'सत्य न छोड़्यो हरिचंद ने बिक गयो संग परिवार।' यह कथन परम्परागत प्रेरणा स्रोत बन जाता है। यह है लोक और लोक साहित्य की महनीयता। इसीलिए लोक साहित्य को लोक अभ्यर्थना का कीर्तिगान कहा गया है। इसीलिए उसे सदा प्रासंगिक कहा गया है। वह कभी अतीत नहीं होता। सदा प्रतीत बना रहता है। जो विद्वान लोक को फोक 'Folk' का पर्याय बताते हैं। उन्हें या तो लोक की असीम सत्ता का ज्ञान नहीं है या फिर 'फोक' की सीमित स्थितियों का आभास नहीं है। Folk का तो अर्थ ही अतीत होता है। जो अतीत हो गया। जो असंदर्भित और अप्रासंगिक हो गया, जबकि लोक तो कभी भी अतीत नहीं होता। उसका साहित्य भले ही वाचिक परंपरा में कंठानुकंठ जीवित रहे, किन्तु सदा प्रतीत और प्रासंगिक बना रहता है। उसका अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक तथा राजनैतिक स्थितियों से सरोकार कभी भी खंडित नहीं होता। इसीलिए उसे लोकजयी और कालजयी कहा जाता है। वह पुरातन होकर पुराण बन जाता है। वह व्यतीत होते–होते वेद बन जाता है। रीतना न तो उसका चरित्र है न नियति–रीतने से पहले वह ऋचा बन जाता है। वह श्रुति आधारित होता है, इसीलिए पीढ़ी दर पीढ़ी, कंठानुकंठ रहकर स्मृति के सारस्वत गान की तरह लोक में गुंजायमान रहता है। यही उसकी शाश्वतता, प्रासंगिकता तथा नित नवीनता का प्रमाण है। वह लोक में व्याप्त होते हुए भी लोकोत्तर होता है।

गीत मानव मन के उदात्त एवं कोमल भावों का प्रस्फुटित अंकुरण है। गीत भाषा की पालकी में सवार होकर प्रकट होता है। यह कह पाना कठिन है कि भाषा से गीत धन्य होता है अथवा गीत से (धन्य होती है) भाषा। सच तो यह है कि जिस प्रकार एक

युवती अपने अनुकूल प्रेमी से जोड़ा बनाकर सार्थक होती है, उसी प्रकार भाषा और गीत परस्पर मिलकर धन्यता प्राप्त करते हैं। गीतमय भाषा और संगीतमय गीत हमारे लिये सृष्टि की सबसे प्रभावोत्पादक संरचना है। संगीत, सृष्टि के विचलन से उत्पन्न हमारे लिए अमृत प्रसाद है।

लोकभाषा लोक और लोक पुरुष से भी अधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। वह लोक की सहधर्मिणी और लोक साहित्य की कुशल एवं सतर्क प्रवक्ता होती है। उसकी पराशक्ति को आँक पाना कठिन होता है। लोक बोली–भाषा में माँ के दूध की मिठास एवं कुलवंश की पारंपरिक मर्यादा होती है तथा पिता का गौरव, दृढ़ता, सुरक्षा भाव तथा अनुशासन झलकता है। इसलिए भी भाषा का महत्त्व सर्वोपरि है। सर्वोपरि इसलिए भी कि भाषा के बिना लोक हतप्रभ एवं लोक साहित्य हताश हो जाता है। वह केवल चित्रांकनों में ही रह जाता है। मैं शैल चित्रांकनों को भी लोक साहित्य की श्रेणी में ही मानता हूँ। जब आदिमानव के पास भाषा नहीं थी, तब उसने अपनी अभिव्यक्ति चित्रांकनों के माध्यम से कर हमें अपने युग के संघर्षों का आभास करवाने का प्रयत्न किया।

लोक साहित्य को भाषा और बोली के चक्रव्यूह में घेरना उचित नहीं है। भाषा और बोली में वैसा ही अन्तर है, जैसा राधा और रुक्मण में। राधा में लोक की सहजता, समर्पण, भावुकता और मिठास है। भोलापन है। वह ग्राम्य है। रुक्मण नागरिका है। उसमें चतुराई और सुघड़ता हैं। बोली में जब चतुराई और सुघड़ता आ जाती है, तब वह भाषा कहलाने लगती है। इसी सुघड़ता को भाषाविद् आचार्यों ने परिनिष्ठता कहा है।

केवल शब्दकोश या व्याकरण से भाषा नहीं बन जाती। शब्दकोश तो वैसा ही है जैसा तिजोरी में रखा या संचित किया हुआ मुद्राओं का संग्रह। जब तक मुद्रा चलन में नहीं आएगी, तब तक उसका क्या मूल्य और महत्त्व ? जो शब्द चलन में हैं, वे ही उपयोगी एवं सार्थक भी हैं। शब्दों से ही तो शब्दावली बन सकती है। अभिव्यक्ति की जितनी पूर्णता, सहजता एवं भावगम्यता लोकभाषा में है। उसकी शब्दावली में है, वह उसके पर्यायों में कैसे आ सकती है? लोकभाषा में प्रत्येक वस्तु और भाव के लिए शब्द है। उसे पर्याय नहीं खोजना पड़ते। इसीलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दी को अपने गोखड़े, दरवाजे लोकज शब्दों के लिये सदा खुले रखना चाहिए। तभी उसकी परिनिष्ठता सार्थक हो सकेगी।

केवल भाषा ही व्याकरण का अनुसरण क्यों करे, व्याकरण को भी भाषा का अनुसरण करना चाहिए। भाषिक व्याकरण से भी ऊपर सामाजिक व्याकरण होता है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोकभाषा उन्मुक्त भाव विव्हल किशोरी की तरह इधर–उधर फुदकती अवश्य है, किन्तु वह व्याकरण की कुलवंश मर्यादा भंग नहीं करती।

इस प्रकार लोक भाषा और लोक साहित्य का सामंजस्य संस्कृति का पारंपरिक रूप से सर्जन, संरक्षण एवं संधारण करता है।

परम्पराएँ हमारे सामूहिक जीवन के अनुभव की स्वीकृति के रूप में एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक निरन्तर चलती रहती हैं। जो वंशगत अथवा कुल–गोत्र के रीति–रिवाज एवं प्रथाएँ कालांतर में परंपरा में दृढ़ हो जाती हैं। हम परंपरा को प्रथाओं का दृढ़ीकरण मान सकते हैं? यही परम्पराएँ संस्कृति का सृजन करती हैं। हमारे नैतिक मूल्यों का समुच्चय परम्पराओं में निहित रहता है और परम्पराओं का समुच्चय संस्कृति कहलाती है। रीति रिवाज, प्रथा, परम्परा, संस्कृति यह एक विकास क्रम है। उदाहरण के लिये मृत्यु भोज एक सामाजिक प्रथा है। इस प्रथा का निर्वहन रीति–रिवाज कहलाएगा। प्रत्येक समाज या परिवार अपने–अपने पारंपरिक रीति–रिवाज के अनुसार मृत्यु भोज करेगा। यह कार्य जब कई पीढ़ियों तक चलता है, तब वह परम्परा बन जाता है। परंपरा किसी भी संस्कृति का सृजन करने में सक्षम होती है। इन परम्पराओं में हमारे जीवन के नैतिक मूल्य अन्तर्निहित होते हैं। प्रत्येक समाज या परिवार अपनी गौरवशाली परंपराओं का निर्वहन करने में सदा तत्पर एवं सजग रहता है।

परम्पराएँ या प्रथाएँ कई बार परिवर्तित भी होती रहती है। जब कभी प्रथाएँ–रीति रिवाज या परंपराएँ रूढ़ि बन जाती हैं और वह रूढ़िवादिता समाज या देश की प्रगति में बाधक बनने लगती है, तब उसका विरोध होने लगता है। तब समाज ऐसी रूढ़ियों को तोड़ देता है। सामूहिक रूप से ही इन परंपराओं की स्वीकृति और अस्वीकृति होती है। परंपराएँ मानव समाज को मर्यादित करती हैं, फिर यही मर्यादाएँ हमारी संस्कृति का अंग बन जाती हैं। विरासत में मिली मनुष्य की सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारे लिये सदा आदरणीय होती हैं। हम उन पर गर्व करते हुए उनका पालन करते हैं। पारंपरिक रूप से हमारी कलाएँ, गीत, संगीत, नृत्य, चित्रकला, वास्तुशिल्प हमारी समृद्ध संस्कृति की यश पताकाएँ मानी जाती हैं। हमारे लोक व्यवहार, हमारे जीवन के निर्धारित संस्कारों के पारंपरिक रीति–रिवाज हमारी नीतिगत प्रथाएँ हमें सदा मर्यादित रखती हैं और हमारे सामाजिक और पारिवरिक संतुलन को बनाए रखने में सहायक होती हैं। जब भी कोई प्रथा या परंपरा समाज में विघटन या व्यवधान पैदा करने लगती है, तब हम सामूहिक

रूप से उसका विरोध करके उसको तोड़ने में भी संकोच नहीं करते। उदाहरण के लिए सती प्रथा या बलि प्रथा अथवा कन्या भ्रूण हत्या या कन्या उत्पन्न हो जाने पर बाल हत्या, प्रथा से परंपरा बन चुकी थी। सती प्रथा को नैतिकता का निर्वहन माना जाने लगा था। युग ने कालान्तर में इसे कुप्रथा माना। इसका विरोध हुआ और समाज ने इसे अस्वीकार कर दिया। देश–काल परिस्थितियाँ इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हर युग का अपना–अपना धर्म व सत्ता अनुशासन होता है, उसी के अनुसार परम्पराओं की स्वीकृति–अस्वीकृति होती है।

परम्परा का निर्वहन जैसा सामाजिक मूल्यों में होता है, वैसा साहित्य में भी होता है। उदाहरण के लिये हम देवनारायण के चरित्र को लें। उन्हें लोक में कृष्ण अवतार के रूप में माना गया। जब कृष्ण अवतार के रूप में उन्हें मान्य किया गया, तब कृष्ण की पारंपरिक चरित्र लीलाओं का निर्वहन भी तो करना आवश्यक था।

जिस प्रकार कृष्ण के अवतार की भविष्यवाणी हुई उसी प्रकार देवनारायण के अवतार की घोषणा राज ज्योतिषी करता है–

हुकुम जाण नाराण को, सुण ले साढू वात।
भय हिरदै राखो मती, नारायण की दात।
जसतर जायो देवकी, क्रसन कन्हैया लाल
कंस मचीका खा गयो, बाँको हुओ न बाल।।
दन उगतां ई जनमया, बिस्नू का औतार।
रच्छा राखो देवजी, नारायण करतार।। [1]

कृष्ण का अवतार हुआ, तब कंस का संदर्भ भी आना था, कृष्ण तो रातों रात मथुरा से गोकुल चले गए। बालक ऊदल (देवनारायण) कहाँ जाए? उसे विष्णु भगवान के आदेश से कमल पर सुलाकर पाताल में पद्मण (नाग रानी) के पास सुरक्षित कर दिया गया। जब कंस (राजा सार्दूल) ऊदल को मारने महलों में पहुँचा, तब तक तो बालक सुरक्षित हो चुका था।

कंवल गयो पातार में, ले ऊदल ने सात।
साढू ने खम्मण कर्‌यो, जोड़ दिया दोइ हात।। [2]

बालक के प्राण लेने जब सार्दूल वहाँ पहुँचा, तब लोक कवि कहता है–

दन छड़ती आयो वठे, सारदूल पड़ियार।
सबदां अंगारा झरे, आखां फूटे झार।।

बारक होंपो झट मने, बगड़ावत को अंस।
टेरुं ऊभे भालड़े, खोज मिटाणू वंस।।
जींदो छोड़्यो कंस ने, वासदेव को पूत।
चतराई वसदेव की, करनी पायो कूत।। [3]

ऐसी अन्य लीलाएँ यथा सार्दूल द्वारा प्राण लेने के लिए भेजे गए पंडितों को पालने में झूलते ऊदल दातार द्वारा दंडित करना। कई चमत्कार करना। राक्षस से युद्ध करके उसे मारना, पाताल में नाग से युद्ध। गऊ चोरों और अन्य पशु चोरों को खदेड़ना और उनको मारना। गो चारण करना। अंत में सार्दूल का वध आदि पारंपरिक काव्य रूढ़ियों को जस का तस दोहराया गया है। ऐसा ही तेजाजी, गोगाजी, रामदेवजी के चरित्रों के साथ भी देखने को मिलता है। चित्रकला, संगीत, मांडना वास्तुकला आदि में भी पारंपरिक निर्वाह हुआ है। इस पारंपरिक निर्वाह क मूल में हमारी सांस्कृतिक परंपराएँ ही हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की पुनरावृत्ति का कारण नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना है। तेजाजी द्वारा नाग को दिए वचन का पालन करना। गौरक्षा हेतु अपने प्राण दांव पर लगा देना। ऐसी कई पुनरावृत्तियाँ हुई है, जिनके कारण मानव मूल्यों का पुनर्निर्धारण हुआ है। जिन नैतिक मूल्यों को हमने त्याग दिया था। उनकी पुनर्स्थापना इन वीर नायकों द्वारा करवाई गई है। पारंपरिक रूप से चली आ रही लोक परंपराओं का नवीनीकरण होता रहा है।

ऐसी ही छवि हमें लोकाख्यानों में भी मिलती है। लोकाख्यानों की परम्परा बहुत प्राचीन संदर्भों से जुड़ी है। डॉ. श्यामसुन्दर निगम ने मेरेट, आर.आर. साइकालॉजी एण्ड फोक फोर के हवाले से कहा है– 'इतिहास में लोकाख्यानों अथवा लोक गाथाओं की भूमिका पर कुछ कहने के पूर्व उनके स्वरूप एवं अन्तर्मन को जानना आवश्यक है। लोकाख्यान वस्तुतः लोकाभिव्यक्तियों, जिसमें लोक साहित्य भी समाहित होता है कि एक अपरिहार्य विधा है, यद्यपि लोकाख्यान का संबंध प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल से लेकर आज तक के लोक–मानस से आता है, किन्तु उसमें परम्परागत आदि मानव के अवशेष विद्यमान हैं। लोकाख्यान स्वयं स्फूर्त होते हैं और सामान्यतः उनमें अतीत के मानवों की वह संस्कृति समाहित होती है, जो धार्मिक औपचारिकता एवं इतिहास के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं की गई।'[4] भले ही लोकाख्यान इतिहास नहीं हो किन्तु वे धार्मिक औपचारिकताओं से मुक्त होते हुए भी नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना एवं पारंपरिक सांस्कृतिक प्रतिमानों को पुष्ट करने में अत्यंत सहायक होते हैं। आदि युग के जीवन मूल्यों से लगाकर वर्तमान युग के लोकाचारों एवं सांस्कृतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये ये लोकाख्यान हमारे प्रेरक हैं।

लोक आख्यानों की शास्त्रीय और लोकपरक परम्परा अत्यंत समृद्ध रही है। आख्यानों की सत्ता का प्रमाण ऋग्वेद की संहिता से ही उपलब्ध होने लगता है। वेदों में आए हुए ऐसे ही आख्यानों का संग्रह 'पुराण संहिता' नाम से अथर्ववेद आदि में उल्लेखित है। उदाहरण के लिये सुपर्ण और पुरुरवा आदि के आख्यान लिए जा सकते है। अथर्ववेद (10/7/26) में इतिहास तथा पुराण का उल्लेख मौखिक साहित्य के रूप में न होकर लिखित ग्रंथ के रूप में किया गया मिलता है।[5]

जब हम 'गाथा' पर विचार करते हैं, तब हमें प्राथमिक रूप से गाथा और आख्यान में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। 'गाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है। परम्परा भृगु–अंगरिस और कण्व ऋषियों के स्तुतिगान में पाया जाता है।[6] वहीं नाराशंसी शब्द ऋग्वेद में ही प्रयुक्त हुआ है। मुख्य रूप से यह शब्द मानवीय पूर्वज प्रशंसा से अधिक जुड़ा हुआ लगता है। लोक साहित्य में 'पूर्वज गीत और रातीजागे के गीत, सतियों के गीत इसी श्रेणी में आते हैं। आगे चलकर हमारे पुराण साहित्य में नाराशंसी और गाथा प्रशस्तियाँ एक समान एवं समान आशय वाली लगने लगती हैं। गाथा और नाराशंसी का समन्वय ही आख्यान है। अर्थात् वीर नायकों की यश गाथा, पूर्वजों के प्रशस्ति गान एवं इतिहास नायकों के यश बखान ही आख्यान कहलाने का महत्त्व रखते हैं। पूर्वकाल में आख्यानों को इतिहास से पृथक रखकर जाना गया, किन्तु बाद में इन आख्यानों का विषय इतिहास और पुराण सम्मत हो गया। ये आख्यान हमें शोध के लिये प्रेरित करते रहते हैं।

लोक नायक– जो बाद में लोक देवता हो गए, जिनमें डूंगजी, जवारजी, भर्तृहरि गोपीचंद, देवनारायणजी, गोगा पीरजी, रामदेवजी, तेजाजी, पाबूजी तथा इसी प्रकार अनेक लोक पुरुषों के चरित्र आख्यान लोक चर्चित और लोक मान्य हैं। इन्हें लोक श्रुतियों, पाण्डुलिपियों, लोक कथा–गाथा, गीतों आदि लोक आधारों से जाना जा सका है। इनका जितना सम्बन्ध लोक जीवन से है, उतना ही इतिहास और संस्कृति से भी है। इन लोक आख्यानों को हम जीवन के नैतिक मूल्यों की आचार संहिता के रूप में देखते हैं। इसीलिए ऐसे लोकाख्यानों या गाथाओं को केवल लोकरंजन या धार्मिक आस्था के रूप में ही नहीं जानना होगा, बल्कि इनकी वंशावलियाँ और इनके समकालीन सत्ताधीशों की वंशावलियाँ एवं राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक घटनाओं पर भी समान रूप से शोधपरक दृष्टि डालना होगी। उनका सामंजस्य बैठाकर स्थानीय इतिहास का पुनरावलोकन करते हुए शोध संभावनाएँ तलाशना होगी।

लोकाख्यानों में कल्पनाशीलता का होना स्वाभाविक है। कवि कल्पना तो साहित्य में सर्वत्र विद्यमान होती है। इसके बिना तो वह केवल तथ्यात्मक विवरण मात्र ही रह

जायेगा। लोक साहित्य में कल्पनाशीलता कुछ अधिक ही होती है। जितने भी आख्यान अब तक सामने आए हैं, उनमें से कुछेक को छोड़कर शेष सभी कल्पनापरक ही हैं। उदाहरण के लिए हम उन सभी आख्यानों को ले सकते है, जो लोक आराध्य देवता हैं। लोकाख्यानों के गद्य रूप भी मिल जाते हैं। कथा और आख्यायिका दो विधाएँ मान्य हैं। कथा में कल्पनाशीलता विशेष रहती है एवं आख्यायिका में ऐतिहासिकता प्रमुख रहती है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी', सुबंधु की 'वासवदत्त', दण्डी का 'दशकुमार चरित्र' इसी श्रेणी की आख्यायिकाएँ हैं। वैसे जिसे गद्य आख्यायिका माना जाता है, उसमें भी काव्यात्मकता तो रहती ही है। ये सभी एक ही श्रेणी के हैं। इन्हें आख्यान ही कहना उचित है। पृथक से गद्य अथवा पद्य भेद निरर्थक है। जिस प्रकार लोक अविभाज्य है, उसे देश काल आदि भागों में नहीं बाँटा जा सकता। वह जड़ चेतन में सर्वत्र, सर्वकाल और सर्वस्थिति में व्याप्त है। 'लोकवृतं लोकः' इसी आशय से कहा गया है। इसी बात की पुष्टि आचार्य कौटिल्य ने (अपने अर्थशास्त्र के अध्याय 15 में की है) वे चतुर्वणाश्रमे लोकः कहकर लोक को चारों वर्णों, चारों आश्रमों अर्थात् समग्र आयु तक एक समान विस्तीर्ण एवं उपस्थित मानते हैं। इसी प्रकार लोक आख्यान भी सर्वकालिक एवं अविभाज्य होते हैं। उपाख्यान मूल आख्यान को बल देकर उसे पूर्णता प्रदान करते हैं। लगभग सभी आख्यान साभिनय होते हैं। जनमेजय का नाग यज्ञ, सावित्री आख्यान, रुद्र आख्यान, नलोपाख्यान, मत्सोपाख्यान, शकुंतलापाख्यान, नहुष आख्यान आदि अनेक आख्यान–उपाख्यान वेद और पुराण साहित्य में हमें मिल जाते हैं। यही आख्यान जब लोक प्रचलित हुए, तब लोक में एक परम्परा इन्हें अभिनय के माध्यम से विकसित करती रही। लोक गायकों एवं लेखकों ने इन परम्परागत आख्यानों को अपने युग के अनुरूप बना लिया। जैसे ऐतरेय ब्राह्मण का 'शुनःशेष आख्यान'। इस आख्यान में हरिश्चन्द्र सत्यवादी के रूप में स्थापित किये गये हैं। सावित्री आख्यान की ही पारम्परिक शैली पर लोक में 'लिमड़ी' व्रतकथा की रचना हुई। सावित्री ने तो केवल अपने पति को ही यम से पुनः प्राप्त किया और अपने पतिव्रत धर्म और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय दिया, किन्तु 'लीमड़ी' जैसी अनेक आख्यायिकाएँ हैं, जो वेदों से पुराणों में परम्परा से आयीं और पुराणों से लोक में प्रविष्ट हुईं।[7] प्रत्येक बार उनका रूप बदलता गया। लोक परंपरा एक सदानीरा सलिला की तरह प्रवहमान होती रही और देशकाल परिस्थितियों के मान से आख्यानों में परिवर्तन तो होता रहा, किन्तु परंपरा अक्षुण्य बनी रही। लोकरंजन ने इन आख्यानों को और भी लोकप्रिय बना दिया। इसी परंपरा में लोक नायकों पर पड़ चित्रावण का प्रयोग शुरू हुआ। कपड़े के बड़े–बड़े चित्रपट्ट बनाकर उन पर लोक नायकों के जीवन की प्रमुख घटनाओं को चित्रांकित किया जाने लगा। लोक गायकों द्वारा चित्रपट को चौपाल में टांगकर उनका प्रदर्शन किया जाने लगा। रात्रि में

घटनाओं का बखान करने के साथ–साथ चित्रपट पर चित्रित उस घटना–चित्र पर प्रकाश डाला जाता था। यह काम दो अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। पुरुष गायक कड़ावा गाकर घटना बखानता था और स्त्री उस बखान की दोहराने के साथ छोटी मशाल अथवा भपके द्वारा चित्र घटना पर प्रकाश डालती थी। रात–रात भर ये बखान प्रदर्शन होते थे। बहुत ही अद्‌भुत छवि बनती थी। दृश्य–श्रव्य शैली का यह लोक प्रदर्शन आज भी होता है। भले ही उन प्रदर्शनों में कुछ कमी आई है। लोक आस्था के कारण यह परंपरा टूटी नहीं है। कम हुई है। इस प्रदर्शन परम्परा में पाबूजी की पड़ अत्यंत प्रसिद्ध है। पड़ के चित्तेरे जोशी परिवारों ने इस परम्परा को आज भी जीवित बनाकर रखा है। तेजाजी और रामदेव की कथाएँ रात–रात भर गा–गाकर साभिनय प्रदर्शित की जाती हैं। डूंगजी–जवार जी की गाथा लोक गायक अपने रणत्ये पर आज भी गाँव–गाँव गा–गाकर सुनाते हैं। देवनारायण आख्यायिका के गाथा–गायक अपने जंतर वाद्य पर आज भी अपनी लोक परम्परानुसार गाथा बखान करते हैं। इन सब गाथाओं के नायक कृष्ण, राम, नाग आदि पौराणिक देवताओं–अवतारों की परम्परा में मान्य हुए और उन्हीं की लीला परम्परा को प्रगट किया। लोक, लोक साहित्य, लोकभाषा और लोकाख्यान लोक परंपराओं का निर्वाह करने में परस्पर सहायक सिद्ध होते हैं। इनमें से किसी एक का नहीं होना या उपेक्षित होना सम्भव नहीं होता है। यदि हम लोक साहित्य की किसी भी विधा पर चर्चा करना चाहेंगे, तब हमें उन सभी लोक परम्पराओं का भी निर्वाह करना होगा, जो लोक को सदा स्वीकार होती आई हैं। इतिहास और पुराण लोक से अभिन्न विधाएँ हैं। लोक साहित्य और इतिहास के अन्तःसम्बन्ध अत्यंत प्रगाढ़ हैं। लोक साहित्य और इतिहास तो नदी के दो तटों के समान हैं, जो भले ही कभी आपस में नहीं मिलते हों, किन्तु दोनों के सुरक्षित रहने पर ही नदी का अस्तित्व बना रह सकता है।

लोकाख्यान की लोक परंपराएँ इतिहास की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में सहायक हो सकती हैं। लोकाख्यान सम्भावनाओं के अक्षय भंडार हैं। वे केवल लोकरंजन अथवा धार्मिक आस्था और विश्वास को ही प्रकट नहीं करते, अपितु इतिहास को अपनी साक्ष्य देकर शोध के अनेक गोखड़े भी उद्‌घाटित करते हैं।

इतिहास और लोकाख्यान के अन्तःसंबंध ही इतिहास को रूढ़, रूखा और भूतकालिक दस्तावेज से संस्कृति का मार्गदर्शक एवं लोक कल्याणी रूप प्रदान करते हैं। लोकाख्यानों में इतिहास भी निहित होता है। इसी प्रकार इतिहास में लोकाख्यानों के बीज सूत्र खोजे जा सकते हैं। क्या नल–दमयंति, सत्यवान–सावित्री, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, धरमधणी, देवनारायण, तेजाजी, पाबूजी, डूंगजी, रामदेवजी, भरथरी,

गोपीचंद, मोरध्वज, ढोलामारू, महेन्द्र–मोमल आदि लोकाख्यानों को हम इतिहास से परे ले जा सकते हैं? ये सभी ऐतिहासिक पात्र हैं? क्या महाभारत, रामायण जैसे महाकाव्य, शकुंतला–दुष्यंत आदि आख्यान और उनमें निहित उपाख्यान इतिहास की घटनाओं से अलग हैं?

इतिहास के बिना लोकाख्यान अपूर्ण हैं और लोकाख्यानों के बिना इतिहास कुंठित। दोनों की संगत स्थिति ही इस विसंगति को दूर कर सकती है।

लोकाख्यानों की पारंपरिक कथा–गाथाएँ आज भी अक्षुण्य है और हमारी संस्कृति का पोषण करती, लोकरंजन करती तथा लोक साहित्य की समृद्धि को पुष्ट करती हुई अपनी आदि परंपरा के प्रवाह को निरंतर रखे हुए हैं।

लोक गाथाएँ हों अथवा लोक कथाएँ या फिर लोक गीत आदि। वे लोक कंठों पर ही जीवित हैं। उन्हें वहाँ से सहेजना बहुत कठिन होता जा रहा है। यह उतना ही कठिन है, जितना रेत में से बाजरा चुनना। जिस प्रकार धूल धोया (न्यागर) सुनार की दुकान से धूल खरीदकर उसमें से सोने और चाँदी को निकल लेता है, उसी प्रकार लोक शोधार्थी भी 'सार–सार को गहि लये, थोथा देहि उड़ाय' की तरह शोध कार्य करता है।

ये लोकगाथाएँ या अन्य लोक साहित्य जिन लोक कंठों पर विराजित थे, वे कंठ अब मौन होने लगे हैं। साठोत्तरी पीढ़ी इन गीत–गाथाओं की धारक थी। वह पीढ़ी धीरे–धीरे शेष होती जा रही है। उनकी परम्परा भी थमने लगी है।

ये लोक गायक पहले ही इन गीत–गाथाओं को अपना धर्म मानकर गाते थे। फिर कर्म मानकर गाने लगे और उसके बाद भ्रम मानकर त्यागने लगे। उन्हें आभास हो गया कि यदि हमारी पीढ़ियाँ भी इसी प्रकार दर–दर भटककर गीत–गाथा की कड़ियाँ गाती भटकती रही, तब एक दिन उन्हें भीख मिलना भी कठिन हो जायेगा। उन्होंने गायिकी की परम्परा त्यागकर दूसरे किसी श्रम को स्वीकार कर लिया।

आज किसी भी लोक गायक को पूरी या अधूरी कोई भी लोकगाथा याद नहीं है। गाथा का जो प्रसंग जितना कुछ याद रह गया है, उसी को गा–बजाकर वे जैसे–तैसे अपने परिवार का पालन–पोषण कर पा रहे हैं।

मैंने कई गाथाएँ अंश–अंश सुनी। प्रसंगों के आधार पर उनको क्रमबद्ध किया और फिर उन्हें पूर्णता देने का प्रयत्न किया। इसका पहला प्रयोग मैंने सन् 1970 ई. में डूँगजी–जवारजी लोकगाथा को सुनने के पश्चात् किया था। वह लोकगाथा मेरी प्रेरणा बनी।

उसके बाद तो धर्मधणी देवनारायण, पाबूजी, तेजल कुँवर, वीर विक्रमादित्य, महाराजा भोज, भरथरी आदि और भी गाथाओं पर मैंने यह प्रयोग किया। ऐसा ही प्रयोग मैंने लोक में प्रचलित रामकथा प्रसंगों वाले गीतों में किया। इन गीतों को कथा क्रम देकर रामकथा को पूर्णता देने का मेरा श्रम 'लोक रमंता राम' के संकलन के रूप में सार्थक हुआ। इन्हीं गीतों को आधार बनाकर मैंने 'मर्यादा' उपन्यास की भी रचना की। यह बात भिन्न है कि दोनों ग्रंथ अप्रकाशित है, किन्तु आशा पर आकाश थमा है। यह मैं ठीक से जानता और मानता हूँ। राम कथा गीतों के संकलन का श्रेय आदिवासी लोककला परिषद के तत्कालीन निदेशक डॉ. कपिल तिवारी एवं चौमासा के सम्पादक श्री अशोक मिश्र जी को है।

ऐसा ही प्रयोग 'राज योगी भरथरी' की यह लोक गाथा भी है। मैंने इसे अनेक लोक गायकों के कंठों से अंश–अंश सुना है। एक ही प्रसंग अनेक बार भाषा एवं पाठ के अन्तर से सुना। उन कथा प्रसंगों को क्रम देना बहुत कठिन होता है। बार–बार लिखा, फिर उन्हें अंतिम रूप से स्वीकारा। अब भी बहुत सम्भव है, इसमें कहीं न कहीं कथा क्रम टूटा हो, किन्तु गाथा नहीं टूटी। मैंने इस संकलन में अपनी ओर से कुछ भी नहीं बदला।

मेरे एक विद्वान मित्र का सुझाव रहा है कि उसका सम्पादन करते समय उसके छंद इत्यादि को भी सुधारा जाना चाहिए। मैं इसे लोक साहित्य के साथ न्याय नहीं मानता। अनेक बार गीत–गाथाओं में गायक छंद को पूर्णता देने के लिये स्वर को छोटा–बड़ा कर लेता है। यह उसकी मौज है। उस मौज को क्षति पहुँचाना मेरा न तो अधिकार है और न धर्म। यह काम तो आने वाले शोधार्थी करेंगे। मैं तो मधुमक्खी की तरह भाँति–भाँति के पुष्पों से कण–कण पराग रस लाकर रानी मक्खी के छत्ते में संचित कर देता हूँ। मैं न तो विद्वान हूँ और न मर्मज्ञ। मात्र सर्जक हूँ। संचयकर्ता हूँ। लोक आराधक और लोक साधक हूँ। यही बना भी रहना चाहता हूँ। आने वाली पीढ़ियों के लिये लोक कंठों से लुप्त हो रहे, लोक सम्पदा का संरक्षण करना मेरा संकल्प है। धरती को रसातल से बाहर निकालकर लाने वाले विष्णु के वराह अवतार मेरे प्रेरक हैं।

भरथरी का यश समग्र राजस्थान विशेष रूप से मेवात और हाड़ौती अंचल के अलावा दशपुर अंचल, समग्र मालवा, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, गुजरात आदि क्षेत्रों में विस्तीर्ण है। इस भू–भाग में भरथरी के गीत, गाथाएँ एवं कथा प्रसंग अपने–अपने आयोज–संयोजन के साथ गाए–बखाने और कहे जाते हैं।

लोक साहित्य के पैर नहीं पंख होते हैं। वह अपने पंखों के बल पर सात समुद्र

पार तक की यात्रा करता है, वह जहाँ जाता हैं– वहाँ कुछ छोड़ आता है, कुछ जोड़ लाता है।

राजस्थान के मेवात क्षेत्र में दशहरा और दीवाली के मध्य अलवर क्षेत्र के अभ्यारण्य सरिस्का अंचल में एक विशाल मेला भरथरी की स्मृति में आयोजित होता है। मान्यता है कि इस वन में योगीराज भरथरी ने घोर तपस्या की थी। यही अभ्यारण्य पूर्वकाल में विराट नगर के नाम से ख्यात था। इस मेले में बड़े–बड़े व्यापारी, किसान, नाथ, जोगी, संत, लोक गायक, लोक कलाओं के अनेक कलाकर, प्रदर्शनियाँ, नाटक, भजन मंडलियाँ एकत्र होती हैं। यह भरथरी तीर्थ जयपुर से लगभग 110 किलोमीटर तथा अलवर से लगभग 30 किलोमीटर पर स्थित है। इस तीर्थ के विषय में यह लोक मान्यता भी है कि यहीं पर भरथरी ने अपने प्राणों का विसर्जन किया था। उनकी समाधि भी यहाँ स्थित है। अलवर, दौसा और भरतपुर में मेरी रिश्तेदारियाँ है। सन् 1975 में मुझे एक बार इस मेले में जाने का अवसर मिला। मेले में मनोरंजन के वे सभी साधन तो देखने को मिल ही जाते हैं, किन्तु जो विशेष दृश्य देखते बनते हैं, वे हैं अनेक नाटक जो भगवान राम और योगीराज भरथरी के कथा प्रसंगों पर आधारित होते हैं। इन्हें देखने के लिये लोग रात–रात भर बैठे रहते हैं। यही स्थिति भजन मंडलियों की होती हैं। सपेरे जोगी अपने साँप पिटारे लेकर चाहे जहाँ एक मजमा लगा देते हैं। बीन पर तन्मय होकर फन फैलाए भाँति–भाँति के साँपों के दर्शन आप कर सकते हैं। यह मेला लोक संस्कृति का दर्शनीय मेला है। कनफाड़े जोगी सारंगी पर भरथरी गाते हुए आप देख–सुन सकेंगे। अधिकतर प्रसंगों में राजा भरथरी का योगी होकर अपनी रानी पींगला से भिक्षा माँगने का वर्णन होता है। कुछ प्रसंग इसके अतिरिक्त भी होते हैं। दोहराव बहुत होता है। अधिक लम्बी या सम्पूर्ण गाथा किसी भी लोक गायक को याद नहीं है।

गीत गाथा पर संगीत का प्रभाव इतना अधिक होता है कि गाथा को समझना और लिख पाना बहुत कठिन हो जाता है। मैंने अपनी उस यात्रा में कुछ गाथा प्रसंग अंकित किये थे। जिनका उपयोग संलग्न गाथा में मैंने किया भी है। ज्ञात हुआ था कि उदयपुर के डॉ. कृष्णकुमार शर्मा ने उसी अंचल से भरथरी गाथा के कुछ गाथा–प्रसंग संकलित किए थे। उनसे सम्पर्क साधने पर उन्होंने बताया 'वे किसी मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। मूल तथा वह पत्रिका मैं नहीं खोज पा रहा।' ऐसा तो हर शोधार्थी के साथ होता है। कहते हैं कि 'आपन मरिए स्वर्ग न जाय' स्वयं के मरने पर ही स्वर्ग में जाया जा सकता है।

प्रस्तुत गाथा कई अंशों में संकलित की गई है। इसका प्रभाव क्षेत्र ऊपर बताए

अंचलों तक विस्तीर्ण है। विशेष रूप से मेवात, हाड़ौती, दशपुर अंचल तथा मालवा और निमाड़ तक का भाग। एक ही प्रसंग जब अलग–अलग स्थानों पर सुनने में आया तब मैंने अधिक सुलभ एवं सहज भाव सम्पन्न पाठ को स्वीकार किया।

गाथा में उज्जैन के राजा गर्धभिल्ल और रानी चम्पादे की संतान हेतु तपस्या, व्रत, पूजा से लेकर भरथरी के जन्म फिर मृत्यु तथा पश्चात् उनके सद्गुरु द्वारा पुनर्जीवन से लेकर राज्य प्राप्ति। राजसुख, भोग–विलासतापूर्ण जीवन तथा उनके शक्तिशाली राज्य, रणकौशल, युद्धजयी, राज्य विस्तार आदि प्रसंगों के चलते गणिका पींगला के प्रति अटूट प्रेम सम्बन्धों का वर्णन अत्यंत प्रभावाशाली ढंग से हुआ है। वे अपने युग के अत्यंत प्रभावशाली विद्वान थे, उनके द्वारा रचित शतकत्रय, वाक्यदीप जैसे कालजयी ग्रंथ इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। लगभग 7 वीं शताब्दी में जब इत्सिंग भारत आया तब वह कहता है–'मुझे ज्ञात हुआ है कि लगभग 50 वर्ष पूर्व उज्जैन के एक सिद्ध वैयाकरण का निधन हो गया है। वह वैयाकरण निश्चित रूप से भर्तृहरि ही थे। संभवतः इत्सिंग को काल समय की सूचना ठीक से नहीं दी गई हो।

अमरफल वाले प्रसंग के कारण वैराग्य भाव का उदय और फिर सिद्ध गुरु द्वारा दीक्षा लेकर अपनी रानी पींगला से भिक्षा प्राप्त कर तथा वैरागी होकर तपस्या रत हो जाने के मार्मिक प्रसंग गाथा को गतिमान करते हैं।

यहाँ तक भी गोरखनाथ का उल्लेख इस गाथा में नहीं आता। जिन्हें सिद्ध गुरु कहा गया है। वे सम्भवतः उनके कुलगुरु थे। उन्होंने ही उन्हें पुनर्जीवित भी किया था तथा उन्होंने ही उन्हें अमरफल देकर संसार की असारता का बोध भी करवाया था।

इस गाथा में भर्तृहरि के अतिरिक्त तीन नारियों ने भी वैराग्य धारण किया। इनके साक्षी तथा प्रेरक भी भरथरी ही बने।

प्रथम गणिका पींगला, दूसरी रानी पिंगला तथा तीसरी राजा विक्रमादित्य की रानी सतवंती, जो बाद में मुक्ताबाई के नाम से ख्यात हुई।

इनके प्रसंग अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं। गणिका पींगला और रानी पिंगला के भरथरी के साथ संवाद जिस प्रकार हृदय में वैराग्य भाव को उदीप्त कर देते हैं, वहीं रानी पिंगला के तर्क राजा भर्तृहरि (भरथरी) को कई बार निरुत्तर करते हुए भी दिखते हैं।

अपनी रानी पिंगला से अनुमति लेकर जब राजा भर्तृहरि योग साधना हेतु प्रस्थान कर गुफा में जाकर तपस्यारत हो जाते हैं, किन्तु उनका मन स्थिर नहीं हो पाता। उधर रानी पिंगला महलों में रहते हुए भी मन को स्थिर कर योग साधना के माध्यम से सिद्धि

प्राप्त कर लेती है। उसे आभास हो जाता है कि राजा का मन अभी भी संसार मोह में भटक रहा है। वे मन को स्थिर नहीं कर पा रहे है, तब वह तत्काल गुफा के द्वार पर जाकर उन्हें पुकारती है–'हे राजयोगी भरथरी! गुफा से बाहर पधारो। गुफा के द्वार पर पिंगला आपकी वाट जोह रही है।

आपने इड़ा को साध लिया, सुषुम्ना को साध लिया, किन्तु जब पिंगला की साधना होती है, तब सुषुम्ना अर्थात् बकनाल/त्रिकुटी तक पहुँचकर उसमें से सहस्त्रधार का अमृत झरने लगता है।

सुषुम्ना के जागरण से ही कुंडलिनी जागृत होती है। तभी अनहद नाद बजने लगता है।

अनहद नाद की मधुर ध्वनि सुनते–सुनते सहज समाधि लग जाती है। मन के स्थिर होने पर ही सहज समाधि लग पाती है। आपका मन स्थिर नहीं हो पा रहा। समाधि लगते ही बाहर का जगत और उसके समस्त विकार स्वतः बिसर जाते हैं। जीव दस द्वारों में भटकना छोड़कर स्थिर हो जाता है। गंगा–जमुना और सूर्यचन्द्र इड़ा और पिंगला ही जानिए।

जब सहस्त्रधार झरने लगती है, तब तन–मन अमृत रस से सिक्त हो जाता है। वही आनंदानुभूति पाने के लिये जोगी कुण्डलिनी जागरण करते हैं। भीतर घट में उजाला हो जाता है। ज्ञान से अज्ञान समाप्त हो जाता है। अज्ञान का तमस दूर हो जाता है।

किन्तु– हे राजयोगी! आपने साधना में चूक कर दी। आपकी तीन प्रमुख रानियाँ थीं। सुखमण (सुषुम्ना) इड़ला (इड़ा) और पिंगला। तीनों योग साधना में सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला ही प्रतीक है। जिन्हें नारी कहा जा रहा है, वे तीनों नाड़िया ही तो हैं। आपकी बड़ी रानी सुखमणा थी। आपने पहले उसे साधा। अर्थात् योग स्वीकृति हेतु उसे सहमत किया। फिर दूसरी रानी इड़ला (इड़ा) को सहमत किया और अंत में आपने पिंगला को अर्थात् मुझे सहमत करने का प्रयास किया। इसी सहमति (साधना) में आपसे चूक हो गई। आपको पहले इड़ा और पिंगला को समहत करना था। (साधना था) सुषुम्ना तो स्वयं ही सहमत हो जाती। (सध जाती)।

आपका गुरु कच्चा है। यह मैं समझ गई हूँ। इसी कारण आप समाधि नहीं लगा पा रहे। आपका मन बार–बार भटक जाता है। मन स्थिर होगा तभी तो समाधि लग पाएगी। मन की स्थिरता ही सहज समाधि कहलाती है।

यदि आपने पिंगला को पूर्णतः सहमत कर लिया होता, तब आप सहज ही सिद्ध योगी हो जाते। आप गुफा से बाहर पधारो। पिंगला स्वयं आपके द्वार पर आई है। उसे साध लो। अब पिंगला न तो महलों में (राजमहल में) रह सकती है, न बाप के घर जा सकती है। वह भटक रही है। व्याकुल है। उसे दीक्षा देकर सहज बना दो। अर्थात् उसे भी सहज भाव से सहमत (साध) कर लो। तभी आपकी समाधि सफल हो पाएगी।

आप अपने हृदय के तार पक्के कर लो। चित्त में स्थिरता लाओ। पिंगला के मोह से मुक्त हो जाओ। न तो आप पिंगला के मोह से मुक्त है, न मैं आपके मोह से मुक्त हूँ। दीक्षा ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगी। विकारों से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है।

आप तत्काल गुफा से बाहर आ जाओ। पिंगला आपके द्वार पर खड़ी है। इतना कहकर पिंगला मौन हो जाती है और योगी भरथरी साधना गुफा से बाहर आकर अपनी रानी पिंगला को धन्यवाद देकर उसे दीक्षित करते हैं। उनका मोह टूट जाता है। मोह का तार टूट जाता है। पिंगला से मोह भंग होते ही भरथरी का मन स्थिर हो गया। उन्हें सहज समाधि प्राप्त हो गई, और वे सिद्ध योगी हुए। वही पिंगला जो उन्हें मोहपाश में बांध लेना चाहती थी, उसी रानी पिंगला ने अन्ततः उन्हें मोहपाश से मुक्त भी करा दिया। इससे पूर्व वह स्वयं मोह से मुक्त हुई।

मोह का विकल्प मन को भटकाता है। इसी कारण कर्म सिद्धि प्राप्त नहीं हो पाती। इसी संदर्भ में मुझे इतिहास प्रसिद्ध हाड़ी रानी का संदर्भ स्मरण हो आता है। जब उनका पति बार–बार युद्ध में जाने से विरक्त होकर उनके महल में लौट आता है, तब रानी उन्हें अपने मोह से मुक्त करने के लिये अपना शीश काटकर भेंटकर देती है और कहती है– जिसके कारण आप युद्ध धर्म से विरक्त होकर बार–बार मेरे महल में लौट रहे हैं उसे निशानी के रूप में साथ लेते जाओ। राजकुमार का मोह भंग हो जाता है, वह युद्धजयी होने का संकल्प लेकर युद्धरत हो जाता है। ऐसा ही संदर्भ महाकवि तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली का भी है। पत्नी की फटकार पाकर वे राम की भक्ति में लीन हो जाते हैं और महान कवि के रूप में विश्व प्रसिद्ध हो जाते हैं। दूसरों को मोह माया से मुक्त करवाने से पूर्व स्वयं मोह–माया से मुक्ति पा लेना अनिवार्य होता है। यही शाश्वत नियम है।

इसी प्रकार पिंगला ने भी जोगी भरथरी को मोह मुक्त कर उनके लिए साधना का मार्ग प्रशस्त किया।[8]

यह गाथा एक नया संदर्भ भरथरी के जीवन प्रसंगों में जोड़ती है। सम्भवतः प्रथम

बार इस पारंपरिक लोक गाथा का अकादमिक रूप से प्रयोग हो। इस प्रकार यह गाथा अब तक संकलित भरथरी लोक गाथाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। यह गाथा लोकनिधि की अमूल्य धरोहर है।

इस गाथा से जो विशेष बात उभरकर आई है, वह है रानी पिंगला का चरित्र। तीनों रानियों के आध्यात्मिक एवं योगपरक रूपों का विश्लेषण करने पर तथा उनके भौतिक रूप का विश्लेषण करने के पश्चात् रानी पिंगला एक विदुषी, सहज स्वभाव वाली एवं स्थिर बुद्धि नारी के रूप में स्थापित हो जाती है। ऐसी चरित्रवान रानी पिंगला पर विश्वास भंग का आरोप अनुचित ही हैं। यह गाथा इसका उत्तर देती है। गाथा कहती है– उज्जैन में पिंगला नाम की एक गणिका थी। अत्यंत रूपवती एवं श्रेष्ठतम कलावंत। वह राजा की 'जीवजड़ी' (अत्यंत प्रिय) थी। राजा भरथरी उस पर अपनी जान छिड़कते थे। प्रतिदिन उससे मिलने वे उसके भवन जाते थे। अनेक अमूल्य उपहार उसे राजा ने दिए थे।

एक दिन जब एक दिव्य साधू ने राजा को एक अमृत फल दिया और कहा कि इसके सेवन से आप सदा युवा बने रहेंगे। तब राजा ने वह अमृतफल अपनी प्राण प्रिय गणिका पिंगला को दे दिया। गणिका ने वह फल अपने एक अनन्य प्रेमी उज्जैन के सेनापति को दे दिया, यह कहकर कि मैं तो गणिका हूँ। मेरा युवापन एवं अमरता व्यर्थ है। मैं तो अपने इस जीवन से ही घृणा करने लगी हूँ। आप मेरे प्रिय हैं। सर्वाधिक प्रिय। आप युवा बने रहेंगे तो राज्य की रक्षा अच्छी तरह करते रहेंगे। इस कारण यह फल आप खा लीजिये।

सेनापति यद्यपि गणिका भोगी था, तथापि वह अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता था। अतः वह फल उसने अपनी पत्नी को दे दिया। उसकी पत्नी अपने पति से रुष्ट थी। पति के गणिका भोगी का रहस्य वह जानती थी। इसलिए उसने सोचा मेरा युवा होना किस काम का? मेरा पति तो गणिका को चाहता है। अतः उसने वह फल अपनी बहन, भर्तृहरि की रानी पिंगला को भेंट में दे दिया। रानी पिंगला ने सोचा– राजा का युवा बने रहना अधिक उचित है। मेरे पति भतृहरि मुझसे बहुत प्यार करते हैं। इस कारण इस फल पर उनका अधिकार अधिक है। अतः उसने वह अमृत फल अपने पति राजा भर्तृहरि को दे दिया।

फल को अपनी रानी पिंगला के पास देखकर राजा बहुत अचम्भे में पड़ गए। राजा ने पिंगला गणिका से रानी पिंगला तक की अमृत फल की यात्रा का पता लगाया। गणिका ने सच्ची बात कहते हुए कहा–महाराज मैं गणिका हूँ। हमें नगरवधू कहा जाता

है। हमारा कोई एक स्वामी नहीं होता। पूरा नगर हमारा स्वामी होता है। हम सबके प्रति समर्पित भाव रखते हैं। हमारा प्रत्येक स्वामी यह भ्रम बनाए रहता है कि हम केवल उसके प्रति समर्पित है। जबकि हमारी निष्ठा सबके प्रति समान होती है।

यदि आप मुझे दोषी मानते हैं तो मुझे दंड दें। गणिका की बात सुनकर राजा भर्तृहरि को वैराग्य हो गया।

वह दिव्य साधू भी यही चाहता था। राजा को संसार की असारता का बोध हो गया और उसने विलासी जीवन त्याग कर वैराग्य धारण कर लिया। भर्तृहरि परमवीर और परम विद्वान था। फिर वह परमसिद्ध बना। इसमें उसकी रानी पिंगला ने भी उसको संसार की असारता का बोध करवाया और योग का ज्ञान दिया। रानी होकर भी योग साधिका थी। उन्होंने राजा को योग लेने की सहमति के समय जो संवाद किया, वह भी उसकी परख परीक्षा थी। भोग की अतिशयता का प्रतिफल संन्यास ही होता है। भोग से मुक्त होकर सहज होना कठिन होता है। उसका परिमार्जन तो संन्यास से ही सम्भव होता है। एक संत साध्वी सीता ने कहा भी है–

सीता धन री तीन गत, भोग दान कर नास।
अतिसयता होव अदं, तद उपजे संन्यास।। [9]

धन की तीन ही गतियाँ है– भोग, दान और नाश। जब धन भोग की अतिशयता हो जाती है, तब संन्यास भाव जागृत हो जाता है। भर्तृहरि (भरथरी) के संदर्भ में यही सत्य है।

इस गाथा में अमृतफल वाले ने तथा योग सिद्धि वाले संदर्भ ने पिंगला रानी पर लगे विश्वासघात के कलंक को धो डाला है। अब तक लोक मान्यता यह थी कि वह अमृतफल राजा भर्तृहरि ने अपनी रानी पिंगला को दिया था। जबकि यह गाथा कहती है कि वह अमृतफल राजा भर्तृहरि ने गणिका पिंगला को दिया था। वहीं से वह अमृत फल हाथों हाथ रानी पिंगला के पास आया। रानी पिंगला ने अपने प्राणप्रिय पति राजा भर्तृहरि को दिया।

इस संदर्भ से यह बात भी निखर कर स्पष्ट हो जाती है कि उनमें से कोई भी न तो चिरयुवा रहना चाहता है और न चिरायु। राजा भर्तृहरि को यही बोध सिद्ध गुरु (दिव्य साधु) करवाना चाहते थे।

इसी गाथा में एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ विक्रमादित्य की रानी मुक्ताबाई (सतवंती) का

भी आता है। सतवंती भगवान महाकाल की परमभक्त तथा बाल ब्रहमचारिणी थी। महाराजा विक्रमादित्य उसका बहुत आदार करते थे, उन्होंने उसके धर्म निर्वाह में कभी भी बाधा नहीं डाली। उसने अनेक चन्द्रायन व्रत किए थे। सूर्य भगवान की वह आराधना करती थी।

राज योगी भरथरी की वह प्रशंसा करती थी। वे उसके प्रेरक योगी थे। भरथरी प्रतिदिन उसके द्वार पर भिक्षा लेने आते थे। वे अलख का घोष कर 'माता भिक्षा दो' की पुकार लगाते थे। रानी सतवंती उनकी प्रतीक्षा करती थी एवं तत्काल भिक्षा देकर उन्हें प्रणाम कर धन्य होती थी।

एक दिन नित नियमानुसार भरथरी ने रानी के द्वार पर अलख लगाकर 'माता भिक्षा दो' की पुकार लगाई, किन्तु तीन–बार पुकार लगाने पर भी जब रानी बाहर नहीं आई, तब वे वहाँ से आगे बढ़ गए।

संयोग से जब भरथरी ने भिक्षा हेतु पुकार लगाई, तब रानी सतवंती नग्न अवस्था में जलकुँड में खड़ी होकर सूर्य आराधना में लीन थीं। उन्होंने योगी भर्तृहरि की पुकार नहीं सुनी। अंतिम अलख उनके कान पर पड़ी। वे उसी अवस्था में भिक्षा सामग्री लेकर महल के बाहर भागी। तब तक योगी तो आगे बढ़ गए थे। रानी भिक्षा सामग्री लेकर उनके पीछे भागने लगी। योगी भिक्षा लो– योगी भिक्षा लो। भरथरी ने रानी की आवाज सुनकर जब पलटकर पीछे देखा, तब रानी को पूर्णतः नग्न अवस्था में देखकर वे आगे बढ़ गए। रानी पीछे और भर्तृहरि आगे। तभी मार्ग में सिद्ध योगी दिव्य आभा लिए आ गए। उन्होंने भर्तृहरि को रोककर कहा– भर्तृहरि भिक्षा लो। भरथरी ने कहा– देव! माता नग्न अवस्था में है।

तब महात्मा बोले– अरे! भरथरी, सतवंती को तो देह भान ही नहीं है। वह तो समस्त विकारों से मुक्त हो चुकी है। तुम तपस्वी होकर भी देहभान से मुक्त नहीं हो पाए? रुको और रानी से भिक्षा ले लो। भरथरी ने भिक्षा स्वीकार कर रानी से निवेदन किया– माता! आप तत्काल महल लौट जाएँ। इस पर सतवंती ने कहा– देव! अब महलों में क्या लौटना। महल तो अब छूट गए। आप मुझे दीक्षा दें। भरथरी ने उसे दीक्षा देकर धन्य किया।[10]वे शैल पर्वत पर तपस्या हेतु चली गईं। उस दिव्य सिद्ध ने कहा– सतवंती! तुम धन्य हो। आज से तुम्हारा नाम सतवंती नहीं 'मुक्ता' होगा। यह अद्‌भुत प्रसंग इस गाथा को दिव्यता प्रदान करने हेतु पर्याप्त संदर्भ है।

इसी गाथा में इस प्रसंग में भी गोरखनाथ का उल्लेख नहीं आता। गाथा के संदर्भ आता है–

पेहलो तो नाथ महादेव जी ने जाणजो जी,
दूजा तो होया मच्छंदर नाथ।
मच्छंदर तो तप तप्यो जी भारी,
उपज्या जी उपज्या गोरखनाथ।
पेहलो तो गोरख नंदी जाणजो जी कोई,
दूजा तो होया गिरधर गोपाल।
तीजा तो जाणो जोगी भरथरी जी जोगी,
चौथा तो होया गोरखनाथ।
गोरख तो होया जुग–जुग मोकरा,
जुगाँ तो जुगाँ अवतार।
भटका ने गोलो बतायो जी गोरख,
भूल्याँ रो कर्‌यो जी उद्धार।
माहदे ती चाली वेल गोरख जी,
नाम तो धराया धर्‌या ठाट।
आखिर तो परगट्‌या जुग भरथरी जी गोरख,
भरथरी वराज्या गोरख पाट। [11]

इतने गोरख हुए। इस प्रकार गोरख एक उपाधि थी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विक्रमादित्य कालांतर में उपाधि बन गई। अंतिम गोरख स्वयं भरथरी हुए और वे पूर्व गोरख के पाट पर विराजित हुए।

उसी गाथा में एक प्रसंग है– जब राणी पींगला के योग सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करने पर उन्हें सिद्धि हो जाती है, तब गुफा में गोरख प्रकट होते हैं। वे उनके माथे पर हाथ फेरकर उन्हें तपस्या से मुक्त करते हैं।

गोरख ने माथे हाथ धर्‌यो, सगती लीला रच डाली,
भरथरी समाधी मुक्तविया, आंखाँ खोली देही हाली।
गोरख रे चरणा धोक लगा, अलख–अलख नीनाद कर्‌यो,
तप भोम गुफा घण गूँज गई, अलख–अलख रो घोर निनाद भर्‌यो।
भरथरी जोगी उबा विया, कर्‌यो अलख निनाद,
गोरख के चरण लग्या, खूब करी फरयाद।
धन्न–धन्न रे म्हारा सद्‌गुरु, दरसन दिया आप,
ऐसी मेहर राखजो, वीजो सदा सहाय।

नाथां रो मिलणो विदयो, होयो अजब सुमेल,
ना तो कोई गुरु कथ्या, ना कोई कथ्यो चेल।
दोई नाथ औतर्‌या, करण जगत कल्याण,
एक तो पेलों अवतर्‌या, दूजा उतर्‌या जाण।[12]

इन प्रसंगों से यह ज्ञात हो जाता है कि गोरखनाथ और भरथरी का मिलन हुआ था। इसी गाथा में यह भी कहा गया है कि दोनों अवतारी थे। उनमें न तो कोई गुरु था न चेला। स्वयं भरथरी ही गोरखनाथ का अवतार थे। दोनों ने जगत कल्याण हेतु अवतार लिया। एक का अवतार पहले हुआ, दूसरा का पश्चात् में।

यदि हम भरथरी और गोरख के समय पर विचार करें, तब बार–बार यह प्रश्न उठता है कि दोनों के समय अन्तराल को किस प्रकार पाटा जा सकता है। भरथरी निश्चित रूप से विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे। इस प्रकार विक्रम संवत् प्रथम चरण में राजा भर्तृहरि का होना सर्वमान्य है।

यही भर्तृहरि वैराग्य धारण कर अपना राज्य अपने अनुज विक्रमादित्य को सौंपकर तपस्या करने चले जाते हैं। यदि हम यह कहें कि भर्तृहरि और भरथरी भिन्न हैं, तब फिर प्रश्न उठ खड़ा होगा कि वैराग्य के पश्चात् भर्तृहरि का इतिहास क्या बना? लोक यह मानता है कि भर्तृहरि ही लोक जीवन में भरथरी कहे गए और वे ही लोक गाथाओं के नायक भी हैं।

गोरख का समय भिन्न विद्वानों ने 7वीं सदी से लेकर 10वीं सदी तक निर्धारित किया है।[13]

डॉ. फर्कहार तो गोरखनाथ को संवत् 1275 तक ले जाते हैं।[14] इसी प्रकार इत्सिंग के अनुसार भर्तृहरि का समय 7वीं शताब्दी माना जाता है।

इन सब विद्वानों की माने तो भरथरी और गोरखनाथ के समय में 700 वर्षो से 1000 वर्षों का अन्तर ठहरता है। सम्भव यह भी लगता है कि गाथा के अनुसार भर्तृहरि को दीक्षा उन्हीं के कुलगुरु सिद्धनाथ ने दी। जो बहुत बड़े साधक एवं सिद्ध पुरुष थे। बाद के वर्षों में नाथ पंथियों ने भरथरी के साथ गोरखनाथ को जोड़ दिया हो।

सम्भावनाओं से सहमत या असहमत होना आवश्यक भी नहीं। आवश्यक यह है कि हम इस गाथा का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें तथा इसमें से वे तथ्य खोजें जो हमें किसी प्रमाणिक निर्णय तक ले जाने में मदद कर सकें।

यह गाथा स्वयं में अनेक ज्ञात–अज्ञात प्रसंगों का उद्घाटन करने में एक महत्त्वपूर्ण सेतु है। काल समय के चक्कर में पड़ने के बजाए इसमें निहित संवादों, भाषा के सौंदर्य एवं मालवा–मेवाड़ की रसभीनी लोक संस्कृति को समझने का प्रयत्न करें। 601 पदों की यह गाथा अब तक उपलब्ध भरथरी गाथाओं में सबसे बड़ी है। यह गाथा कई अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर देती हुई भरथरी के जन्म से लेकर उनके सिद्ध हो जाने एवं लोक कल्याण हेतु लोकमय हो जाने तक की जीवन यात्रा का आख्यान है।

इसका संयोजन कई अंश–गाथाओं के योग से किया गया है, इस कारण इसमें कहीं–कहीं दोहराव संभव है। यह स्वाभाविक भी है। पाठ भेद तो लोक साहित्य का गुण है। यह उसकी पहचान भी है।

इसका संकलन अनेक लोक गायकों से समय–समय पर किया गया है। 1975 से सन् 2014 तक इसमें सम्पादन का क्रम चलता रहा है। विगत 39 वर्षों से यह गाथा मेरे संग्रह में रहीं। अब इसका सूर्योदय हुआ है। श्री अशोक मिश्र जी के प्रयास से इसे यथा सम्भव सम्पादित कर प्रकाशन तीर्थ पर भेज रहा हूँ। आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल को इसके प्रकाशन का यश गौरव मिले और मेरा सुदीर्घ काल का श्रम सार्थक हो, यही आशा है। सबके प्रति वंदन।

संदर्भ

1. धरम धणी दल दातार– डॉ. पूरन सहगल, पद 250, 253
2. धरम धणी दल दातार– डॉ. पूरन सहगल, पद 266,269,27
1. धरम धणी दल दातार– डॉ. पूरन सहगल, पद 250, 253
2. धरम धणी दल दातार– डॉ. पूरन सहगल, पद 266,269,27
3. धरम धणी दल दातार– डॉ. पूरन सहगल, पद 266,269,27
4. डॉ. श्यामसुन्दर निगम– आख्यान, लोकाख्यान और इतिहास, चौमासा–भोपाल अंक 75 नवम्बर 07, फरवरी 2008, पृ. 35
5. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी–भारतीय आख्यान, परम्परा और स्वरूप, चौमासा– भोपाल अंक 75 नवम्बर 07 फरवरी 2008, पृ. 9
6. ऋग्वेद 8.32, 1, 2.38 / 9.86, 42, 10, 64, 3
7. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी–भारतीय आख्यानः परम्परा और स्वरूप, चौमासा– भोपाल अंक 75 नवम्बर 07 फरवरी 2008, पृ. 5
8. देखें संलग्न लोकगाथा 'पींगला ऊबी हे गुफाद्वार' पद 394 से 419
9. सोलंखड़ी सीता– डॉ. पूरन सहगल
10. यही गाथा पद 465–534
11. यही गाथा पद 441 से 450
12. यही गाथा पद 451 से 457
13. देखें– नाथ सम्प्रदाय– डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 96,
    गोरखबानी–भूमिका, पृ.20, डॉ. बड़थवाल, एन साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स– जेम्स हेस्टिंग्स, भाग 6, पृ. 238, योग प्रवाह– डॉ. बड़थवाल पृ. 62, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 107
14. डॉ. फर्कहार– संवत् 1257 देखे– नाथपंथ और निर्गुण संत काव्य, डॉ. कोमल सोले, पृ. 108
    मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा, नीमच म.प्र. 458110

राजयोगी भरथरी

उज्जैणी तीरथ बड़ो, महाकार रो राज।
जतरा बी राजा विया, करया धरम रा काज।।1।।
गर्ध भिल्ल राजो बड़ो, नेम धरम निरधार।
चम्पादे राणी कहें, सतवंती सतनार।।2।।
राणी तप तपसा करे, करे पुन्न रा काम।
गर्ध भिल्ल राजो सुभद्र, सूरवीर रण हाम।।3।।
चम्पादे तपसा तपे, एक पुत्तर रे काज।
वारिस देओ मादेवजी, राज धरम रे साज।।4।।
मन री पीड़ा नी सुणी, ना सिवजी ना राम।
चम्पादे तपसा तपे, छाया गणे न धाम।।5।।
बाली उमर परणी चड़ी, ऊमर आई उतार।
बालूड़ो नी हे गोद में, होयो जनम खुवार।।6।।
सोना बोयाँ नी उगे, अमरत रे संचार।
मोतीड़ा नी नीपजे, बोयाँ खेत मंझार।।7।।
सतखण्डा तो मेहल हे, सातई खण्ड अंधकार।
एक बालूड़ो आवतो, वैइ जातो उजियार।।8।।
किरकारी रे गूँजताँ, हिरदै उठे हिलोर।
सतखंडा मेहलाँ सूरज उगे, चलकण लागे भोर।।9।।
बागां कोयल कूकताँ, आवे अम्बा मोर।

मोर बोलयाँ घन गजे, वरसण वे घनघोर।।10।।
सतखण्डा तो मेहल है, सोला उजल तराव।
तरस जदाँ ई बूझसी, ममता नीर भराव।।11।।
आखर सुण ली रामजी, राणी री अरज पुकार।
मेहलाँ परगट्या साध जी, गर मुंडो री मार।।12।।
मादेव खुद परगट्या, सुणताँ अरज पुकार।
राणी झट चरणा लगी, नयणा आँसू धार।।13।।
चम्पादे राणी सुणो, गुण लो म्हारी वात।
बारक देऊँ अंस रो, थें केहलाजो मात।।14।।
अमरत जल पीवो तुरत तपसा री परसाद।
जस भर्यो बेटो जमे, पण रखजो मरजाद।।15।।
बारा बरस जग में रमे, फेर परायो पूत।
म्हारो मुझ में आ मले, बण जावे अवधूत।।16।।
सुभरी थारी बाजगी, गर्धभिल्ल रे धाम।
बारक जनमयो भरथरी, सतगुरु धरयो नाम।।17।।
आधी कुन्डली लीख ने, धरी राज रे हाम।
पूरी तो खुद लीखसी, जग रो सरजक राम।।18।।
जतरी म्हारी जाणती, लिख कर दी तैयार।
पुत्तर जनम्यो सुभ घड़ी, हे कोई औतार।।19।।
सतगुरु वाणी बोलया, भल को परख लिलाट।
कै तो यो जोगी बणे, कै धज्ज राखण हार।।20।।
बरस बारहवो बीतयाँ, महादेव रो लेख।
करनी धरनी देव री, लागे रेख में मेख।।21।।
चम्पादे अन्न जल तज्यो, वई तपस्या लीन।
परगट्या महादेवजी, भेस बणायो दीन।।22।।
चम्पादे जागो तुरत, बेटो देऊँ एक।
विक्रम होसी जगत में, व्हेसी नाम सुभेक।।23।।
दोई पुत्तर जस चढ़े, भरथरी अर कृत सेन।
अब थें साता में रहो, धरम बणाऊँ बेन।।24।।
बरस बारमो लागताँ, भरथरी चढ़या परवाण।
असव सवारी धर लिया, खाँदे तीर कमाण।।25।।
मृग मारे मृगया करे, ताण्यो चुके न बाण।

मृग देखे मन मगन वे, करी न कोई हाण।।26।।
मिरगो दिखयो श्यामलो, भरे कुलांचा खूप।
कद्याँ तो हामू दिख पड़े, कद्याँ तो जावे छूप।।27।।
बाण चलाया मोकरा, लाग्या नी मिरगे डील।
अस्व दौड़ायो सरपटो, तीन कोस दो मील।।28।।
कुलाचाँ भरतो मिरगड़ो, छिप गयो म्रिगयाँ बीच।
एक सै छबी मिरगियाँ, ऊठ गी साँसाँ खीच।।29।।
स्यामला ने मति मारो आखेटिया, लेलो म्हाँ का प्राण।
मन मरजी सो चूण लो, ताक चलाड़ो बाण।।30।।
गऊ नारी बिपर मारताँ, लागे जबरो पाप।
मारूँ तो मारू स्यामो मिरगड़ो, नी लागे ला पाप।।31।।
दया नहिं देखी कुँवर भरथरी, छोड़ दियो तुरताँ बाण।
स्यामो तो होयो गेहरो घायलो, छूट गया मिरगा रा प्राण।।32।।
स्यामा ने संघारताँ, कर्‌यो नी तनक विचार।
बिलखे रेह–रेह मिरगियाँ, रोवे जारम जार।।33।।
कुण जाया कुण वंस रा, कुण हे माई बाप।
जो कर्‌यो भरसें अवस, यो हे म्हाँको स्राप।।34।।
अनमन होयो भरथरी, अकला उठया प्राण।
हाथाँ में ती छूट्‌या, अणचित तीर कमाण।।35।।
मिरगो घोड़े नाखताँ, आयो सद्‌गुरु ठाण।
जीवतयो कर दो तुरत, नी तर त्यागूँ प्राण।।36।।
पाप कमायो अणचिताँ, बाण चलायो ताण।
स्राप मिटाओ दास रो, होय प्राण री हाँण।।37।।
मरयो किसतर जी सके, सुणो भरतरी साद।
जीवत करताँ टूटसी, विधना री मरजाद।।38।।
अपणे घट न्हारो कुँवर, थें साधाँ रा साद।
महादेव रा अंस थे, कर दो सिंगी नाद।।39।।
पूरब जनम यो साध थो मिरग्याँ सिस्या जाण।
पाप करम रल–मल करयो, वई धरम की हाँण।।40।।
स्राप लग्यो मिरगा विया, अणी जनम रो मेल।
मिरग्याँ ने भी मार दे, पहुँचे सरग सुमेल।।41।।

भरथरी पापो जाणताँ, कूद गयो कुंड बीच।
सतगुरु ने झट काढ़ल्यो, अमरत जल दियो सींच।।42।।
इसतर भरतरी रो वियो, दूजो जनम सुचार।
मरजादा महादेव री, हो पायी निरधार।।43।।
महादेव री राख ली, सतगुरु ने मरजाद।
हवन कुण्ड ती परगट्यो, साधाँ रो परसाद।।44।।
मिरगड़यो जींदो वियो, अमरत जल सिंचार।
पाछो वन जा पौंचयो, ऊँच कुलाँचा मार।।45।।
भरथरी सध–बध भूलयो, भूल्यो म्रग संघार।
जो होयो सब भूल्यो, भूल्यो जनम जमार।।46।।
अखन समाधी साध ली, हवन कुंड रे हाम।
अलख जाप रटवा लग्यो, भूल गयो निज नाम।।47।।
साध मिरग संघारताँ, लाग्यो थो जो स्राप।
नाम रंटता मिटि गयो, अलख नाम रे जाप।।48।।
नवो जनम ले भरथरी, होया सुगन सुचेत।
सद्गुरु रा पग धोकया, बुद्धि–सिद्धि समेत।।49।।
सद्गुरु री किरपा वई, विद्या मिली सुनाम।
पांच बरस सुरतो रहयो, सतगुरु आसरम धाम।।50।।
जाओ कुँवरा भरथरी, उज्जैनी रे राज।
नीत–रीत ती सारजो, महाकार रा काज।।51।।
घुड़ले चढ़या भरथरी, सद्गुरु दी आसीस।
मोराँ पे थपकी करी, हाथ धर दियो सीस।।52।।
बरस अठारह भरथरी, होया जुगत जुवान।
कमर कटारी खड़ग धज, खाँदे तीर कमान।।53।।
दूराँ ती सिवजी फबे, निकटायाँ में राम।
भलके जाणे क्रसन वे, धन धन मारव धाम।।54।।
धन धरती धन धाम हे, धन हे मारव देस।
भरथरी पाट बराजताँ, कटया सबै करेस।।55।।
मारव भारत देस रो, कांईं करां बखाण।
बड़ा–बड़ा कवियाँ करया, केह–कथताँ गुणगान।।56।।
यो ऋषियाँ रो देस हे, सतपुरुषाँ रो धाम।
देवत सब आवे सबै, करे अठे विसराम।।57।।

भारत रे हिरदे बसे, मारव देस महान।
इण रे नगर उज्जैन रो, करणो चहूँ बखान।।58।।
महाकार रो नगर हे, सब देवत रो वास।
राजा ने हरदम रहे, दुख सुख में विसवास।।59।।
नगरपति महाकार हे, बाकी हगरा दास।
नगर बाहर रा मेहल में, राजो करे निवास।।60।।
उज्जैनी राजो वियो, भरथरी जण रो नाम।
सूझ–बूझा सासन करे, परजा में सनमान।।61।।
धरम नेम गाठो घणो, राज धरम परमान।
बैरी औचकया रहे, चौकसया दरबान।।62।।
जुद्ध भोम में खड़ग ले, डट जावे जद राज।
बैरी पे इसतर पड़े, ज्युँ चरकल पे बाज।।63।।
खड़ग चले चकरी बणे, दुसमण ने ढरकाय।
बटका व्हे भू पे पड़े, जो भी हामूँ आय।।64।।
दण्ड कठन हिरदो नरम, करे न्याव री वात।
पच्छपात सोचे नहीं, बाप होय कै मात।।65।।
नेम धरम परजा चले, करे न छल री वात।
कपट करेस होवे नहीं, करे न कण पे घात।।66।।
वरखा वेवे छावती, ना अत होय न सूख।
रोग–सोग व्यापे नहीं, न देवत रो दूख।।67।।
फसलाँ ऊगें चौगुनी, राजा रे परताप।
जग्य हवन वेता रहे, मिटे सकल संताप।।68।।
बेपारी सम्पन्न घणा, जावे देस विदेस।
दान धरम हरदम करे, आमद रो दशमेस।।69।।
उज्जैनी में मूरखो, मले नहीं परमान।
पड़सालाँ में गाँम–घर, पंडित देवें ज्ञान।।70।।
भरथरी राजा रो घणो, गुणि जन करे बखान।
राजो गुणियाँ रो करे, हात जोड़ सनमान।।71।।
दोनईं हाथाँ ती करे, राजो नत दम दान।
पंडित–गुणियाँ रो करे, कवित बणा गुणगान।।72।।
भरथरी राजो ज्ञान रो, पूरो जाणण हार।
नीत–रीत सिंणगार रा, ग्रंथ कर्‌या तैयार।।73।।

भरथरी रो जस हूरजो, चढ़े ऊँच आकास।
दसौं दिसाँ में झलमले, फेले अखन प्रकास।।74।।
भरथरी रे मुख–भाल पे, हूर ज्यो भलकाय।
आँखाँ रे चमकार ने, सबदाँ कहयो न जाय।।75।।
वाणी समदर गेहरड़ी, मधरी पण गम्भीर।
चाले तो नाहर लगे, भुजा लम्ब अतधीर।।76।।
ज्ञानवान बलवान अत, ऋषि मनु रो औतार।
कद्याँ तो अत्री ज्युँ फबे, कद्याँ अगस्त गुणकार।।77।।
चोरी, जारी लूटणी, तीनईं कद्यां नी होय।
हाँकर तो लागे घराँ, तारा सुण्या न कोय।।78।।
गो बामण अर बिरछ री, घर–घर पूजा होय।
मात–पिता गुरु देव ने, तीर्थ गणे सब कोय।।79।।
ऐसो उज्जैनी नगर, ऐसो भरथरी राज।
न्याव धरम पारै सबै, नीत–रीत रा काज।।80।।

x x x

वैरी चारी चौकड़े, हलमल करे वचार।
हूरज में कसतर पड़े, राहु–केतु रो भार।।81।।
दो जन आया राज में, दुरनीति हुसियार।
परजा में हलमल गया, करे अनीत परचार।।82।।
अंग–संग लाया नाचणियां, गाम–गाम में जाय।
दाम लगावे गाँठ रो, मदको मुफत पिलाय।।83।।
मदको पी धींगा करे, दुरमतिया वैई जाय।
नत करेस वेवे घणो, घर में धूम मचाय।।84।।
चौक चौकड़े हेर में, मद पी करे धुमाल।
शूकर ज्युँ लोट्याँ करे, ईच–कीच बेहाल।।85।।
दुत खेले चोर्याँ करे, छल रा करम कमाय।
परजा में एसी बणी, जाणे लागी लाय।।86।।
धीराँ–धीराँ राज में, फेल गयो दुरचार।
त्राही–त्राही मच उठी, भरथरी रे दरबार।।87।।
दुस्ट जणा ने जोड़ ली, राजा ती घण प्रीत।
भरथरी राजो भूल ग्यो, राज धरम री नीत।।88।।

रात दन मदको पिवे, सेवे कुलटा नार।
भोग विलासी वई गयो, राजा रो वेवहार।।89।।

x x x

गणका आई एक दन, भरथरी रे दरबार।
अंग–अंग साँचे ढल्यो, मन मोहण्यो उणियार।।90।।
भलक्यो जोबन यूँ फबे, ज्युँ चन्दा आकास।
राजा रा दरबार में, फेल्यो सीत प्रकास।।91।।
मृगनैणी कामणवती, मंद–मंद मुसकाय।
जें देखे वा गोरड़ी, दूपट बाण चलाय।।92।।
देखे तो घायल करे, घात करे मुस्काय।
गजब जोबनो कचपचो, कसन्या कस्यो न जाय।।93।।
छम–छम वाजे पाजपाँ, झुमका झोला खाय।
नथनी निरत करे अद्भुतयो, हीरमणी भलकाय।।94।।
गजबी चाल चले मदमाती, मोरयो सरमाय।
जें बी देखे घायल कर दे, तनअर मन अकलाय।।95।।
साज–बाज साथे लियाँ, साजिंदा हरसाय।
निरत दिखावण गोरड़ी, नमती अरज लगास।।96।।

x x x

नाम वतायो पींगला, पींगल गढ़ हे धाम।
उज्जैणी वसणो चहूँ, करुँ न खोटो काम।।97।।
भरथरी खुद मोवित विया, मोह लिया दरबार।
राजे करी निछावरी, मोहराँ एक हजार।।98।।
परवानो झट कर दियो, निहचित करो मुकाम।
अमन–चैन रेहवो अठे, राज बणावे धाम।।99।।
एक पींगला मेहल में, चन्दा वरणो रूप।
दूजी मेहलाँ बारने, ज्युँ हूरज री धूप।।100।।
मेहलाँ राणी पींगला, सद् सतवंती नार।
तुलस्याँ पूजे पीपलो, अर पूजे भरतार।।101।।

x x x

पींगला गणिका नगर री, अणगण्या भरतार।
राजपुरख सहुकार जन, व्हे सब रो सतकार।।102।।

राजा भरथरी फंसि गया, गणिका रे मो फाँस।
मेहलाँ राणी पींगला, ठण्डा भरे उसाँस।।103।।
भरथरी री मइमा घटी, टूट गयो सनमान।
राजकाज सब छूट्या, फीको पड़यो ज्ञान।।104।।
मूरखड़ो ओछो करे, 'ओ' कहने टर जाय।
ज्ञानी खावे गोतड़ा, जगती नाम धराय।।105।।
रूप हाट में बिक गयो, भरथरी रो सब ज्ञान।
रूप चलक में वैगयो, अस्त ज्ञान रो भान।।106।।

x x x

राजगुरु जद जाणयो, भरथरी रो भटकाव।
राजधरम ने पारताँ, सोचण लग्या उपाव।।107।।
एक दन आया चेतवा, भरथरी के दरबार।
भरतरी ने पग धोक्या, खूब कर्यो सतकार।।108।।

भरथरी

भला पधार्या सद्गुरु, करयो खूब उपगार।
दूत पठाता हुकुम दे, आ जातो चरणार।।109।।
आसन दे सनमानयाँ, हेयो घणो विनीत।
देवगुरु आज्ञा करो, कै धार्यो हे चीत।।110।।
तुरत–फुरत पालन करुँ, सिरिजी रो आदेस।
कृपा करो आसीस दो, मीटें सकल करेस।।111।।

सद्गुरु

सद्गुरु ने आसीस दे, कह्यो सुणो हे राज।
धरम–करम दृढ़ राखताँ, सदमत करजो काज।।112।।
धरम छोड़ कारज कराँ, होय राज री हानि।
रीत–नीत खोटी बणे, मति करजो नादानि।।113।।
रीत–नीत छोड़ो मती, करजो मति गुमान।
धरम रहे चारी चरण, एक निस्ट सदभान।।114।।
भरथरी सोना पात्र में, विष अमरत नी होय।
कुलटा नारी गरल ती, नी बच पायो कोय।।115।।
महाकाल रिच्छा करें, हे म्हारो आसीस।

अमरत फल यो जाणजो, विधना री बगसीस।।116।।
अमरत फल जो कोई भखे, सदा जुवा रह जाय।
रोग–सोग व्यापे नहीं, हिरदै सदमत आय।।117।।
अमरत फल ले भरथरी, होया खूब खुसाल।
पुण्य फल्यो किरपा वई, सद्गुरु अर महाकाल।।118।।

x x x

भरथरी नित दन रात में, रवे पिंगला थान।
निरत जमे संगीत व्हे, होय मदक रो पान।।119।।
अति प्यारी पिंगला बणी, राजा जी रे हीव।
मेहलाँ राणी पींगला, रटे रात दन पीव।।120।।
अमरत फल रे भरथरी, गया पींगला मेहल।
पिंगला गणिका ने करीं, हर दन सरखी टेहल।।121।।

भरथरी

अमरत फल लो पींगला, सद्गुरु रो परसाद।
जो भाखे हरख्यो रहे, मीटे सबै विसाद।।122।।
अमर जुवानी रेह सदा, विरधापन नहिं आय।
मिरत् भय व्यापे नहीं, जो अमरत फल खाय।।123।।
गणिका ने फल तो लिये, धर्यो क्रसन रे हाम।
भरथरी दन उगताँ गया, पाछा अपणे धाम।।124।।
पिंगला रो अति नेह थो, सेनापति रे साथ।
गणिका ने फल धर दियो, सेनापति रे हाथ।।125।।

गणिका

थिर रहिजो सेनापति, रहिजो सदा जुवान।
रगसा करजो राजरी, अमरत रो वरदान।।126।।
राजाजी फल दई गया, म्हारे जोबन काज।
म्हारे जोबन ती बड़ो, महाकाल रो राज।।127।।
गणिका रो कई जीवणो, कई जोबन रो मान।
स्वारथ रो नेहो मले, बेअसर थो सनमान।।128।।
सेनापति फल लेवताँ, होयो अस्व सवार।
फूलवती राजी करूँ, एसो कर्यो विचार।।129।।

फूलवती तिस भारया, अति सतवंती नार।
सुन्न–मुन्न रेहवे सदाँ, करे नहीं सिंणगार।।130।।
चन्द्रबदनी मृगलोचनी, फूलवती थो नाम।
स्वामी गणिता संग रमे, हिरदै लाग्यो डाम।।131।।
सेनापति रे मन उग्यो, फूलवती रो चाव।
फूलवती फल भाख ले, एसो करूँ उपाव।।132।।
गणिका राजा री नही, म्हारी भी नी होय।
निज परणी राजी करूँ, जद मन हरसित होय।।133।।
एसी मन चित धारताँ, सद्मत कर निरधार।
अमरत फल परणी दियो, पूरो नेह चितार।।134।।

सेनापति फूलवती

फूलाँ फलले सोचयो, म्हारो काईं जमार।
स्वामी गणिका वस विया, म्हारी नहीं सम्हार।।135।।
यो जोबन कई काम रो, कई जीवण रो तोल।
कई तो तन री रूपता, कई सिणगरी मोल।।136।।
पिंगला राणी ने करूँ, यो अमरत फल भेंट।
माँ जायी हरखी रहे, सब दुख होवें मेट।।137।।
घणा दना भेंटी नहीं, जाऊँ वण रे मेहल।
दुख–सुख हिल मिल बाँटसा, होसी नेह सुमेल।।138।।
पिंगला राणी गुणवती, रूप गुणा री खान।
राजा री अत छावणी, खूब करे सनमान।।139।।
यूँ विचार फूलाँ गई, पिंगला रे सुखधाम।
बहना ती बहना मली, एक रूप दो नाम।।140।।
राणी पिंगला फूलवती, दोइ हग्गी बहना।
एक हरीखो रूपभाग, एक हरीखो रहना।।141।।
दो रा पति बिलमया, नत गणिका रे जावे।
मेहलाँ भीतर सेजाँ बेठी, अपणो जिव कलपावे।।142।।
राजो भूल्यो राजधरम ने, सेनापति विलासी।
एक वई गयो नट नचैयो, दूजो वियो मिरासी।।143।।
परजा में तो त्राही मचगी, सीमा वई उजाड़ी।
ना कोई रह्यो अगाड़ी रच्छक, ना कोई रह्यो पिछाड़ी।।144।।

बेठ डागरा ऊपर कोई, गेहरी नींदाँ सोवे।
पंछीड़ा तो चुगे खेत ने, जाग्याँ बेठो रोवे।।145।।
भरथरी ने भी राजकाज री, ऐसी दुरगत होई।
त्राही–त्राही मची राज में, विपदा सुणे न कोई।।146।।
फूलवती ने सोच हमजताँ, एसो मतो विचार्‌यो।
अमरत फल पिंगला खा लेवे, यूँ कर्‌यो निरधारो।।147।।

फूलवती

फूलवती ने अमरत फल, पिंगला रे हामू धर्‌यो।
बड़ा नेहती बोली जीजाँ, यो फल हे अमरत भर्‌यो।।148।।
यो फल चिर यौवन रो दाता, तन मन युवतो रेहवे।
आयुस बढ़े, घटे विरधापन, एसो सद्‌गुरु केहवे।।149।।
आप भखो यो अमरत फल, थे हो राजा री राणी।
भेंट करो सविकार पींगला, मूँ छोटी नीमाणी।।150।।
अमरत फल दे फूलवती, मेहलाँ में पाछी आई।
मन ही मन आकुलाई फूलाँ, धणी बण्यो हरजाई।।151।।
अमरत फल पा पींगला ने, कर्‌यो खूब विचारो।
म्हारे खायाँ कई होवण रो, जोबन हे बेसारो।।152।।
स्वामी खावे अमर पद पावे, यो हे धरम हमारो।
फल देऊँ स्वामीजी ने, एसो कर लियो विचारो।।153।।
सदा सुहागण रेह पाऊँ री, सुधरे सुगन जमारो।
नारी को तो एक चाहवणा, भरता रहे सुखारो।।154।।

पींगला

बड़ा मान ती पिंगला ने, फल भरथरी ने दे दीयो।
यो अमरत फल जीमो स्वामी, हरसे म्हारो हीयो।।155।।
ऐसो केहवे अणके खायाँ, तन–मन रहे सुचेता।
आयुस अर जोबन थिर होवे, बिरधापन नहीं वेता।।156।।
फल देखताँ भरथरी राजो, औचक वई सक पायो।
गणिका पिंगला ती यो फल राणी, पिंगला कसतर पायो।।157।।
भेद लगायो खोज कराई, हगरो किस्सो जाण्यो।
अम्मर वेणो कोई नी छावे, भरथरी ने अनमाण्यो।।158।।
पिंगला गणिका ने दगो कर्‌यो, भरथरी रो मन अकलायो।

भृकटी तणी जाबड़ी कसगी, गणिका पे कोपायो।।159।।
अस्व बेठे झट कोठे पहुँच्यो, पिंगला पे कोप कर्‌यो भारी।
हगरा उपहार गणा दीया, मदका बिन होयो मदकारी।।160।।

भरथरी

निरलज्ज री सौदागर, खूब करी धोखादारी।
धिक–धिक री वैस्या नगर वधू धिक–धिक री गणिका बदकारी।।161।।

पींगला

पिंगला बोली जी सुणो राज, राजा हो कोप जता जाणो।
उपहार दिया उपकार कर्‌यो, थें हगरी बात बता जाणो।।162।।
पण राज धरम थे भूलि गया, मूँ गणिका धरम नहीं भूली।
म्हारो अपराधा खरो जाणो, थें चढ़ा सको फाँसी–सूली।।163।।
पण राजा जी मूँ गणिका हूँ, मूँ नगरवधू भी केहलाऊँ।
जो भी आवे म्हारो कोठे, हगरा रो मन मूँ बेहलाऊँ।।164।।
कोई राजा व्हे कै रंग भले, म्हारे घर आयाँ इन्दर हे।
भेद फरक राखूँ कोयनी, डबरो भी बड़ो समंदर हे।।165।।
यो धरम एक गणिका रो हे, सब नेम धरम पालन कर्‌यो।
एसो केह गणिका पिंगला ने, भरथरी रे पग माथो धर्‌यो।।166।।
फेर कह्‌यो सुणो हे महाराज, प्रभु महाकार री साखी है।
वण रो ई पको आसरो हे, वणने ई लजपत राखी है।।167।।
मूँ गणिका धरम छोड़ आज, भगवा वसतर ई पेहरूँगी।
मोह–माया सब छोड़ दिया, उज्जैन नगर नहीं ठहरूँगी।।168।।
अतिभोग रोग ज्युँ बण जावे, बेबस कर दे मन अकलावे।
अति भोगी कै तो नंगो वे, कै घट वैराग समा जावे।।169।।
थें गुरु बण्या हे भरथरी जी, पिंगला रा पाप सबै धोया।
अब भोग रोग मिट गया सबै, तन मन दोई ऊजल होया।।170।।

x x x

अतरो केह गणिका पिंगला ने, हिरदै वैराग्य धारण कर्‌यो।
उठ चली गई मेहलाँ भीतर, मन–वचना रो पारन कर्‌यो।।171।।
बण वैरागण चल पड़ी तुरत, मेहलाँ रे बाऽर निकर गई।
भरथरी री धोक लगा पिंगला, महाकार री शरण वई।।172।।
भरथरी राजो औचक ऊबो, भीतर ई भीतर टूट गयो।

अमरत फल धर्‌यो हाथाँ में, हाथां ती रेटाँ छूट गयो।।173।।
अमरत फल भलै अमर करतो, जोबन ने कर देतो कायम।
बन खायां ही अमरत फल ने, हगरा को मन कर्‌यो सायम।।174।।
धन्न–धन्न गुरु धन्य आप, साँचो मारग बतला दीयो।
अमरत फल जण के हाथ गयो, वण रो हिरदो निरमल वीयो।।175।।
यूँ सोच–विचारताँ भरथरी जी, गणिका घर ती बाअर आया।
चौमारग पे ऊबा जाणे, मनड़ो हतास तन सकपाया।।176।।
यो संसार असार जाण, हिरदै वैराग उभर आयो।
वा मने गुरु बंदगी हे पण, मारग तो साँचो बतलाओ।।177।।
वेराग उग्यो भरथरी रे घट, सब छोड़ दियो मोह तोड़ दियो।
राज पाट राणी रुतबो, सब हाँ केहताँ में छोड़ दियो।।178।।

भरथरी

सुन्न–मुन्न बैठयो महल, भरथरी करे विचार।
कै तो सिपरा डूब मरूँ, कै लग जाऊं पार।।179।।
म्हारे ती गणिका भली, तुरताँ लियो विराग।
छोड़याँ तो छूटे नहीं, जग रो राग अनराग।।180।।
भवसागर कसतर तरूँ, कूण उतारे पार।
पगाँ भाटा बांध्या, डूबण रो मिरधार।।181।।
हामे आवो सतगुरु, मारग देओ बताय।
भरथरी फंस्यो भंवर में, अधबिच गोता खाय।।182।।
अलख–अलख धुन सुण पड़ी, भीतर वाज्यो नाद।
भरथरी ने अणभूतयो, पूरण लगी मुराद।।183।।
निंदरा ती जागो तुरत, उज्जैणी रा राज।
जोगी ऊबो बारने, करे अलख आवाज।।184।।

जोगी

जाग रे जाग राजा भरथरी, जोगी खड़्यो हे थारे दुआर।
अलख निरंजन अलख निरंजन, हिरदा में निरधार।।185।।
कुण बेटो कुण बाप रे भरथरी, कुण राणी कुण राज।
पलक उघाड़ ने देखले भरथरी, सपना रो संसार ।।186।।
छोड़ यो भोग विलास रे भरथरी, मतिकर जनम खुवार।
घिरत–डाल्याँ ला नी बुझे रे भरथरी, मोह माया री झार।।187।।

अलख निरंजन अलख निरंजन, यो ई तरण जहाज।
मोह की बाँधणी तोड़ रे भरथरी, चाल पड़ो म्हरे लार।।188।।
सिद्ध गुरु माथे हाथ धर दियो, धर दियो मोराँ हाथ।
मोह रा बंधन टूटया तुरतां, चालण लाग्या साथ।।189।।
मोह रा बंधन जद टूटेला, परणी देवे सांग।।190।।
सेली सिंगी भगवो पेहर्‌यो, चिमट्‌यो लयो हाथ।
भिक्षा मांगण आया भरथरी, वेस जोगियो राख।।191।।
तीन तो राणियाँ खास जाणजो, बाकी कभी न सार।
भोगी राजो जोगी होयो, तोड़ दिया जगदा तार।।192।।
पेली तो राणी जाणो सुखमणी, हाँच धरम री राख।
दूजी तो राणी कही ईड़ला, नीत–रीत चित्त साख।।193।।
राणी ती तीजी पदमण पींगला, राजा री जीव जड़ी।
चाले तो लाजे वन मोरणी, सोला तो साजे सिंणगार।।194।।
डावें तो वराजे राणी ईड़ला, जीमणे तो पींगला को निरधार।
पाट वरजे राणी सुखमणा, सतमत राखण हार।।195।।

भरथरी

अलख जगावे जोगी भरथरी, कदरी जोवे वाट,
सुणो तो सुणो राणी सुखमणा, मेहलां ती आवो बाहर।।196।।
मुट्ठी–दो मुट्ठी तो झट भिक्षा, देओ माता सुखमणा,
जोगो ऊबो हे थारे द्वार।।197।।
सतरी तो देओ मुट्ठी घूघरी, ओ माता सुखमणा,
गत री तो देओ मुट्ठीऽ क ज्वार।।198।।
भिक्षा तो देओ माता सुखमणा,
जोगी ऊबा हे थारे दुवार।।199।।

सुखमणा

सत री तो लेओ मुट्ठी घूघरी जी जोगी,
गत री तो लेओ मुट्ठी जुवार।।200।।
अलख जगाओ जोगी परवतां बेठजो खोखर बीच,
ध्यान लगाजो साँचली जी कोई, काढ़जो सत रो सार।।201।।
झांको तो जोगी भीतरां, भूलजो बाअर रो मोह,
भीतरां तो जाणो जोगी भरथरी, झर रई अमरत धार।।202।।

रंग रस घण भींज्या जी जोगी, घणा तो भोग्या भोग,
रोग हगरा मीटसी जी जोगी, चाख्याँ अमरत धार।।203।।

भरथरी

अलख जगावे जोगी भरथरी पोंच ईड़ला रे मेहल,
भिक्षा तो देओ माता ईड़ला जोगी ऊबा हे थारे दुवार।।204।।
रीत–नीत राखी थांने हांचली, माता ईड़ला वो सदमत,
खूब तो जाण्यो पिछाण्यो जग रो सार।।205।।
मुट्ठी दो मुट्ठी भिक्षा दे ओ वो माता म्हांने,
जोगी ऊबा हे थारे दुवार।।206।।

ईड़ला

जोग तो जगाओ मन रे भीतरां वो जोगी भरथरी,
भीतरां तो वाजे अणहद तार।।207।।
अणहद तो नाद सुण्याँ सीधासो जी जोगी,
अणहद तो जाणो सत रो सार।।208।।
नीत अर रीत करजो हांचली वो जोगी,
रीत अर नीत तारणहार।।209।।
सेली अर सिंगी कोनी जोग सुणो जोगी,
बिरथा हे भेस भगवो धार।।210।।
भीतरां रमाड़ो जोगी जोग ने जी सुणलो,
भीतरां तो बैठ्यो तारणहार।।211।।
भिक्षा तो देऊँ मांडो खोतरी ओ जोगी,
रीता मति जाओ म्हारो दुवार।।212।।
रीत निभाऊँ जोगी भरथरी जी–हाँचल,
मरजादा राखू हिरदे धार।।213।।
जाओ जी जोगी थांकी मंजलां जिव गाठो राखो,
मति तो करजो जी अंकार।।214।।

भरथरी

अलख जगावे जोगी भरथरी, पोंच्या जा पींगला रे मेह,
भिक्षा तो देओ माता पींगला, जोगी ऊबा हे थांके द्वार।।215।।
कदा रा तो होया थें जोगड़ा जी राजा भरथरी,

कद रो लियो हे भगवो धार।।216।।
सिंगी अर सेली कदरी धार ली महाराज वो,
कद रो तो त्याग्यो सिंणगार।।217।।
कुण ने तो थरप्यो जोगी सद्गुरु जी कोई,
कुण तो बिलमायो म्हारो भरतार।।218।।

भरथरी

भैस धरायो महादेव ने बण आया गुरुनाथ,
भवसागर में डूबताँ सिवजी पकड़ो हाथ।।219।।
महादेव खुद तो म्हारा सद्गुरु वो माता पींगला,
सद्गुरु जी जणायो सत रो सार।।220।।

पींगला

किण तो कारण छोड़यो राज अर भोग जी राजा भरथरी।
किण तो कारण छोड़यो रंग रस संसार।।221।।
किण तो कारण धार्यो जोग वो राजा भरथरी,
किण तो कारण पोती देही रे माथे छार।।222।।

भरथरी

खूब तो भोग्यो माता राज दण्डधारी वो,
खूब तो भोग्या जी रसधार।।223।।
आँखाँ तो उघाड़ी सिद्ध सद्गुरु वो पिंगला,
सपना को होयो संसार।।224।।
भिक्षा तो देओ माता पींगला झट बाअर आओ,
जोगी खड़ो हे थारे दुवार।।225।।

पींगला

कसतर तो देऊँ थांने भीक्षा जी वाका,
जोबन ने करुँ जी खुवार।।226।।
जोबन री भिक्षा थांने देऊं जी महाराज लेओ,
निरखो तो निरखो म्हारो सिंणगार।।227।।
आँखाँ तो उघाड़ो म्हारा जोगड़ा रंगराचा वो,
थांके हामूं ऊबी हे राणी पिंगला नार।।228।।
मेहलां पधारो राजा भरथरी मन बस्या वो,

राणी पींगला करे मनवार।।229।।
पाट वराजो राजा भरथरी रंग राजा वो,
राणी पींगला करे मनवार।।230।।
रंग रंस मजलस सारसां वो राजा भरथरी,
सेजां पे खेलां सोलासार।।231।।
सेजां पधारो राजा भरथरी महाराजा वो,
पींगला राणी रा भरतार।।232।।
सेजां रमो रंग रस भोगजो जी वाला,
करस्यां जी सोला सिंणगार।।233।।

भरथरी

भिक्षा तो देदो पींगला झट बाअर आओ,
जोगी ऊबा हे थारे दुवार।।234।।
अलख जगावे राजा भरथरी जी जोगी,
ऊबा हे पींगला रे दुवार।।235।।
भिक्षा तो देओ माता पींगला झट आओ नी,
जोगी ऊबा हे थारे दुवार।।236।।

पींगला

क्युँ तो परण्या जी राजा भरथरी म्हारा वाला वो,
क्युं तो लाया जी तीजी नार।।237।।
जोग जो धार्‌यो तो मन में लेवणो राजा भरथरी,
क्यों तो छेड़या म्हारां हिरदा का तार।।238।।
क्युं तो वटारी म्हारी काया जोगी केवो जी,
क्युं तो रचायो सिंणगार।।239।।
रेहती रेहलेती म्हारे बाप के म्हारा धणियर वो,
काढ़ लेती जोबन का दन चार।।240।।
पीपरी तो पूज, तुलस्याँ सेवती महाराजा वो,
जमारो तो लेवती निकार।।241।।
तसतर तो जसतर दन काढ़ती हिव कबजे राख,
जमारो नी वेवतो खुवार।।242।।
क्युँ तो वटारी म्हारी काया जोगी केवो नी,
क्युँ तो परणी नी लाया तीजी नार।।243।।

भरथरी

मुट्ठी दो मुट्ठी भिक्षा दे ओ माता पिंगला वो,
जाणो पड़सी नाथाँ रे लार जाणों तो पड़सी सद्गुरु लार।।244।।
हपनों तो देख्यो सोतां नींद में सुणो पिंगला वो,
नींद खुल्या होयो छार।।245।।
हपनों तो टूट्यो होयो चानणो माता पिंगला वो,
कूण धणी कूण नार।।246।।

पींगला

भिक्षा देवाँ कसतर राजा भरथरी, मन मिरगा ने ढाब,
दोई आँखाँ ती वेवे गंगाधार।।247।।

भरथरी

भिक्षा दियाँ जमारो सूधरे माता पिंगला वो,
देओ–देओ दो मुट्ठी ज्वार।।248।।

पींगला

भिक्षा मति ले ओ राजा भरथरी जी,
म्हने तो लै चालो थांके लार।।249।।

भरथरी

थांने लारे लियाँ जोग नी सधे ओ माता,
नी टूटे ला मोह रा तार।।250।।
मोह रो तार तोड़ो माता पींगला वो,
भिक्षा दे देओ मुट्ठीक जुआर।।।।251।।
भिक्षा देओ नी माता पींगला, जोगी खड़ो हे थारे दुआर,
भिक्षा देओ नी मातो पींगला, मेहलां ती आओ नी बाऽर।।252।।

पींगला

भोग तो भोगतां क्युं थाक्या जी राजा,
अणचेत्याँ धार्‌यो जी कसतर जोग।।253।।
कसी तो औसध भाख ली जी राजा,
मिटि गयो भोग को रोग।।254।।
कूण तो दियो थांने जोग जी राजा,
कूण तो भरमाया जी राजा भरथरी।।255।।

कूण तो थमायो खप्पर नारेलो जी राजा,
कूण तो बिलमाया जी राजा भरथरी।।256।।

भरथरी

भोग तो भोग्या ऐ माता बेहदा।
जमारो तो होयो जी खुँवार।।257।।
गुरु तो मलया जी माता सांचला।
परक तो दिया जी उधार।।258।।
काची तो देही काँच ज्युँ हे माता।
तनक चोट दियाँ चटकाय।।259।।
टूक–टूक वखते हे माता, जोड़याँ जुड़ नी पाय।
म्हाने जोग तो लियो जी रमाय ।।260।।
मेहलां ती तो बाऽर आओ ए माता, जोगी खड़ो हे दुआर।
भिच्छा तो देओ नी माता पींगला जोगी खड़ो हे दुआर।।261।।
हिरदे तो भाई कामण गारी हे माता,
लागी भोग की चिणगारी।।262।।
अत भोग हे दुखकारी हे माता,
घिरणा होई मन में भारी।।263।।
होई एसी मादक माया हे माता,
चिते भाई कंचन काया।।264।।
माया तो नारद ने भरमाया हे,
विस्वामित्र मुनिजी बिलमाया।।265।।
जग ने जाण्यो झूठी माया हे माता,
भोग्या भोग जारी काया।।266।।
खुद के हिरदै उपजी घिरना हे माता,
नी तो कणी ने भटकाया।।267।।
सतगुरु मिल्या पूरा ज्ञानी हे माता,
अलख जगावण दुआरे आया।।268।।
आख्याँ सतगुरु गने उधारी हे माता,
भिच्छा मांगण थारे दुआरे आया।।269।।
भूलां बगश भिच्छा देओ राणी भिच्छा तो देओ राणी पींगला,
जोगी खड़ो हे थारो द्वार राणी पींगला।
जोगी खड़ो हे थारे द्वार माता पींगला।।270।।

पींगला

थांने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।271।।
म्हांने छोड़यो मझधार।
नाहीं आर नाहीं पार।।272।।
ऊफन नदी गेहरी धार,
डूबन भवसागर बेहार।।273।।
एसी गति क्युँ बणाई ओ राजा भरथरी,
एसी मति क्युँ बिलमाई ओ राजा भरथरी,
म्हारी बिरत क्युँ भटकाई ओ राजा भरथरी।।274।।
थांने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में धरी ओ राजा भरथरी।।275।।
रेहती बाप के घर दुआर,
करती पूजा–व्रत तेवार।।276।।
करती कंदमूल आहार,
भरती गड़ल्या नतचार।।277।।
करती सिवजी को सिंणगार,
राख लेवती कुँव्वार।।278।।
म्हारी चँवरियाँ क्युँ सजवाई ओ राज भरथरी,
सातां पदी क्युँ करवाई ओ राजा भरथरी।।279।।
थाँने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।280।।
सत–मत राख लेती जी,
गवराँ साख लेती जी।।281।।
पीपर पूज लेती जी,
तुरस्याँ सेव लेवती जी।।282।।
जमारो काढ़ लेती जी,
हूड़ा ताड़ लेती जी।।283।।
छल की माया क्युँ रचाई ओ राजा भरथरी,
म्हारी काया क्युँ भटकाई ओ राजा भरथरी।।284।।
राजा करो नी वीचार,

राणी परण्या वीस अरचार।।285।।
दारी करी जी हजरा,
राखी राखेली भरमार।।286।।
लाया पाप की घण नार,
कर्‌यो खूब अत्याचार।।287।।
लागी भोग की झंझारी,
करी सोई जेसी धारी।।288।।
काया भोग अगन जारी,
करली नरग की तिआरी।।289।।
एसी बिरत क्युँ विचारी ओ राजा भरथरी,
अप कीरतां क्युँ धारी ओ राजा भरथरी।।290।।
पोया फूलड़ा का हार,
कर्‌या नारी का सिंणगार।।291।।
चन्दन घिस्यो खुसबू दार,
झेल्यो उरोजां को भार।।292।।
अंगराज ती सजाया,
चंदन चरित कर दी काया।।293।।
फूलड़ा सिव संकर के सोवे,
चंदन सिव गौरां के सोवे।।294।।
काची काया ने सिणगार्‌यो,
एसो पाप हिरदे धार्‌यो।।295।।
रूप जोबन को गुमान,
करन–भरन को नहिं भान।।296।।
थाँने धरम क्युँ बिसरायो ओ राजा भरथरी,
खोटो करम क्युँ निसरायो ओ राजा भरथरी।।297।।
थाँने आछी ती करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।298।।
पिंगला गणिका री नहीं भूल,
हाली भरोसा ही चूल।।299।।
सत मत माथे पड़गी धूल,
चूभी हिरदा में शूल।।300।।
जेसो बोयो वेसो ऊग्यो,

जेसो दियो वेसो पूग्यो।।301।।
धन्न–धन्न रूप कला पींगलबाई,
प्रीत करी तो निभाई।।302।।
करी साँच की कमाई,
करदी भेंट की भरपाई।।303।।
सांची होई परभारी ओ राजा भरथरी,
म्हारी काया क्युँ वटारी ओ राजा भरथरी।।304।।
थाँने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।305।।
थांने हूरज हामू थूक्यो,
पाप टेगड़ा ज्युँ भूक्यो।।306।।
डील थाँको ई खड़ायो,
पाप आपणो निपजायो।।307।।
लागी भोग की बीमारी,
करली जोग की तीमारी।।308।।
भीर गाठी जो परी ओ राजा भरथरी,
जुगत जोग की करी ओ राजा भरथरी।।309।।
अगन घिरत ती बुझाई,
भोग भोग्या नहि जाई।।310।।
जावा लागी तरुणाई,
राणी केवा आया माई।।311।।
नारी विस की तोराई,
रूप नागन सी सवाई।।312।।
नयण बाण भलो बींध्यो,
डील होयो छींदो–छींध्यो।।313।।
नागण आंगी में बसाई ओ राजा भरथरी,
करी पाप की कमाई ओ राजा भरथरी।।314।।
थाँने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।315।।
जोग भलो धार्‌यो राज।
भली सूझ पड़ी आज।।316।।
साज्या सेली सिंगी साज,

एसा बण्या दगाबाज।।317।।
थाँका गुरुजी ने लाओ,
म्हांने दरस कराओ।।318।।
वां ती करलां वातां चार,
करणों धार्‌यो अत्याचार।।319।।
मेहलां राणी क्युँ भरी ओ राजा भरथरी,
छल की छाया क्युँ करी ओ राजा भरथरी।।320।।
थाँने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।321।।

भरथरी

सिच्छा तो मति देओ ए राणी,
मन्ने अगम–पच्छम की गत नी जाणी–पिछाणी।।322।।
होई भूल हिरदै जार,
मति करो बीत्याँ को वीचार।।323।।
भिच्छा देओ मुट्ठी चार,
जोगी ऊबो थारे दुआर।।324।।
जोगी अलख तो जगावे राणी पींगला,
जोगी चिमटो तो बजावे राणी पींगला,
जोगी ऊभो हे थारे दुआर! एऽऽ राणी पींगला।।325।।
भोग भोग्या जी खोटे भाग,
धिवती बुझाण चाही आग।।326।।
सतगुरु ने कराई हाँची जाग,
अलख दियो हे साँचो राग।।327।।
जोग तो धर्‌यो हे जी राणी पींगला,
भिच्छा तो देओ नी माता पींगला,
जोगी ऊबो हे थारे दुआर! एऽऽ राणी पींगला।।328।।

पींगला

थाँने तो मलि गया जी गुरु साँचला,
होयो जी हिरदा में परगास।।329।।
म्हारो तो मंदिर होयो सूनो जी राज,
अन्हेरो ते फैल्यो जी आगास।।330।।

दीपक बना केसो मंदर वो राजा भरथरी,
बना दीपक तो होयो मंदरो अंधियार।।331।।
कसतर तो देऊँ भिच्छा वो राजा भरथरी,
म्हारो जमारो तो होयो खुवार।।332।।

भरथरी

घट तो झाँको राणी पींगला,
भीतर तो झलमल परगास,
भिच्छा तो दे दो राणी पींगला जोगी ऊबो हे दुआर।।333।।

पींगला

बाली तो ऊमर राणी पींगला जी जोगी राजा,
भर तो जुवानी राजा भरथरी।।334।।
कसा तो जनम को वैर जी राजा,
कसा तो जनम री तकरार।।335।।
एक तो पुत्तर राजा ना दिया,
गोद नी खेलायो नान्हो बाल,
दूध ती नी मींजी जी रेसम काँचरी,
नी तो पिलाई जी बत्तीस धार।।336।।
भेस तो उतारो राजा भरथरी जी फौरन,
मेहला में पधारो अतेरतार।।337।।
एक तो पुत्तर बक्शाओ भरथरी जी वाला,
फेर देवाँ जी मुट्ठी ज्वार।।338।।

भरथरी

भाई को बेटो तो लेओ गोद जी माता पींगला,
करलो भतीजा ने मुख्तार।।339।।
भिच्छा तो देओ राणी पींगला,
जोगी ऊबो हे थारे दुआर।।340।।

पींगला

पुत्तर तो जाया जनम्या जी जोगी राजा,
पराया पुत्तर री झूठी आस।।341।।
स्वारथ का तो पराया पुत्तर जी राजा,

काई तो कराँ जी विसवास।।342।।
झूठा तो झगड़ा देवर जेठ का जी जोगी राजा,
कद तो बण जावे दगादार।।343।।
कर तो लो उज्जैणी राजा जी राज भरथरी,
सेजाँ तो माड़ो म्हारे लार।।344।।
अतरी तो म्हारी राख लो जी भरता,
फेर दे देऊँ मुट्ठी ज्वार।।345।।

भरथरी

धन तो जोबन पामणा ऐ माता पींगला,
कई आवे जीवड़ा रे लार।।346।।
माता तो रोवेगा जनम जोगणी वो पिंगला,
बेना रोवेगा वारतेवार,
घर री तिरिया तो रोवे ला माता दनचार,
भिच्छा तो देओ माता पींगला, जोगी ऊबा हे दुआर।।347।।

पींगला

वेण्डा तो वई ग्या राजा बावरा,
खाइगया लवंग्या री भांग,
घर री तिरया ने माता तरावे,
पापा तो कमावे नरक दुआर।।348।।
कैसो थाँको गुरु वो राजा, कैसो दियो हे निरधार,
नसो उतारो थाँका जीव रो वो राजा,
पछे देऊँ जी मुट्ठी ज्वार।।349।।

भरथरी

नी खाया लंवग्या री भांग ओ माता,
नी तो होयो जी वेण्डो भरथरी,
आखाँ तो उघाड़ी सद्गुरु साँचला वो माता,
तोड़ तो दिया मोह रा तार।।350।।

पींगला

भिच्छा तो देवां जी राजा भरथरी,
देओ नी म्हारी बातां को जुआब।।351।।

क्युँ तो परण्या जी म्हांने चाव तीवो राजा,
क्युँ तो दिखाया कोरा खुआब।।352।।
तेरह बरस की परण्या बालकी ओ राजा,
म्हारी जीनगी क्युँ करी जी खुवार,
क्युँ तो भोराया म्हारा बाप ने ओ राजा,
क्युँ तो वटरायो जी म्हारो कुँवार।।353।।
देओ–देओ जी जुवाब म्हारी बात को जी राजा,
एसो छल क्युँ रचाएओ जी राजा भरथरी।।354।।
ऐसी करी क्युँ खुवारी ओ राजा भरथरी,
म्हारी काया क्युँ वटारी ओ राजा भरथरी।।355।।
थाँने आछी तो करी ओ राजा भरथरी,
नदिया नाव में भरी ओ राजा भरथरी।।356।।

भरथरी

भूलां तो बक्शावाँ ए राणी पींगला,
जद जाग्या तद ऊजलो हे राणी।।357।।
गत अने जाणी पर पीछाणी।।358।।
आज पड़यो हे पारख ज्ञान,
भिच्छा देओ नी मुट्ठी धान।।359।।
भिच्छा तो देओ नी ए राणी पींगला,
भिच्छा तो देओ नी माता पींगला।
जोगी ऊबो हे थारे दुआर! एऽऽ राणी पींगला।।360।।
सिच्छा तो दे चूकी जी हे माता पींगला,
भिच्छा देओ नी मुट्ठी धान।।361।।
साँचा तो गुरु माता मलि गया,
दियो हे तारक ज्ञान।।362।।
भिच्छा देओ नी एऽऽ राणी पींगला,
जोगी ऊबो हे थारे दुआर! एऽऽ राणी पींगला।।363।।
लेओ जी लेओ भिच्छा नेम की जी राजा,
जोग तो रमाओ जी राजा भरथरी।।364।।
सिंगी तोसेली राखजो जी ओ राजा,
गाठी तो राखजो चित की ढार।।365।।

नगर तो खेड़ा परा छोड़ जी ओ राजा,
तपसा तो तपजो वन के पार।।366।।
गुरु की सरणा तो गाठी राखजो जी राजा,
जद तो उतरोगा जोगी परले पार।।367।।
नवो जमारो धार्‌यो जी ओ राजा,
पेलां को ती दीजो जी बिसार।।368।।
म्हें तो डूब्‌या मझधारजी ओ राजा,
थें तो उतरजो भव के पार।।369।।
भिच्छा तो लेओ जी जोगी भरथरी,
भिच्छा तो देऊँ जी मुट्ठी चार।।370।।
इच्छा भोग की मरी, परीछा जोग की करी जी राजा भरथरी,
वन में जोग जा रमाओ, लारे सतगुरु के जाओ जी राजा भरथरी।।371।।
थाने जैसी बी करी राजा आछी ही करी ओ राजा भरथरी,
नाव नदी में तरी ओ राजा भरथरी।।372।।

x x x

भोग भोगताँ भरथरी कर्‌यो नहीं विचार,
हद भोग्याँ सुख भोग हे, बेहद व्हे विभचार।।373।।
बेमरजादी भोग हे, बेउपचारो रोग,
कै तो करदे नागड़ो, कै व्है जावे रोग।।374।।
भिक्षा तो देवाँ राज भरथरी, मन मिरगो लेवाँ ढाब,
दोई आँखाँ नी रुके सके, वेवे गंगाधार।।375।।
आछा तो पधारो, जती जोगड़ा थाँकी मंजल वो,
खींच तो काढ़ी वीचे, जल री कार।।376।।
जतरे तो रेवे सूरज चन्द्रमो सत जोगी वो,
अम्मर तो रेवे थाँको नाम।।377।।
जठे तो पग धारसो सिद्ध जोगी वो,
वठ तो थरपे ला तीरथ धाम।।378।।
भिक्षा लेताँ बढ़ि गया, भरथरी मेहलाँ त्याग,
मोह री ताराँ टूट गी, अन्तर होई जाग।।379।।
सद्‌गुरु रे नेहड़े गया, दी चरणा में धोग,
सद्‌गुरु ने आसीस दे, दई दियो मुदरा जोग।।380।।

जाओ भरथरी वन थली, बीच पहाड़ाँ खोह,
ध्यान लगाओ अलख रो, जद टूटे रा मोह।।381।।
भरथरी वन री एक गुफा में, ध्यान लगा ने बैठ गयो,
एक बरस तईं गुफा बीच, सहज समाधी बैठ रहयो।।382।।
ताड़ी नी लग पावे पक्की, बार–बार मन भटकावे,
गया समै री वाती वाताँ, रेह–रेह ने चित भरमावे।।383।।
अन्न जल सब त्याग दियो, भीतर घट मनड़ो अकलावे,
भरथरी बैठयो बीच गुफा, पण मनड़ो थिर नी हो पावे।।384।।
अस्थिर होयो भरथरी, सधे न सहज समाध,
मेहलाँ बैठी पींगला, तपसा करे अराध।।385।।
सिद्ध वई गई पींगला, रही न बाकी साध,
अखन समाधी लाग गी, मेहलाँ बीच अबाध।।386।।
मन चित रो एको बणे, तद जा लगे समाध,
माया मोह व्यापे नहीं, ना कोई बंधन बाध।।387।।
पिंगला ने अनभूतयो, भरथरी रो भटकाव,
छोड़ समाधी जा पुगी, तपस गुफा रे ठाँव।।388।।
अलख–अलख पुकारताँ, करवा लगी निनाद,
सुण लो जोगी भरथरी, खोलो तनक समाद।।389।।
अलख–अलख गुफा भीतर जावे,
भीतर तो उटे जी निनाद।।390।।
कूण तो लगावे अलख नाद,
वाणी पिछाणी काना आवे,
गुफा में तो उठ्यो जी निनाद।।391।।
गुफा तो बाहर पधारो जोगी राजा वो,
बार तो ऊबी पिंगला अलख जगावे,
गुफा तो बाहर पधारो जोगी राजा वो, पींगला ऊबी हे गुफा द्वार।।392।।
ईंड़ला साधी जी जोगी सुखमा बी साध ली।
पींगला तो ऊबी थाँके द्वार।।393।।
वो जोगी राजा पींगला साधी नहीं नार,
गुफा ती तो बाहर पधारो जोगी राजा वो,
पींगला ऊबी हे गुफा द्वार।।394।।
ईंगला सधे संग पींगला जी जोगी राजा,

सुखमण पछे सधे जी जोगी नार।।395।।
तीनई नार जोगी साध्याँ जी सिद्धि होवे,
झरे तो झरे जी सहस्तर झार।।396।।
सुखमण रे जाग्याँ, कुण्डलनी जागे जोगी,
बाजण तो लागे अणहद नाद,
नाद सुण्या जी जोगी ताड़ी तो लागे,
सरजीवन होवे बंकनार।।397।।
ताड़ी तो लाग्याँ जोगी अग–जग भूले,
जीव नहीं भटके दसाँ द्वार।।398।।
गुफा ती तो बाहर पधारो जोगी राजा वो,
पींगला ऊबी हे गुफा द्वार।।399।।
गंगा तो जमना जोड़ी इड़ा–पींगला जी जाणो,
सुखमण तो जाणो सहस्तर धार।।400।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,
पींगला ऊबी हे गुफा द्वार।।401।।
सहस्तर के झरयाँ जोगी होवे ज्ञान तो पूरो।
होवे जी भीतरा उजास।
सूरज तो चंदा जोगी इड़ला अर पींगला,
सुखमण तो झलके जी झलकार।।402।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,
पींगला ऊबी है गुफा द्वार।।403।।
पेलाँ तो साधी थाँने सुखमणाजी जोगी,
फेर तो साधी इड़ला नार।।404।।
गुरु तो काचो थाँको जाण्यो जी जोगी,
सध तो नी पाई पिंगला नार,सिद्ध तो वई गी काचीगार।।405।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,
पीगला ऊभी हे गुफा द्वार।।406।।
साधो तो साधो नार पींगला जी जोगी राजा,
तद सधपावे सुखमण नार।।407।।
समाध तो काची थाँकी जाणी जी जोगी,
झटपट पधारो गुफा बाऽर।।408।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,

पींगला ऊबी हें गुफा द्वार।।409।।
मेहलाँ में नी रेऊँ जोगी, बाप के नी जाऊँ,
साधो तो साधो पींगला नार।।410।।
दिच्छा तो देओ अतरेतार राजा जोगी वो,
गाठा तो कर लो हिरदा तार ।।411।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,
पींगला ऊबी हे गुफा द्वार।।412।।
बाहर तो आया जोगी भरथरी जी,
धन्न धन्न तो कर्‌यो रानी ने भेंट,
दीक्षा तो देदी रानी पींगला ने,
मोह तो टूट गयो ठेठ टूट तो गया जी मोहरा तार।।413।।
गुफा ती तो बाहर पधारो राजा जोगी वो,
पींगला ऊबी है गुफा द्वार।।414।।

x x x

जाग जगा दी पींगला भरथरी जी रे भाल,
जोगण राणी पींगला, चली गई तत्काल।।415।।
औचक राजा भरथरी, देख जोगिया भेस,
सिद्ध वई गई पींगला, मोह रह्‌यो नहिं लेस।।416।।
मेहलाँ रहताँ तपसा ताप ली, बाधा पड़ी नी लेस,
सुख ने सुधाम पिंगला त्याग्या, हिरदा रहयो नी करेस।।417।।
पिंगला तो दोनईं सहजाँ तरिगई,
भरथरी तो टेरायो अधराँ बीच।।418।।
गुफा रे माईं भरथरी पूग्‌या,
समाध तो धारी आँखाँ मीच।।419।।
जुग तो जुगांतर घणा वीतया,
वीति गया जुग रा धार।।420।।
भरथरी तो बैठया अखन समाध में,
हरदा में चाले जप रो तार।।421।।
पाँचईं तत्त सुमेलो करि लिया,
देही तो करि ली काठ।।422।।
देही तो होया काठ–भाट जोगी भरथरी,
घट रे तो भीतर अजपो जाप।।423।।

एसो ई जाप माता अहिल्या ने साध्यो,
तन तो होयो जी भारो काठ,
जुग तो बीत्या तपसा तापताँ जी रामा,
पिंजर तो होयो जी मूरत ठाठ।।424।।
जुग तो बीत्या जी गणत ऊपराँ जी रामा,
भीतर तो बाज्यो जी मधरो तार,
गंगा तो जमना परगट वेवती जी रामा,
झरण तो लागी जी इमरत धार।।425।।
रामजी पधार्‌या लारे लखन जी पधार्‌या,
विस्वामुनि पधार्‌या लारे लार,
हात तो धर्‌यो परभू सीस पे जी सुगमो,
अहिल्या रो होयोजी उद्धार।।426।।
गंगा तो जमना वेवे कलकली जी कोई निरमली।
अमरत तो पीवे धापम धाप।।427।।
अमरत तो झर रही सहस्त्राधार ती,
त्रिकुटी रा खुल्या जी किमार।।428।।
मुरली तो वाजे घट रे भीतराँ जी कोई।,
मधरी तो बाजे जी सितार।।429।।
जाप तो एसो जपयो जोगी भरथरी जी कोई,
जुग तो त्रेता में जपयो अहिल्या नार।।430।।
काठ तो भाट होई माता सराप ती,
घट में तो चाले सुरती सार।।431।।
जुगाँ–जुगाँ जपयो राम घट भीतराँ,
होयोजी राम रो अलख रो औतार।।432।।
हाथ तो माथे मेलयो आसीस रो,
देही तो वईगी सुरसी तुरतां सार।।433।।
पेहलो तो नाथ महादेवजी ने जाणजो जी,
दूजा तो होया मछन्दर नाथ।।444।।
मछन्दर तो तप तपयो जी भारी,
उपज्या जी उपज्या गोरखनाथ ।।445।।
पेहलो तो गोरख नंदी जाणजो जी कोई,
दूजा तो होया गिरधर्‌या गोपाल।।446।।

तीजा तो जाणो जोगी भरथरी जी जाणो,
चौथा तो होया गोरखनाथ।।447।।
गोरख तो होया जुग–जुग मोकरा जुगां तो जुगाँ अवतार,
भटक्याँ ने गेलो बतायो जी गोरख, भूल्याँ रो कर्‌यो जी उद्धार।।448।।
माहदे ती चाली वेल गोरखजी, नाम तो धराया धर्‌या ठाट,
आखिर तो परगट्‌या जुग भरथरजी गोरख,
भरथरी वराज्या गोरख पाट।।449।।
गुफा में तो अलख जगायो जी गोरखनाथ ने,
भरथरी रे माथे तो मेल दियो हाथ।।450।।
गोरख ने माथे हाथ धर्‌यो सगती ती लीला रच डाली,
भरथरी समाधी मुक्त विया, आँखा खोली देही डाली।।451।।
गोरख रे चरणा धोक लगा, अलख–अलख नीनाद कर्‌यो,
तप भोम गुफा घण गूँज गई, अलख रो नाद निनाद भरयो।।452।।
भरथरी जोगी उबा विया, कर्‌यो अलख निनाद,
धन्न–धन्न रे म्हारा सतगुरु, दरसन दिया आय।।453।।
एसी मेहर राखजो, वीजो सदा सहाय,
नाथाँ रो मिलणो वियो, होयो अजब सुमेल।।454।।
ना तो कोई गुरु कथ्यो, ना कोई कथ्यो चेल,
दोई नाथ औतार्‌या करण जगत कल्याण,
एक तो पेलां अवतार्‌या, दूजा उतर्‌या जाण।।455।।
पेल्याँ परगट्‌या परस जी, फेर पधार्‌या सिरि राम,
एक जगत ने ढाब्यो, दूजा रे विसराम।।456।।
कढ़ो भरथरी बारणे, करूँ जगत कल्याण,
जुग दुखियारो हे घणो, करूँ दुखाँ रो हाण।।457।।
एसो केह गोरख तुरत, बाहर लाया साथ,
जग दुख तारण चाल्या, दोनई सिद्धानाथ।।458।।
बाऽर आ गोरख कह्‌यो, सुणो भरथरी वात,
आदेसो सद्‌गुरु दियो, चरणा धोको माथ।।459।।
थें जाजो थाँके मते, मूँ जाऊँ म्हारी गेल,
गुरु किरपा वेसी जदाँ, वेसी फेर सुमेल।।460।।
जतरे सूरज चन्द्रमो, अमर रेहवसी नाम,
जोगी भरथरी रो सदा, रेहसी अटल मुकाम।।461।।

औचक होया भरथरी, देख जगत रो रूप,
जुग बदल्या जग बदल्यो, बदल हो गयो भूप।।462।।
चार चुमेराँ निरखताँ, कर्‌यो अलख रो नाद,
ना तो वेसा वन दिख्या, ना कोई राजप्रसाद।।463।।
घर–घर मांगे जोगड़ा, ले गोरख रो नाम,
भरथरी री हामी भरे, सिरजे खोटा काम।।464।।
तंतर मंतर सिद्ध रा, जंतर जोड़े खूब,
सिद्धा ने खोटा करे, करे नाम री डूब।।465।।
अलख–अलख हाको करे, अजब बणावे भेस,
गाँज भांग मदको पिये, करता फिरे करेस।।466।।
डाकण भूत उतारताँ, करे बलि परमाण,
नाथ कहावे अलख रा, जागण करे मसाण।।467।।
नाथ धणी स्वामी कहूँ, जो नाथां रा नाथ,
जो दर–दर भिक्षा करे, वण ने गणू अनाथ।।468।।
अलख–फलक जाणे नहीं, लेवे झूठ समाध,
हिरदा में कपटो भरे, धन री करे अराध।।469।।
नाथाँ रो मारग तजे, छल रो जाल रचाय,
औगतियो वैई ने मरे, अधबीचाँ टेराय।।470।।
भरथर्‌री अर गोरख विया, मादे रा औतार,
अलख लख्यो निरगम गम्यो, घट रा परक उधार।।471।।

x x x

भरथरी रा जीवन चरित्र, कथया कहया अनेक
नथां रे मूँडे सुण्यो, अद्‌भुत चरितो एक।।472।।
रानी विक्रमादित्य री, सतवंति जग नाम,
वरत नेम पूजा करे, हिरदै सत रो धाम।।473।।
सतवंती सद्‌मत सत धरमी, जसो नाम वेसी सत करमी,
ब्रहम मुहुरत सिपरा न्हावे, सूरज ने नित अरघ चढ़ावे।।474।।
महाकार रा दरसन करताँ, मात कारका मंदर जावे,
गऊ पूजे नर्मद ने ध्यावे, हरसिद्धां रे धोक लगावे।।475।।
सद्‌गुरुजी रा दसरन करताँ, निज मेहलाँ में पाछी जावे,
बाल ब्रहम चारिणी राणी, बोले हरदम मधरी वाणी।।476।।
सबै राणियाँ में सममानो, विक्रम करे पूरे सनमानो।।477।।

बारा बरस चन्द्रव्रत करयो, निस दिन ओम् ओम् मिसर्‌यो।।478।।
अन्न त्याग होई फलहारी, फल त्याग वई दूधाहारी।।479।।
जगसुख री इच्छा सब त्यागी, वई महाकार अनरागी।।480।।
धरती आसन वातर सोवे, खुद रा वसतर खुद ही धोवे।।481।।
भरथरी राजो जोगी होयो, सतवंती मन हरिसत होयो।।482।।
भिच्छा कारण भरथरी आवे, मेहलाँ आगे अलख लगावे।।483।।
सतवंती आदर करे, भिच्छा दे नित नेम,
भरथरी भिच्छा पावताँ, पूछे कुस्सल छेम।।484।।
आसीरवाद भरथरी देवेष, आँखाँ नीचाँ कर ने रेहबे,
माता भिच्छा देओ पुकारेष, समै–नेम पूरो निरधारे।।485।।
करनहार री करनी होई, जण री लीला जाणे सोई,
भरथरी भिच्छा कारण आयो, अलख–अलख रो घोस लगायो।।486।।
भिच्छा देओ सतवंत माता, जोगी ऊबो अलख जगाता,
भरथरी रेह–रेह अलख लगाई, सतवंती बाहर नी आई।।487।।
सूरज पूज रे निमित, रानी जल रे बीच,
देह अवस्था नगन थी, ऊबी आँखाँ मीच।।488।।
अलख सुणाई नी पड़ी, ध्यान अवस्था काज,
भिच्छा ले भागी तुरंत, ढबजो जोगी राज।।489।।
नगन देही जाणताँ, भरथरी कर ली पीठ,
अलख–अलख केह चाल्या, पाछाँ फिरी न दीठ।।490।।
आगे–आगे भरथरी, पाछे सतवंत मात,
छमा–छमा जोगी ढबो, भिच्छा म्हारे हाथ।।491।।
भरथरी तो ढबया नहीं, ढबी न सतवंत नार,
भिच्छा दे पाछी करुँ, कर लियो निरधार।।492।।
भिच्छा ले लो भरथरी, ढब जाओ ततकार,
नेम नियम भांगों मती, आन देऊँ महकार।।493।।

x x x

सिद्ध देव हामू मिल्या, दियो तुरत आदेस,
भरथरी भिच्छा धार लो, नी तर त्यागो भेस।।494।।
माता नंगी हे प्रभु, कसतर नाखूँ दीठ,
अणी कारणे फेर ली, तुरताँ–फुरताँ पीठ।।495।।
धिक–धिक जोगी भरथरी, रह्‌यो देह रो मान,

बेअरथी हे साधना, बेअरथो अभमान।।496।।
सतवंती तो मुक्त हे, नहीं देह रो भान,
देह भान ती ऊपराँ, अलख–अलख रो ध्यान।।497।।
सद्गुरु री फटकार सुण, भरथरी उपज्यो ज्ञान,
भीतर री जोती जगी, गल बह गयो गुमान।।498।।
छमा–छमा माता उचर, भरथरी कर दी धोग,
आँखाँ झरमर बरसगी, मिट्यो भरम रो रोग।।499।।
भिच्छा लेताँ वई गयो, धन्न भरथरी आज,
माता जाओ मेहल में, करो नेम सर काज।।500।।
अब मेहलाँ जाऊँ नहीं, धार लियो हे जोग,
दो सिद्धाँ रो वई गयो, आज खरो संजोग।।501।।
दिच्छा दे दो सिद्धजी, दे देओ आसीस,
सत्त धरम ती नी डिगूँ, देओ जोग बगसीस।।502।।
सत्या तू मुक्ता वई, सतवंत सतधार,
परम हंस सत धार्यो, अलख–अलख चितधार।।503।।
अतरो केह सिद्धां कर्यो, अपणे धाम पयान,
मुक्ता सिद्ध मुक्ता वई, सरयो नेम विधान।।504।।
गई हिमालय शैल में, तपी तपस्या खूप,
तपसा तपताँ वई गई, ब्रहमवादिनी रूप।।506।।
विक्रम ने अरचा करी, अरज करी कर जोड़,
जाओ देवी तप तपो, बरसाँ बरस करोड़।।507।।
धन्न–धन्न मारव वियो, धन्न उज्जैणी धाम,
जतरे सूरज चन्द्रमो, अमर रेहवसी नाम।।508।।
गंधर्व सेन रा वंस में, गुणवंताँ री वाट,
कै तो सिद्ध जोगी विया, कै होया सम्राट।।509।।
सतवंती मुक्तावई, वई पींगला सिद्ध,
सतियाँ ने सत धार्यो, नाम कर्यो परसिद्ध।।510।।
सतवंती मुक्ता वई, वई भरथरी जाग,
देहभान तोड़याँ बिना, सधे नहीं वैराग।।511।।
सात बरस सतमास अर, दिवस बीतया सात,
भरथरी रो मन थिर वियो, ताँ थिर होयो गात।।512।।
इड़ला पिंगला साधताँ, साधी सुसमन नार,

भ्रम भय हगरा भाग्या, झरगी अमरत झार।।513।।
पंचतत्व अम्रत विया, अमरत रे निरझार,
देहभान गत भूल्या, ब्रह्म नाद झणकार।।514।।
तन–मन दोई जोगी बणे, तां सदपावे जोग,
राणी पिंगला रो मिटे, देह भोग रो रोग।।515।।
धन–धन रानी पींगला, तुरत साध्यो जोग,
तुरत–फुरत सब तजदियो, मिट्या हगरा सोग।।516।।
भरथरी ने मन जीत ल्यो, होयो इन्द्रीय जीत,
हिरदो होयो निरमलो, रही नहीं भव भीत।।517।।
मन जीत्यो जग जीत ल्यो, जीत लियो अनराग,
हिरदा री गाठां खुली, जद सध्यो वैराग।।518।।
अन्तरघट चेतो वियो, उग्यो ज्ञान रो भान,
ग्रंथ लीखिया मोकरा, सबद–सबद परमान।।519।।
सबद–सबद अमरत विया, कर्यो जग रो हेत,
दुखियाँ रा दुख मेटताँ, हरदम रह्या सुचेत।।520।।
साँच धरम रगसा करी, जीव दया निरधार,
सतियाँ जतियाँ रा सदा, लजपत राखणहार।।521।।
सद्गुरु राखी जामनी, महादेव रो मान,
गो–बामण रक्षा करी, कर्यो नहीं अभमान।।522।।
अभमानी डूबे अवस, पापी झोला खाय,
सूकर कूकर जोन में, पाछो जनम धराय।।523।।
भरथरी तो भरथार हे, हे नाथा रो नाथ,
जुग–जुग होसी भरथरी, होया गोरखनाथ।।524।।

x x x

घोर तपस्या तपे भरथरी, सदगुर मन हरसावे जी,
सरगपुरी में बैठ्यो इन्दर, मन ही मन अकलावेजी।।525।।
बाहर आवे भीतर जावे, हिरदै चैन न पावे जी,
इन्द्रासन रो भौ मन भर्यो, बाहर निकर नी पावे जी।।526।।
कद्याँ तो ताणे हाथ मुट्ठियाँ, कद्याँ तो सस्त्र उठावे जी,
दाधीची रो अस्थी सस्तर ,गाठो वजर कहावे जी।।527।।
सस्तर ले धरती पे आयो, वेंडा ज्युँ भमतावेजी,
गुफा द्वार पे ऊबो ढूके, मारग खोज नी पावे जी।।528।।

अणगण हूरज एरे मेरे, पेहरो बड़ो लगावे नी,
सेस नाग रा दूत घनेरा, फन छाया फुफकावेजी।।529।।
अलख लखो तो भीतर जाओ, बाहर क्युँ भमतावे जी,
अगम–निगम का दरसन कर लो, अलख निरंजन गावे जी।।530।।
औचक वै चौतरफाँ देखे, मनख न नजराँ आवे जी,
गुफा भीतराँ जाणे कोई, कर मनवार बुलावे जी।।531।।
चार चुमेराँ हूरज भलके, आखाँ ने करमावे जी,
सुरगपुरी रो इन्दर राजो, माया जाण नी पावे जी।।532।।
जण री माया जो ई जाणे, कै कोई भगत पिछाणे जी।,
क्रोध लोभ में बंधयो इंदर, अव्वेकी कई जाणे जी।।533।।
क्रोध करे तो बुद्धि नासे, कई होवे पछताणे जी,
न पाछो जा पावे इन्दर, न रेह पावे ठाणे जी।।534।।
चलकारो मघो पड़्यो, दिख्यो गुफ्फा दुवार,
भीतर जावा रो कर्यो, इन्दर ने निरधार।।535।।
कँवर विराज्यो भरथरी, थिर बैठ्यो भलकाय,
अटल समाधी में मगन, सिव संकर दरसाय।।536।।
अणगण हूरज झलमले, आँखाँ ने करमाय,
मुखड़े आभा अद्भुती, नजर नहीं ठहराय।।537।।
इन्दर सुधबुध भूलियो, तन रो रह्यो न भान,
किण कारण आयो अठे, अण रो रह्यो न ज्ञान।।538।।
मूरख ज्युँ ऊबो वठे, वज्र लियाँ निज हाथ,
रिसि दधीची सिद्ध रो, मान राख्यो नाथ।।539।।
हाथाँ सूँ धरती पड़्यो, हूरज ज्युँ चलकाय,
फूलाँ री वरसा करी, देह सिद्ध री जाण।।540।।
इन्दर कसमस वई गयो, धूजण लागी देह,
परसीनो टप–टप झरे, जाणे बरस्यो मेह।।541।।
सरपट भाग्यो बारने, मारग नी दरसाय,
मारग तो हूजे नहीं, भीतां ती भड़काय।।542।।
बाअर कढ़ पावे नहीं, हिरदा में अकलाय,
कसतर जाऊँ बारने, गेल नहीं दरसाय।।543।।
दया ऊपजी देवरे, देव दया री खान,
भूल्याँ ने माफी करे, भटक्याँ ने दे ज्ञान।।544।।

भंवरो आयो गूँजतो, करी खूब गुंजार,
इन्दर ने मारग वता, कर्‌यो गुफा ती बाऽर।।545।।
चौबे जी कासी गया, छब्बे री ले चाह,
दूबे बण आया घरे, सीतो पड़यो उछाह।।541।।
पूँजी खोई गाँठ री, कर ओछो वेपार,
वज्र गंवायो हाथ ती, कर नी पाया वार।।546।।
इन्दर पछतावे घणो, मन नहीं आवे धीर,
इन्द्रासन ने देखताँ, उठे जीव में पीर।।547।।
इन्द्रासन पे डटि गयो, ढाबलियो घण गाठ,
भरथरी अवसाँ भांगसी, इन्दरपुर रा ठाठ।।548।।
भरथरी ज्युँ तपसा तपे, ऊ इन्दर वै जाय,
हिरदै ऊठे ऊखर्‌यां, कोई न धीर बंधाय।।549।।
इन्दर हार्‌यो चन्दर हार्‌यो, हार्‌यो वायु देवत,
अगन देवता हार गयो, हार्‌यो वायु देवत।।550।।
वरण देवता सहजां हार्‌यो, कर नी पायो वार,
एक–एक करताँ सब हार्‌या, भरथरी रे दरबार।।551।।
अखन समाधी भरथरी जी री, खंडित नी वै पाई,
रूप अपसराँ भमती वई गी, मान गवाँ ने आई।।552।।
सरग दुआरे बेठी–बेठी, कूँजा ज्युँ कुरलावे,
पाप घड़ी धरती पे आई, रेह रेह ने पछतावे।।553।।
उज्जैणी रो नाथ भरथरी, बैठ गुफा रे वीचे,
जुगाँ–जुगाँ तद्ध अलख जगावे, तन री आखाँ मीचे।।554।।
अछताती पछताती अपसराँ, सभा बीच में आई,
रोताँ–रोताँ दुरदसा आपणी, इन्दर ने केह पाई।।555।।
इन्दर राजा रो बढ़्यो, हरदा में संताप,
कामदेव जाओ तुरत, धारो मोहक चाप।।556।।
कामदेव धूजण लग्यो, सुण इन्दर आदेस,
हाँ ना उत्तर देवताँ, होसी अवस करेस।।557।।
भसम कर्‌यो मादेव ने, होयो नाम अनंग,
अवसाँ वेसी दुरदसा, कर्‌याँ समाधि भंग।।558।।
डरतां–डरतां काम दे, गयो उज्जैणी धाम,
खुदइ मोंवित वै गयो, खड़ो गुफा रे हाम।।559।।

मोह धनस धरती पड़्यो, जपे अलख रो जाप,
लुर–लुरने जय–जय करे, मिटयो सब संताप।।560।।
प्राण राख पाछो फर्‌यो, गयो गुफा रे बाडर,
अछता–पछता पौंचयो, इन्दर रे दरबार।।561।।
अकलायो इन्दर घणो, होयो घणो अधीर,
कामदेव री हार सुण, गच्यो कारजे तीर।।562।।
देवगुरु वृहस्पति कह्‌यो, सुण लो इंदरराज,
भरथरी री तपसा नहीं, इन्दरपुर रे काज।।563।।
महादेव रो अंस हे, भरथरी रो औतार,
तपसा में बैठ्‌यो अखन, आतम रे उद्धार।।564।।
घट भीतर ब्रह्माण्ड हे, घट भीतर करतार,
तिरवेणी घट भीतराँ, वेवे अमरत धार।।565।।
हिरदा री गाँठाँ खुली, करी इंद्रियाँ जीत,
इन्द्रीजित हे भरथरी, नहीं रिदै में भीत।।566।।
जीत करी जिण इंद्रियां, इन्दरपुर घट बीच,
एसो जोगी भरथरी, जागे आखाँ मीच।।567।।
निरमल मन कर लो तुरत, चालो म्हारे लार,
गुफा चाल ने देखजो, भरथरी रो दरबार।।568।।
इन्दर संगलियाँ वृसपतिजी, तपस गुफा में जावेजी,
सबै देवगण हाथ जोड़्याँ, लारे–लारे आवे जी।।569।।
गुफा भीतराँ अद्‌भुत छवि लख अजब लोक दरसावे जी,
भाँत–भाँत रा फूल खिण्डवा हे, मधरी खुसबू आवे जी।।570।।
झर–झर झरताँ अमरत झरना, निरमल जल बरसावे जी,
निरख–निरख मन हरसित होवे, आखाँ ने हरसावे जी।।571।।
हूरज–चंदो झलमल चलके, सोभा वरणी न जावेजी,
चम–चम चमके तारा मंडल, लीला हमज न आवे जी।।572।।
कंवलासन में बैठ भरथरी, त्रिकुटी ध्यान लगावे जावे जी,
फन फैलातां सेस नागजी, माथे छतर बणावे जी।।573।।
ब्रहमा विसन महेस पूठ पे, मंदर–मंदर मुलकावे जी,
अछरा माइयाँ डावें ऊबी, हुरस–हुरस सुख पावेजी।।572।।

भरथरी बैठ्यो ध्यान मगन, घट में अलख जगावे जी,
अलख–निरंजन अलख निरंजन, मधर–मधर धुन आवेजी।।575।।

x x x

इन्दर सुध–बुध भूल्यो, देख अजब आलोक,
तन अर मन निरमल विया, मिटयो मन रो सोक।।576।।
धरती पे धम्म बैठ्यो, लाम्बी साँसाँ खींच
भरथरी रो वंदन करयो, तन–मन आँखाँ मीच।।577।।
छमा–छमा है तापसी, छमा करो हे नाथ,
भूल–चूक बगसावजो, जोडूँ दोई हाथ।।578।।
आँखाँ खोली इन्द्र ने, लीला वई अलोप,
ध्यान समाधी बैठ्यो, दीखे भरथरी ओप।।579।।
औचक–औचक वई गयो, इन्दरपुर रो राज,
सासटांग दण्डवत कर्यो, भूल–चूक रे काज।।580।।
धन–धन जोगी भरथरी, धन्न आप रा नाथ,
धन–धन थाँका सद्गुरु, जिण रो माथे हाथ।।581।।
माथ हाथ मादेव रो, थें सिव रा औतार,
महादेव सतगुरु कर्या, पार उतारण हार।।582।।
लीला सदगुरु नाथ री कोई सके न जाण,
मूं इन्दर भूले पड़यो, वई अकल री हाण।।583।।
महादेव और भरथरी, गुरु सिक्ख संजोग,
इन्दर ती वृस्पति कह्यो, यो अद्भुतयो जोग।।584।।
मइमा सुण गुरु सिक्ख री, इन्दर वियो सुचन्न,
धन्न–धन्न मादे प्रभु, धन्न भरथरी धन्न ।।584।।
सिद्ध गुरु रा रूप में, महादेव ही जाण,
लीलाधारी रो सृजन, किण विध होय पिछाण।।586।।

x x x

भरथरी री गाथा अजब, कसतर करुण बखाण,
जतरी भी काना सुणी, सदाँ करी प्रमाण।।587।।
नाम खरेड़ी थावरो, मनरंगजी गुरुनाथ,
नंदलाल उस्ताद हे, करां भुवाई साथ।।588।।
आसाजी सुणतां लिखी, रचयो भुवाई खेल,

हलमल ने खेरो करॉं, पूरो करॉं सुमेल।।589।।
खेल रचाया मोकरा, खेड़े–खेड़े गाम,
यो तन तो नी रेहवसी, अमर रेहवसी नाम।।590।।
जतरा खेल रचा दिया, दो हे घण मसहूर,
एक राजा हरिचन्द रो, एक धरती री हूर।।591।।
खेलो भरतरी राज रो, अर इन्दर री हार,
साज सजा खेलो करॉं, तुरताँ अबकी बार।।592।।
खेलो ई भी जाणजो, होसी घण मसहूर,
जठे–जठे खेलो करॉं, आजो वठे जरूर।।593।।

भावार्थ

उज्जैन बहुत बड़ा तीर्थ है। यहाँ महाकाल भगवान की राजसत्ता है। यहाँ जितने भी राजा हुए सभी ने धर्मपूर्वक राज्य किया है।

गंधर्वभिल्ल राजा बहुत शक्तिशाली था। वह धर्म और नीति–नियमानुसार राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चम्पादे था। वह अत्यंत शीलवती और सत्यवंती थी। रानी तप–तपस्या तथा दान पुण्य करती थी।

गर्धभिल्ल राजा सुभट्ट, शूरवीर और रणकुशल था। उसकी रानी एक पुत्र के लिए तपस्या करती थी। वह महादेव से सदा यही प्रार्थना करती थी कि–'हे महादेव! राजधर्म के हितार्थ एक पुत्र प्रदान कर दो।' उसकी प्रार्थना न तो महादेव ने सुनी और न रामजी ने सुनी। उसकी पीड़ा जब किसी भी देव ने नहीं जानी, तब उसने कठोर तपस्या करना शुरु किया। धूप छाया की भी चिंता नहीं की और अहिर्निश तपस्या में लीन रहने लगी।

छोटी उम्र में ही उसका विवाह हो गया था। अब तो आयु प्रौढ़ावस्था में आ पहुँची। गोद में बालक नहीं था। उसका जीवन व्यर्थ है, वह ऐसा सोचने लगी। उसने मन ही मन कहा– सोने को बोने से सोना नहीं उग सकता। भले ही उसे अमृत जल से क्यों न सींचा जाय। खेत में मोती बोने से मोती नहीं उग सकते। हमारे पास सतखण्डा महल है। सातों खण्डों में अंधकार है। अर्थात् किसी अन्य रानी के महल में भी पुत्र नहीं जन्मा। एक भी पुत्र उत्पन्न हो जाता तब सभी महलों में उजास हो जाती।

टीप– इस गाथा के अधिकांश प्रसंग मनरंगनाथ जोगी, नंदलाल, आशाराम भुवाई, रीछालाल मुँही तहसील– मंदसौर म.प्र. से सुनकर लिखे हैं। गाथा के अनुसार इनका मूल भुवाई खेल में इस गाथा को थावर खरेड़ी (भील) ने तैयार किया । फिर .यह गाथा लोक व्याप्त हुई और बिना सर्जक के नाम के ख्यात हो गई ।

उसकी किलकारियों से महल गूँज उठता, जिसे सुनकर मन में आनंद की हिलोरें उठने लगती। सातों महलों में सूर्योदय हो जाता। सर्वत्र भोर का उजाला हो जाता। बागों में कोयल की कुहुक से आम्रवृक्षों में मोड़ (फूल) आ जाते। मयूर के बोलने पर बादल वर्षा करते। सतखण्डा महल में सोलह तालाब हैं। इतने पर भी सब अतृप्त हैं। ममता के नीर से ही प्यास बुझ सकेगी।

अन्ततः राणी की आर्त प्रार्थना की पुकार रामजी ने सुन ली। रामजी की कृपा प्रेरणा से महल में एक साधु जी प्रकट हुए। उनके गले में मुण्डमाल थी। स्वयं भगवान महादेव ही प्रकट हुए। राणी की आर्त पुकार उन्होंने सुन ली। राणी ने तत्काल चरणों में माथा नवा दिया। उसकी आँखों से आसुँओं की धारा बहने लगी।

महादेव ने कहा– रानी सुनो। मेरी बात ध्यान से सुन–समझ लो। मैं तुम्हें अपने अंश से बालक दूँगा। तुम माता कहलाओगी। यह अमृत जल तुम्हारी तपस्या का प्रसाद है। इसका पान करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जाएगी। तुम्हारी कोख से यशस्वी पुत्र जन्म लेगा, किन्तु एक मर्यादा है। उसका पालन तुम्हें करना होगा।

तुम्हारा जो पुत्र मेरे आशीर्वाद से जन्मेगा, वह केवल बारह वर्ष ही इस संसार में रह पाएगा। फिर वह पराया पुत्र हो जाएगा। मेरा अंश मुझमें समा जाएगा। वह अवधूत बन जाएगा।

समयानुसार गर्धभिल्ल के (दरबार) महल में शुभ थाली बज उठी। भरथरी बालक का जन्म हो गया। सद्गुरु ने उसका यह नाम धरा। सद्गुरु ने भरथरी की आधी जन्म कुण्डली बनाई और कहा– इसे पूरा तो विश्व के स्रष्टा ही कर सकेंगे। जितना मुझमें ज्ञान था, उतना भविष्य मैंने लिख दिया है। ऐसा कहकर सद्गुरुजी ने भरथरी की जन्म कुण्डली राजा के सामने रख दी। उन्होंने कहा– जिस शुभ घड़ी में यह बालक जन्मा है, उससे यह निर्णय लगता है कि यह कोई औतारी पुरुष है। सद्गुरु ने भाल का ओज देखकर कहा– 'यह या तो बहुत बड़ा योगी बनेगा अथवा महान राजा (सम्राट)।'

बारहवाँ वर्ष बीतते ही ऐसा विधान है, ऐसा स्वयं महादेव ने कर दिया है। आगे तो करनी और धरनी स्वयं देव की है, वे ही अपने लेख में भी बदलाव कर सकते हैं।

चम्पादे ने अन्न जल त्याग दिया। वे फिर से तप करने लगीं। रानी की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव फिर प्रकट हुए। उन्होंने कहा–'हे चम्पादे! तपस्या से जागो। मैं तुम्हें एक और बेटे का वरदान देता हूँ। तुम्हारे दूसरे पुत्र का विक्रम सर्वत्र फैलेगा। उसका नाम शुभेक होगा। शुभ रहेगा। तुम्हारे दोनों पुत्र यशस्वी होंगे। एक

भरथरी और दूसरा कृतसेन सदा तुम्हारा यश बढ़ाएँगे। अब आनंद में रहो, मैं अपनी वाणी को धर्मनिष्ठ बनाऊँगा।

बारहवाँ वर्ष लगते ही भरथरी युवा लगने लगा। उसने अश्व की सवारी करना प्रारम्भ कर दिया और अपने कंधे पर धनुष बाण धारण कर लिया। उसने मृगया करना प्रारम्भ कर दिया। उसका बाण अचूक होता था। एक बार वह वन में आखेट हेतु गया। वन में मृगों को देखकर उसका मन मग्न हो उठा। उसने किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाई। तभी अचानक एक श्याम मृग उसे दिखा। वह मृग लम्बी–ऊँची कुलाँचे भरता उसके सामने से भाग निकला। वह मृग कभी तो सामने दिख जाता था, कभी झाड़ियों में छुप जाता था।

कुँवर भरथरी ने कई बाण चलाए, किन्तु सब चूक गए। उस मृग के शरीर को एक भी बाण नहीं लगा। भरथरी ने तीन कोस और दो मील तक अश्व दौड़ाकर उसका पीछा किया। तभी वह मृग कुलाँचे भरता हुआ मृगयों के बीच छुप गया। एक सौ छब्बीस मृगयाँ अचानक साँसें रोककर उठ खड़ी हुई। सबने एक स्वर में भरथरी से प्रार्थना की कि हे आखेटक! हमारे श्यामल को मत मारो। बदले में हमें मार दो। हममें से चाहे जिसे चुन लो और मारकर उठा ले जाओ।

मृगणियों की बात सुनकर भरथरी ने कहा– गऊ, नारी और विप्र को मारने से बड़ा पाप लगता है। मैं तो अवश्य ही इस श्यामल को मारूँगा। इसको मारने पर कोई पाप नहीं लगेगा। ऐसा कहकर भरथरी ने निर्दयतापूर्वक तुरंत ही बाण चलाकर श्यामल मृग को घायल कर दिया। उसे बहुत ही गहरा घाव लगा। थोड़ी ही देर में उसके प्राण छूट गए।

मृगयाँ जारों–जार बिलख उठीं। उन्होंने श्राप दिया– अरे आखेटक! तुमने श्यामल को मारने में तनिक भी विचार नहीं किया। अरे! तू कौन है? अरे निर्दयी! तेरी जननी कौन है? तेरा पितृ वंश कौन सा है? अरे दुष्ट! बता तेरे माता–पिता कौन हैं ? हमारा तुझे यह श्राप है। जैसा दुष्ट कर्म तूने किया है, वैसा ही फल तुझे अवश्य मिलेगा।

भरथरी अपनी करनी पर अनमना हो उठा। उसके हाथों से धनुष–बाण छूट पड़े। उसने उसी अनचेती अवस्था में श्यामल को उठाकर अपने अश्व पर लादा और सद्‌गुरु के थानक पर आ गया। मैंने अनचेत अवस्था में बाण चलाकर श्यामल का वध कर दिया। मैंने बेमान अवस्था में यह पाप कर्म किया है। आप इसे जीवित करो, अन्यथा

मैं भी अपने प्राण त्याग दूँगा। आप मुझे इस श्राप से मुक्त करो, अन्यथा मेरे प्राण की हानि होगी।

अरे साध पुरुष भरथरी! मृत हिरण कैसे जीवित हो सकता है? इसे यदि जीवित किया गया तो विधाता की मर्यादा भंग हो जाएगी। हे कुँवर! आप अपने घट में निहारो। आप तो सिद्धों के भी सिद्ध और साधकों के भी साधक हैं। आप तो महादेव के अंश हैं। आप सिंगी का नाद करके इसे जीवित कर दो।

यह श्यामल मृग पूर्व जन्म में एक साधू था। ये मृगियाँ इसकी शिष्याँ ही थीं। सबने परस्पर हिलमिलकर पाप कर्म किए। उसी के श्राप वश यह योनी मिली है। तू इन मृगियों को भी मार दे, जिससे ये स्वर्ग पहुँच जाएँ।

भरथरी अपने को पापी जानकर हवनकुण्ड में कूद गया। उसे इस प्रकार अपने प्राणों का उत्सर्ग करते देख सद्गुरु ने तत्काल उसे बाँह पकड़कर बाहर निकाल लिया और उस पर अमृत जल छिड़ककर जीवित कर दिया। इस प्रकार महादेव के वचनों की मर्यादा रह गई और भरथरी का पुनर्जन्म हो गया। सद्गुरु ने महादेव की मर्यादा और भरथरी के प्राणों की रक्षा कर ली। सिद्ध साधु सद्गुरु के प्रसाद स्वरूप भरथरी हवनकुण्ड से प्रगट हो गए।

सिद्ध साधु सद्गुरु ने अमृत जल छिड़कर श्यामल को भी जीवित कर दिया। वह मृग ऊँची–ऊँची कुलांचे भरता हुआ वापिस वन में पहुँच गया।

भरथरी पूर्व की सुध–बुध भूल गया। वह मृग संहार का प्रसंग भी भूल गया। जो कुछ भी अब तक घटित हुआ था, भरथरी सब भूल गया। वह उससे पूर्व के जन्म को भी भूल गया। अब उसका नया जन्म था। वह अलख–अलख का नाद करने लगा। अपना नाम तक उसे स्मरण नहीं रहा। उसने वहीं हवनकुण्ड के सामने अखण्ड समाधि धारण कर ली। वह अलख–अलख का जाप करने लगा। उसे मृग संहार का जो श्राप लगा था, वह समाप्त हो गया। अलख नाम के जाप के कारण उसका पाप–श्राप मिट गया।

इस प्रकार भरथरी नया जन्म लेकर शुभ और सुचेत हो गया। उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। उसने सिद्ध और बुद्धि सहित अपने सद्गुरु के चरणों में नमन किया। सद्गुरु की कृपा से उसे विद्या प्राप्त हो गई। उसे अपना नाम भी पुनः प्राप्त हो गया। वह पाँच वर्षों तक गुरु आश्रम में रहा।

सद्‌गुरु ने उसे पाँच वर्ष तक विद्या पढ़ाई–ज्ञान प्रदान कर दीक्षित कर दिया और उज्जैन का राज करने के लिये विदा कर दिया।

सद्‌गुरु ने अपने दीक्षान्त वाक्य में कहा–'महाकाल के राजकाज की रीति को नीतिपूर्वक निर्वाहित करना।'

भरथरी घोड़े पर सवार हो गया। सद्‌गुरु ने पीठ पर थपकी देकर उसे आशीर्वाद दिया। शीश पर आशीर्वाद का हाथ धर दिया।

अठारह वर्ष की अवस्था में भरथरी पूर्ण युवा होकर, कमर में कटारी, खड्‌ग और कंधे पर धनुष–बाण सजाकर उज्जैन जाने को तत्पर हो गया। वह दूर से शिवजी के समान सुशोभित लगता था और निकट से राम लगता था। उसका ओज कृष्ण जैसा था। उसे पाकर मालव देश धन्य हो गया। मालव की धरती–धाम धन्य है। उसे भरथरी जैसा राजा मिला। उसके राज–पाट पर बिराजते ही सब क्लेश समाप्त हो गए। मालव देश का बखान क्या करें। इसका बखान तो बड़े–बड़े कवियों ने खूब किया और गुणगान गाया है।

यह ऋषियों का देश है। सत्‌पुरुषों का धाम है। यहाँ देवता स्वयं पधारते हैं और विश्राम करते हैं। यह मालवा भारत के हृदय में निवास करता है।

मैं इसके नगर उज्जैन का बखान करना चाहता हूँ। यह महादेव का नगर। सब देवता यहाँ निवास करते हैं। यहाँ जो भी राजा हुआ, उसने सदैव प्रजा के सुख–दुख का ध्यान रखा। यहाँ के खास राजा तो स्वयं महाकाल ही हैं। बाकी सब तो इनके दास हैं। राजा भी नगर के बाहर ही निवास करता है। एक नगर में दो राजा कैसे रह सकते हैं?

उज्जैन में राजा भरथरी राजा हुए। जब वे राजा बने, तब उज्जैन का शासन उन्होंने बहुत सूझ–बूझ से चलाना शुरू किया। वे प्रजा का सम्मान करते थे। वे धर्म के प्रति दृढ़ता से तथा राजधर्म का पूरी निष्ठा से पालन करते थे।

शत्रु सदा भयभीत रहते थे। जब भरथरी खड़ग धारण कर युद्ध भूमि में डट जाता था, तब शत्रु जान बचाकर भाग खड़ा होता था। वह शत्रु पर उसी प्रकार झटकता था, जैसे चिड़ियों पर बाज झपटता है। जो भी सामने आता, वह खण्ड–खण्ड होकर जमीन पर आ पड़ता था। भरथरी के दण्ड बहुत कठोर थे, किन्तु हृदय बहुत कोमल था। वह सदा न्याय पर चलता था। न्याय करते समय वह कभी पक्षपात नहीं करता था भले ही

सामने उसके माँ–बाप अथवा दूसरे परिजन या परिवारजन ही क्यों न हों। वह सत्य, न्याय, धर्मनिष्ठ राजा था। यथा राजा तथा प्रजा के सिद्धान्तानुसार प्रजाजन भी धर्म और नियम का पालन करते थे। प्रजाजनों में छल–कपट, कलह–क्लेश अथवा घात–प्रतिघात का व्यवहार नहीं था। वह सुख–शांति एवं परस्पर सौहर्द्रपूर्वक रहते थे।

भरथरी के राज्य में वर्षा आवश्यकतानुसार ही होती थी। न अल्पवृष्टि न अतिवृष्टि। रोग–शोक अथवा देव कोप किसी को नहीं था। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप–कोप से राज्य की प्रजा और राजा मुक्त थे।

राजा की धर्म और न्याय निष्ठा के प्रताप के फलस्वरूप फसलों में चौगुनी बढ़ोतरी हो गई। राज्य में सदा यज्ञ–हवन होते ही रहते थे। व्यापार भी बहुत उन्नत था। मालवा के व्यापारी विदेशों तक व्यापार करने जाते थे। वे अपनी आमदनी का दसांश धर्म कर्मों में दान करते थे।

उज्जैन में कोई मूर्ख प्रमाण के लिये भी नहीं दिखता था। पड़सालों में (पाठशालाओं में) पंडित लोग ज्ञान देते थे। राजा भरथरी का बखान करते थे। गुणीजन उनका गुणगान करते थे। प्रतिउत्तर में स्वयं राजा भी गुणियों और पंडितों का सम्मान करता था। वह हाथ जोड़कर स्वरचित पदों से उनका गुणगान करते हुए उन्हें खूब दान देते थे। भरथरी राजा ज्ञान का जानकार था। उसने नीति–रीति, श्रृँगार और वैराग्य के ग्रंथ तैयार किए थे। वह श्रेष्ठ वैयाकरण था, उसका यश चतुर्दिक फैला हुआ था। उसके अखण्ड यश सूर्य के प्रकाश से सर्वत्र ज्ञान का उजास था।

उसकी छवि अत्यंत आभावान थी। ऐसा लगता था, उसके मुखमण्डल पर सूर्य चमक रहा हो। उसकी आँखों की चमक को शब्दों में बखान पाना कठिन है। उसकी वाणी सागर के समान गहन और गम्भीर थी, किन्तु बहुत मधुर थी। वह चलता था, तब ऐसा लगता था मानो सिंह चल रहा हो। उसकी भुजाएँ खूब लम्बी थी। वह अजानबाहु था। अत्यन्त धीर गति से वह गमन करता था।

वह ज्ञानवान और अत्यंत बलवान था। ऐसा लगता था मानो स्वयं ऋषि मनु ने अवतार धारण किया हो। वह कभी अत्रि ऋषि की भाँति और कभी अगस्त ऋषि की भाँति दिखता था। ऐसा ज्ञानी, मानी, ध्यानी, बलवान और ऊर्जावान था राजा भरथरी।

बैरी चारों दिशाओं में फैले थे, किन्तु भरथरी के सामने उनका वश नहीं चल पाता था। वे सब हिल–मिलकर परस्पर योजनाएँ बनाने में जुटे रहते थे कि किस प्रकार

भरथरी को परास्त किया जा सकता है। वे सोचते रहते थे कि इस सूरज पर राहु–केतु का भार कैसे डाला जाए, अर्थात् इसे किस प्रकार परास्त किया जाए।

सबने मिलकर राजा भरथरी के राज्य में दो ऐसे व्यक्ति भेजे, जो अत्यंत दुष्टवृत्ति के थे। वे छल–कपट एवं भेद नीति में चतुर थे। वे प्रजा में घुल–मिल गये और अनीति का प्रचार करने लगे। वे अपने साथ कुछ नाचने वाली स्त्रियाँ भी लाए थे। वे गाँव–गाँव जाकर नृत्य करती थीं। वे दुष्टजन अपने व्यय पर लोगों को मदिरा बाँटते थे। प्रजाजन मदिरा में मदमस्त होकर सर्वत्र धमाले करने लगी। घरों में, गली मोहल्लों में क्लेश होने लगा। सारा जनजीवन त्रस्त हो उठा। मदिरा और नाचने वाली दुरमतियों द्वारा सर्वत्र गलियों–चौपालों में निर्लज्जता का वातावरण हो गया। लोग ग्राम शूकरों की भाँति धूल–कीचड़ में लोटने लगे। शबाब और शराब के नशे ने पारिवारिक और सामाजिक जीवन अस्त–व्यस्त कर दिया। मदिरा के साथ–साथ लोग जुआ खेलने और चोरियाँ करने लगे। छल–ठगी आदि दुष्कर्म भी समाज में व्याप्त हो गए। प्रजा में सभी व्यसन आग के समान भभक उठे, जिसमें सामाजिक एवं पारिवारिक मर्यादाएँ जलकर भस्म होने लगी। यह दुराचार भरथरी के समूचे राज्य में फैल गया। दरबार तक भी त्राहि–त्राहि मच उठी।

उन दुष्टों ने एक ओर तो प्रजा को पथभ्रष्ट कर दिया, दूसरी तरफ उन भेदियों ने राजा से भी छल प्रीत जोड़ ली और वे उनके विश्वस्त प्रिय भाजन बन गए। उन्होंने भरथरी को भी अपने जाल में फँसा लिया, वे भी मदिरापान करने लगे और कुलटा स्त्रियों के साथ दुराचारी हो उठे। राजा भोग–विलास में लिप्त हो गया।

एक दिन एक गणिका भरथरी के दरबार में आई। उसका सौंदर्य अति मोहक था। उसका अंग–अंग ऐसा सुन्दर और सुडौल था, मानो साँचे में ढला हो। उसके यौवन का चमकारा ऐसा था, मानो आकाश में चन्द्रमा चमक उठा हो। उसके आते ही राजा भरथरी के दरबार में एक शीतल प्रकाश फैल गया। वह मृगनयनी और मोहनी गणिका मंद–मंद मुस्कराकर जिधर भी दृष्टिपात करती थी, तब ऐसा लगता था मानो एक साथ दोहरे बाण चला रही हो। उसने सबको अपनी मोहक मुस्कान, मदमस्त यौवन व नयनबाणों से घायल कर दिया।

सबको घायल करके वह एक विजयनी की भाँति मंद–मंद मुस्करा रही थी। उसका मदान्त यौवन कंचुकी के बंधनों में समा नहीं रहा था। ऐसा लगता था वह कंचुकी की कसनियाँ तोड़कर मुक्त आकाश में उड़ जाएगा।

उसकी पायजेबें छम–छम बज रही थीं। कानों के झुमके नृत्य कर रहे थे। नाक की नथ भी नृत्यरत थी। झुमकों की मटक और झूमाझूम तथा नथ की नृत्य छवियाँ एवं नथ में जड़ी मणियों की चमकार अजब और गजब दृश्य उपस्थित कर रही थीं। जब वह मटक–मटक कर चलती थी, तब मोर भी लज्जित हो जाता था। वह जिधर भी देख लेती, उधर सबके हृदय को घायल करती हुई उसे व्याकुल कर देती थी। उस परम–सुन्दरी गणिका के साथ उसके साजिंदे भी थे, जिन्होंने अपने साज–बाज सम्हाल रखे थे। उस गणिका ने अत्यंत विनम्र भाव से नृत्य प्रस्तुत करने की प्रार्थना राजा से कर दी। उसने अपना नाम पिंगला बताया तथा अपना मूल स्थान पींगलगढ़ बताया। उसने यह प्रार्थना भी की कि मैं उज्जैन नगरी में बसना चाहती हूँ तथा आश्वस्त करती हूँ कि कोई भी बुरा काम मैं यह रहते हुए नहीं करुँगी।

उसके रूप पर दरबार के सभी सभासद तो मोहित हुए ही, स्वयं भरथरी भी मोहित हो गया। राजा ने उस पर एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ न्यौछावर कर दी। उन्होंने तत्काल परवाना लिखवाकर उसे उज्जैन में रहने की अनुमति प्रदान करते हुए आश्वस्त किया कि वह उज्जैन में सुख–शांतिपूर्वक निवास करे। उसके रहने के लिये धाम (महल) राज की ओर से बनवाया जाएगा।

अब महल में दो पिंगला हो गई थीं। एक पिंगल भरथरी की राजरानी थी, जिसका निवास महलों में था। वह चन्द्रमा के समान रुपवती थी। दूसरी महलों के बाहर निवास करने लगी थी, जिसका रूप सूर्य की धूप जैसा था। चमक दोनों में थी। एक हृदय में शीतलता प्रदान करती थी, दूसरी हृदय में ताप उत्पन्न करती थी– उत्तेजना उत्पन्न करती थी।

महलों की रानी पिंगल सतवंती थी। वह प्रतिदिन तुलसी, पीपल और पति की पूजा करती थी। दूसरी पिंगला गणिका नगर की वधू थी। उसके अनेक पति थे। राजपुरुष और साहुकारजन उसके यहाँ जाते थे। वह सबका एक समान सत्कार करती थी। राजा भरथरी भी उसके मोहजाल में फँस गया। इसका पता राजमहल में सबको हो गया। रानी पिंगला ठंडी साँसे भरते हुए अपना समय व्यतीत करती थी।

पिंगल गणिका के मोहपाश में फँसने के कारण राजा भरथरी का सम्मान सब तरफ कम हो गया। उनकी महिमा घट गई। राजकाज छूट गया। ज्ञान मंद हो गया।

यदि कोई मूर्ख ओछा (निम्न) कार्य करता हो है, तब लोग 'औ' कहकर टाल जाते हैं, किन्तु यदि कोई ज्ञानी का चरित्र डावाँडोल होता है, तब लोग चर्चा करते हैं

और उसकी भर्त्सना करते हैं। भरथरी का सारा ज्ञान पिंगला के रूप हाट में बिक गया। उनका ज्ञान सूर्य गणिका पिंगला की रूप चमक के समक्ष मंद पड़ गया था।

जब भरथरी के भटकाव की सूचना राजगुरु को हुई, तब उन्होंने राजधर्म का पालन करते हुए भरथरी को पुनः उचित मार्ग पर लाने का उपाय सोचना प्रारंभ कर दिया। वे एक दिन भरथरी को चेतमान करने के उद्देश्य से राजदरबार में पधारे।

भरथरी ने जब राजगुरु को अपने दरबार में आया हुआ जाना, तब वे अत्यंत आदर भाव से सिंहासन छोड़कर गुरुश्री के निकट पहुँचे। उन्होंने राजगुरु को प्रणाम कर निवेदन किया– हे सद्गुरु देव! आप पधारे यह शुभ हुआ, किन्तु यदि आप दूत भेजकर मुझे आदेशित करवाते तो मैं स्वयं तत्काल आपके चरणों में उपस्थित हो जाता। ऐसा कहकर सद्गुरु को सम्मान सहित आसन पर बैठाया। हे गुरुदेव! आज्ञा करें, आप किस उद्देश्य से पधारे हैं? मैं आपके आदेश का पालन भगवान शिव का आदेश मानकर तुरंत करुँगा। आप कृपा करें और आशीर्वाद प्रदान करें। आपके आशीर्वाद से सभी क्लेश मिट जाएँगे।

भरथरी की विनम्रता और गुरुभक्ति देखकर सद्गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा–हे भरथरी! आप धर्म और कर्म का समन्वय करते हुए सद्मति से सभी काम करते रहना। यदि धर्म छोड़कर कर्म करोगे, तब राजधर्म की हानि होगी। रीति और नीति में खोट आए, ऐसी चूक मत करना। कभी अहंकार भी मत करना। ऐसा प्रयत्न करना कि धर्म अपने चारों चरणों सत्य, शील, शुचिता और दयादान पर स्थिर रहे।

हे भरथरी! स्वर्ण पात्र में रखने पर भी विष कभी अमृत नहीं बन सकता। कुल्टा नारी के विष से कोई भी नहीं बच सकता। भगवान महाकाल सदा तुम्हारी रक्षा करें, मेरा यही आशीर्वाद है।

मैं यह अमृतफल तुम्हें दे रहा हूँ। यह विधना का उपहार है। इस अमृतफल को जो भी खाएगा, वह सदा युवा बना रहेगा। उसे न तो कोई रोग–शोक सताएगा और न वह कभी वृद्ध होगा। इस अमृत फल को खाने से सद्मति बनी रहती है। अमृत फल प्राप्त कर भरथरी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–मेरा पुण्य फला है और मुझ पर आप श्री सद्गुरु की एवं भगवान की कृपा हुई है।

राजा भरथरी प्रतिदिन रात्रि में गणिका पिंगला के महल में निवास करते थे। गणिका पिंगला के महल में खूब नृत्य–गान होता था। भरथरी मदपान करते थे। पिंगला

गणिका उन्हें अत्यंत प्रिय थी। वह उनके हृदय में निवास करती थी। महलों में बैठी रानी पिंगला 'पिव–पिव' रटती ठण्डी साँसें भरती रहती थी।

महाराज भरथरी सद्गुरु द्वारा दिया गया अमृतफल लेकर गणिका पिंगला के महल में गए। पिंगला ने उनकी सदा की भाँति आवभगत की और खूब टहल सेवा की।

पिंगल गणिका के महल में पहुँचकर तथा उसकी टहल सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने कहा– पिंगला! यह अमृतफल सद्गुरुदेव का प्रसाद है। जो भी इसे खाएगा, उसके सभी विषाद मिट जाएँगे। उसकी युवावस्था सदा अमर रहेगी। कभी भी वृद्धावस्था नहीं आएगी। उसे मृत्यु भय भी नहीं रहेगा। गणिका ने वह अमृतफल महाराज भरथरी से प्राप्त कर लिया और उसे भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने रख दिया। महाराज भरथरी प्रातःकाल होने पर वापिस अपने महल लौट गए।

पिंगला गणिका ने महाराज के प्रस्थान के पश्चात् वह अमृतफल फिर से हाथ में लिया। उसका प्रेम राज्य के सेनापति के साथ था। गणिका ने वह फल सेनापति के आने पर उसके हाथ पर धर दिया और कहा– हे सेनापति! यह फल आप खा लो। यह अमृत फल है। इसके खा लेने से आप सदा युवा बने रहेंगे। इस अमृतफल के वरदान से आप युवा रहते हुए सदा राज की सेवा करते रहेंगे। यह फल मुझे स्वयं राजा ने दिया है। उन्होंने यह फल मेरे यौवन को अमर करने के लिये मुझे दिया है, किन्तु मैं मानती हूँ कि मेरे यौवन से बड़ा महत्त्व महाकाल के राज की रक्षा है। आप इसे सदा करते रहना। मैं तो गणिका हूँ। मेरे जीवन और यौवन का क्या महत्त्व और क्या अमरत्व? मुझे जो स्नेह लोग देते हैं, वह तो स्वार्थपूर्ण होता है। इसलिए वह व्यर्थ है।

गणिका के समझाने पर सेनापति ने वह फल उससे ले लिया। वह वहाँ से अश्व सवार होकर चल पड़ा। सेनापति की रानी का नाम फूलवती था। अपने पति सेनापति का गणिका पिंगला से प्रेम होने के कारण वह दुःखी थी। सदा सुन्न–मुन्न बनी रहती थी। उसने श्रृंगार तक करना छोड़ दिया था। उस चन्द्रवदनी, मृगलोचनी फूलवती के हृदय में गणिका के साथ अपने पति के सम्बन्धों के कारण अग्नि जलती रहती थी, जिससे उसका हृदय दग्ध था।

सेनापति फूलवती से बहुत प्यार करता था, किन्तु वह पिंगला गणिका के मोहपाश में बंधा था। उससे मुक्त नहीं हो पा रहा था। जैसे ही उसके हाथ में वह अमृत फल आया, उसके हृदय में अपनी रूपसी एवं सतवंती पत्नी फूलवती के प्रति प्रेम का भाव उमड़ पड़ा। उसने सोचा– मैं यह अमृतफल फूलवती को दे दूँगा। वह प्रसन्न हो

जाएगी। फिर कभी मैं उसे रुष्ठ नहीं होने दूँगा। वह गणिका पिंगला जब राजा की नहीं हुई, तब मेरी भी क्या होगी? मैं अपनी ब्याहता को प्रसन्न करुँगा। यह फल उसे दूँगा।

इस प्रकार के सद्मति वाले विचार लेकर वह अपने महल में गया और वह अमृतफल उसने फूवलती को देकर कहा– हे फूलवती! यह तुम खा लो। तुम मेरी प्रिय पत्नी हो। इसे खा लेने पर तुम सदा युवा बनी रहोगी। तुम्हारा यौवन और सौंदर्य चिरस्थाई हो जाएगा। फूलवती ने वह फल अपने पति से ले लिया, किन्तु विचार करने लगी कि मेरा तो जीवन ही व्यर्थ हो गया है। पति तो गणिका के मोहपाश में बँधे हैं। मेरा यह यौवन, रूप और श्रृँगार किस काम का? मैं अपनी माँ जायी बहन पिंगला रानी को यह अमृतफल भेंट में दे दूँगी। वह आनंद में रहे। उसके सभी दुःख मिट जाएँ, यह मैं चाहती हूँ।

बहुत दिनों से मैं उससे मिली भी नहीं हूँ। इस बहाने उससे भेंट हो जाएगी। आपस में दुःख–सुख बाँटेगी। उसके महलों में जाने पर मिलन होगा। दोनों हर्षित होंगी।

रानी पिंगला बहुत गुणवती और रूपवती है। वह अपने पति महाराज भरथरी की अतिप्रिय रानी भी है। राजा उसका बहुत आदर–सम्मान भी करते हैं।

ऐसा विचार कर वह अपनी माँ जायी बहन पिंगला से मिलने उसके महल पहुँची। बहनों का परस्पर मिलाप हुआ। उनके नाम चाहे भिन्न थे, किन्तु रूप एक जैसा था। उनका भाग्य भी एक जैसा था। उनका रहना–सहना भी एक जैसा था। दोनों के पति गणिका भोगी थे। दोनों गणिका पिंगला के मोह में फँसे थे। राजा राजधर्म भूल गया था, दूसरा विलासी हो गया था। दोनों विलासी होकर अपने–अपने राजधर्म से भटके थे।

यह वैसा ही था, जैसा लोक कहावत है– एक नट नचैया बन गया तो दूसरी मिसारी बन गया। प्रजा में त्राहि–त्राहि मच रही थी। सीमाएँ उजाड़ और असुरक्षित हो गई थीं। न कोई राज के भीतर रक्षक था न सीमाओं पर। यदि कोई खेत में रखवाली के लिए बने मचान पर रखवाली करने के बजाए वहाँ पर सो जाय, तब चिड़ियाँ तो खेत चुगेंगी ही। जब वह सोकर उठेगा, तब तो उसे पछताना ही पड़ेगा, किन्तु– 'तब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत?'

भरथरी के राजकाज की भी यही दुर्गति थी। सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच रही थी। कोई भी प्रजा की विपदा सुनने वाला नहीं था।

फूलवती रानी पिंगला के महल में पहुँची, दोनों की भेंट हो गई। दुःख–सुख बाँटा गया, तब फूलवती ने वह अमृतफल रानी पिंगला को भेंट में देकर कहा– हे जीजी ! यह फल अमृत से भरा है । इसे तुम खालो। इसके खाने से तन और मन दोनों सदा युवा रहेंगे। आयु बढ़ेगी। वृद्धावस्था नहीं आएगी। हे जीजी! आप मेरी यह भेंट स्वीकार कर लो। आप राजरानी हो, इस कारण आप यह अमृतफल खा लो। मैं तुमसे हर तरह छोटी हूँ।

अमृतफल रानी पिंगला को देकर फूलवती वापिस अपने महल में आ गई। वह मन ही मन व्याकुल थी कि स्वामी हरजाई हो गये हैं। अमृतफल प्राप्त कर पिंगला भी विचारों में खो गई। मेरे द्वारा यह फल खा लेने का क्या लाभ ? मेरा यौवन तो बेसहारे हो गया है। इसका न कोई सहारा है, न निरखणहार या भोगणहार।

यह अमृतफल मेरे लिए व्यर्थ है। अधिक अच्छा यह है कि इसे स्वामी ही खा लें। यही मेरा धर्म भी है। यह फल मैं स्वामी को दे दूँगी। उसने ऐसा पक्का विचार कर लिया। यदि वे इस फल को खा लेंगे, तब मैं सदा सुहागिन रह सकूँगी। मेरा यह जन्म सुधर जाएगा। नारी का यही धर्म है कि उसका भर्तार सदा सुखी रहे। ऐसा विचार कर रानी पिंगला ने वह अमृतफल सुरक्षित रख लिया।

जब महाराज भरथरी रानी पिंगला के महल में आए, तब अत्यंत आदर के साथ रानी ने वह अमृतफल अपने स्वामी महाराज भरथरी को दे दिया– हे स्वामी! आप यह अमृतफल खा लें। इससे मेरा हृदय हर्षित होगा। ऐसा कहते हैं कि इसके खा लेने पर तन और मन सदा सचेत बना रहता है। आयु और यौवन स्थिर बना रहता है और वृद्धावस्था नहीं आती है।

उस फल को देखकर राजा भरथरी आश्चर्यचकित हो उठे। वे एकदम सकपका गए। वो सोचने लगे कि गणिका पिंगला को मेरे द्वारा दिया हुआ यह फल मेरी रानी पिंगला के पास कैसे आया?

राजा ने अपने भेदियों द्वारा खोज करवाकर सारा भेद जान लिया। भरथरी ने जब उस अमृतफल की उपेक्षा की स्थिति जानी, तब उन्हें भान हो गया कि कोई भी अमर नहीं होना चाहता। साथ ही उन्हें क्रोध भी आया कि गणिका पिंगला ने मेरा विश्वास भंग किया है। ऐसा भान होते ही उनकी भृकुटी तन गई। मुठियाँ कस गईं। उनका क्रोध गणिका पर उमड़ पड़ा। वे तुरन्त अश्व सवार होकर पिंगला गणिका के घर पहुँचे और उस पर भयंकर रूप से क्रोधित हो उठे।

उन्होंने क्रोधवश गणिका पिंगला को फटकारते हुए कहा– मैंने तुझे क्या कुछ नहीं दिया ? मान दिया, महल दिया, तन–मन और धन दिया। इस प्रकार राजा ने गणिका को दिए सभी उपहार गिना दिए। भरथरी राजा बिना मदपान किए भी मादक पुरुष की भाँति प्रलाप कर रहे थे।

अरे निर्ल्लज! अरे लज्जा की सौदागार! तूने मेरे साथ विश्वासघात किया। अरे दुराचारिणी गणिका! अरे वैश्या! अरे नगरवधू! तूझे धिक्कार है।

पिंगला गणिका राजा का क्रोध भरा प्रलाप सुनकर अधीर नहीं हुई। वह शांतचित्त राजा भरथरी के क्रोध को सहन करती खड़ी रही। जब महाराज भरथरी मौन हो गए, तब गणिका ने शांत भाव से कहा– हे महाराज! सुनिए आप राजा हैं। कोप कर सकते हैं। आपने मुझे उपहार दिए। आपने मुझ पर कई उपकार किए। आप सब गिना सकते हैं। इसमें आप स्वतंत्र हैं।

आप राजधर्म भूल गए। यह आपकी भूल है। मैंने अपना गणिका धर्म कभी भी नहीं त्यागा। यदि आप मुझे अपराधिनी मानते हैं, तब आप मुझे फाँसी पर चढ़ा सकते हैं, किन्तु हे महाराज ! मैं एक गणिका हूँ। मुझे नगरवधू कहा जाता है। जो भी व्यक्ति (नागरिक) मेरे कोठे पर आता है, मैं उन सबका मन बहलाती हूँ। यही मेरा कर्म और धर्म है। भले ही कोई राजा हो अथवा कोई रंक हो। मेरे घर आ जाने पर वह इन्द्र होता है। मैं किसी भी प्रकार का भेद नहीं करती। मेरे लिए घर आया व्यक्ति यदि पानी के छोटे डबरे जैसा लघु है, तब भी मैं उसे एक समुद्र की तरह ही विशाल मानती हूँ। गणिका का यही धर्म होता है। मैंने अपने धर्म का निर्वाह पूरी निष्ठा से किया है। ऐसा कहकर गणिका पिंगला ने अपना शीश महाराज भरथरी के चरणों में झुका दिया।

गणिका ने महाराज भरथरी के चरणों में सिर टिकाते हुए कहा– 'हे महाराज! सुनिए,' मेरे वचनों के साक्षी स्वयं भगवान महाकाल हैं। वे ही मेरा पूरा एवं दृढ़ आश्रय हैं। मैं उन्हीं की शरण में सदा से रही हूँ। उन्होंने ही मेरी लाज और मर्यादा बचाई है। मैं आज उन्हीं भगवान महाकाल की साक्षी देकर आपके चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ। कि मैं आज गणिका धर्म त्यागकर वैराग्य धारण करती हूँ। अपने समस्त मूल्यवान वस्त्रादि का त्याग कर भगवा वस्त्र धारण करुँगी। समस्त मोह–माया को त्याग कर अब उज्जैन नगर से प्रस्थान करुँगी।

जब भोग का रोग अधिक बढ़ जाता है, तब वह मन को व्याकुल कर देता है। विवश कर देता है। अतिभोगी या तो नंगा होकर निर्लज्ज हो जाता है अथवा उसके हृदय में वैराग्य का भाव जाग जाता है। मेरा भी यही होना था, जो हो गया है।

आप मेरे गुरु हुए ! आपने मेरे मन के सभी विकार समाप्त कर उसे निर्मल कर दिया है। मेरा भोग–रोग मिट गया है। तन और मन उज्ज्वल हो गए हैं।

महाराज भरथरी के समक्ष गणिका ने असार संसार के प्रति मोह त्यागने का अपना विचार प्रकट कर दिया। वह तत्काल भीतर कक्ष में चली गई। उसके हृदय में वैराग्य जाग उठा था। उसने जैसा कहा, वैसा अपने वचनों का पालन भी किया। उसने वैरागन का रूप धारण किया और महलों को त्याग कर बाहर निकल गई। उसने महाराज भरथरी को धोक लगाई (चरण स्पर्श किया) और भगवान महाकाल की शरण में चली गई।

महाराज भरथरी के सामने अचानक घटी उस घटना ने उन्हें निःशब्द कर दिया। वे आश्चर्यचकित सब देखते ही रह गए। सारा दृश्य ही बदल गया था। वे उस अप्रत्याशित घटना से भीतर ही भीतर टूट गए। उनके हाथों में जो अमृतफल था, वह उनके हाथों से छूटकर धरती पर आ गिरा।

वह अमृतफल भले ही खा लेने वालों को अमर कर सकता था। भले ही यौवन को स्थिर कर सकता था, किन्तु उसने तो बिना खाए ही सबके मन और चित्त को संयमित और स्थिर कर दिया था। मन की व्याकुलता और अस्थिरता भी भावी शांति और स्थिरता का कारण बनी। कभी–कभी अशुभ भी किसी शुभ के लिए होता है। भरथरी ने विचार किया कि यह अमृतफल सचमुच चमत्कारी है। यह जिसके भी हाथों में गया, उसके चित्त को इसने निर्मल कर दिया।

ऐसा सोच–विचार करते भरथरी गणिका के घर से बाहर आ गए। उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो कोई मार्ग भटका व्यक्ति चौराहे पर खड़ा अपने अभीष्ट मार्ग को ढूँढ रहा हो। उनका मन हताशा से भर गया था।

उन्हें लगा यह संसार तो असार है। उनके हृदय में वैराग्य का उदय हो गया। उनका मन इस संसार के मायाजाल से मुक्त हो गया था। मन ने संसार के माया मोह के बंधनों को तोड़ डाला। उन्होंने रानी, रुतबा, राजपाट, महल सब तत्काल त्याग दिए। कुछ भी मेरा नहीं है। सब व्यर्थ का मोह है। ऐसा विचार करते हुए भरथरी महल में बैठे–बैठे विचारों में खो गए। उनके मन में निराशा और हताशा के विचार आने–जाने लगे। उन्हें लगता था कि या तो मैं शिप्रा नदी में डूबकर अपने प्राण त्याग दूँ अथवा संसार सागर तैरकर पार उतर जाऊँ। केवल दो ही विकल्प बचे हैं। मुझसे तो गणिका श्रेष्ठ है, जिसने तुरंत वैराग्य धारण कर लिया। संसार का यह अनुराग छोड़ने से भी नहीं छूटता।

मैं इस भवसागर से पार कैसे उतरूँ ? इस भवसागर से कौन मुझे पार उतारेगा? मेरे पाँवों में तो माया–मोह के भारी पत्थर बंधे हैं। यह डूबने के ही कारण हैं। हे सद्‌गुरु देव! आप मेरी रक्षा करो। आप ही मेरा उद्धार कर सकते हो। हे देव! आप ही मेरा मार्ग प्रशस्त करो। यह भरथरी बीच भंवर में फँस गया है, अधबीच में गोते खा रहा है, इसका उद्धार करो।

तभी अलख–अलख की धुन सुन पड़ी। भरथरी के घट भीतर नाद बज उठा। उन्हें लगा कि मेरे मन की मुराद पूरी होने को है। अलख की नाद ध्वनि सुनकर भरथरी तन–मन की सुध भूलकर गहन विचारों में खो गए। तभी एक गहन गम्भीर आवाज ने उन्हें सचेत किया। उन्हें लगा मानों कोई कह रहा हो 'अरे! उज्जैन के राजा विचार निद्रा से जागकर सचेत हो जाओ। तुम्हारे महल के द्वार पर जोगी खड़ा अलख लगा रहा है।'

अरे भरथरी! मोह निद्रा से जागकर अलख निरंजन को हृदय में धारण कर। अरे भरथरी! तू किन विचारों में खो रहा है। कौन राजा? कौन रानी ? कौन बेटा और कौन बाप है?। सब झूठे संबंध हैं। पलके उघाड़ कर देख ले, यह संसार तो एक सपना है। जिस प्रकार आँख खुलने पर सपना भंग हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान की आँख खुलने पर यह संसार रूपी सपना भी टूट जाएगा।

अरे भरथरी! ये भोग विलास का जीवन व्यर्थ है। इससे विरक्त हो जा। इसमें फँसकर अपना जन्म निरर्थक मत कर। अरे राजा! घी डालने से आग नहीं बुझ सकती, बल्कि और भी प्रज्ज्वलित हो उठती है। ये भोग भी ऐसा है। ये भोगने पर कभी भी समाप्त नहीं होते। समाप्त तो यह जीवन हो जाता है। इनसे विरत होने पर ही ये समाप्त होते हैं। अलख निरंजन ही तारक मंत्र है। यही तरण जहाज है जो तुझे भवसागर से पार उतार सकता है। तू मोह के बंधन तोड़ और मेरे साथ चल।

ऐसा कहकर सिद्ध गुरु ने भरथरी के शीश पर कृपा का हाथ रख दिया। उनकी पीठ पर हाथ फेर दिया। भरथरी के मोह का बंधन तुरंत ही टूट गया। वे उनके साथ चल पड़ने को उद्यत हो उठे। तभी सिद्ध गुरु ने आदेश दिया, तुम्हारे मोह के बंधन अभी नहीं टूटे है। तुम अपने महलों के द्वारों पर जाओ और अपनी रानियों से भिक्षा मांग कर लाओ। तभी तुम्हारा मोह भंग होगा।

भरथरी ने सिंगी सेली धारण कर ली। भगवा भेष पहन लिया। हाथ में चिमटा उठा लिया और महल के द्वार पर जोगी का वेश धारण कर भिक्षा मांगने पहुँच गए। सारे मोह के तार तोड़ दिए।

भरथरी की तीन मुख्य रानियाँ थी। अन्य का कहीं वर्णन नहीं लिखा–कहा गया।

उनकी पहली रानी का नाम सुखमणा था, जो सत्यधर्म की धारक थी। दूसरी रानी का नाम ईड़ला था, जो नीति–रीति की पालनहार थी। तीसरी रानी पद्मण पिंगला थी। वह राजा की प्राण प्रिय थी।

रानी पिंगला जब चलती थी, तब वह वन की मोरनी लगती थी। वह सदा सोलह श्रृंगार करती थी। बाऐं महल में रानी ईंड़ला रहती थी और दाहिने महल में रानी पिंगला रहती थी। रानी सुखमणा पटरानी थी। वह सतवंती थी। बुद्धिमति भी थी।

राजा भरथरी जोगी का वेश धारण कर सबसे पहले अपनी पटरानी सुखमणा के महल द्वार पर पहुँचे और अलख लगाकर भिक्षा मांगी। हे माता सुखमणा! दो मुट्ठी ज्वार भिक्षा में दे दो। तुम्हारे द्वार पर जोगी खड़ा अलख लगा रहा है।

हे माता सुखमण! सत की घूघरी और सद्गति की दो–दो मुट्ठी ज्वार दे दो।

अलख का नाद सुनकर रानी सुखमणा महल के द्वार पर आई। बाहर अपने पति राजा भरथरी को योगी रूप धरे अलख लगाकर भिक्षा मांगते देखा और सम्बोधन में माता पुकारते सुना, तब वे सारी स्थिति समझ गईं। वे जान गई कि महाराज को भोग विलास से विरक्ति हो गई है। अति का प्रतिफल यही होता है। अब इन्हें ज्ञान देना और विरक्ति मार्ग से अनुरक्ति मार्ग पर लौटाना संभव नहीं है।

उन्होंने शांतचित्त होकर कहा– हे योगी भरथरी! सत की घूघरी और सद्गति की दो मुट्ठी ज्वार ले लो।

आप अपने संकल्प पर दृढ़ रहना। विचलित मत होना। जो भाव धारण कर लिया है, उसका निर्वाह पूरे मनोयोग से करना। एकान्त में किसी वन में किसी गुफा में बैठकर ध्यान लगाना। सत्य का सार खोजना। अगर झांकना तो अपने घट के भीतर झाँकना। बाहर के संसार को भूल जाना। घट के भीतर अमृत की निर्झरनी झर रही है। उस अमृत का पान कर तृप्त होना। भोगों की अग्नि शांत होगी। हे जोगी! आपने अब तक बहुत रंग–रस का आनंद लिया है। रंग रस में खूब भीगे, अब उस अमृतधार में स्नान कर समस्त ताप–संताप शांत कर लेना। ऐसा कहते हुए पटरानी सुखमणा ने जोगी वेशधारी भरथरी को, अपने भरतार को ज्ञान की प्रतीकात्मक भिक्षा देते हुए दो मुट्ठी ज्वार घूघरी देकर विदा कर दिया। मन ही मन उन्हें प्रणाम कर लिया।

पटरानी सुखमणा से भिक्षा प्राप्त कर जोगी भरथरी दूसरी रानी ईड़ला के महल द्वार पर पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने माता सम्बोधन के साथ दो मुट्ठी ज्वार की याचना की।

हे माता ईड़ला! आप रीति–नीति की धारक एवं पालक हैं। आपने सदा सामाजिक और पारिवारिक मर्यादाओं के साथ राज रीति और नीति का भी संरक्षण एवं पालन किया है। आप संसार के सार को भी भलीभाँति समझती हैं।

आप मुझ योगी को दो मुट्ठी ज्वार दे दो। हे सद्मत वाली माता ईंड़ला! यह योगी आपके द्वार पर भिक्षा के लिए अलख लगाता खड़ा है।

रानी ईड़ला अलख सुनकर महल द्वार पर आई। अरे योगी! बाहर अलख नाद से कोई प्राप्ति नहीं होगी। योग तो भीतर से पुष्ट होगा। भीतर के योगी को जागृत करो। भीतर अनहद राग के तार झनझना रहे हैं। उसके संगीत को सुनो। इस अनहद नाद को सुनने से ही आपको सिद्धि प्राप्त हो सकेगी। वह अनहद नाद ही सत्य का सार है। हे योगी नीति और रीति शुद्ध रखना। सच्ची नीति और रीति से ही उद्धार हो सकता है।

हे योगी! यह सेली और सिंगी योग नहीं है। यह देह पर धारण भगवा वेश भी व्यर्थ है। हे योगी! सुनो– भीतर का योग जागृत करो। भीतर ही तारनहार ब्रह्म विराजित हैं।

हे योगी! आप भिक्षा कोथरी (भिक्षा का झोला) खोलो, मैं आपको भिक्षा दे देती हूँ। योग धारण हेतु जो रीति–नीति है कि अपनी ब्याहता से अनुमति लेना, मैं उसका निर्वाह करने को तत्पर हूँ। मैंने सदा मर्यादा का निर्वाह किया है। मैं आज भी मर्यादा का निर्वाह करूँगी। आप जिस योग पथ पर अग्रसर होना चाह रहे हो। उस विरक्ति पथ पर दृढ़ मन के साथ आगे बढ़ो। पीछे मत हटना अन्यथा दोनों भव बिगड़ जाएँगे। कभी भी अहंकार मत करना। सदा निरहंकारी बने रहना। ऐसी ज्ञान भिक्षा एवं दो मुट्ठी ज्वार की भिक्षा देकर ईड़ला रानी ने भी राजा भरथरी को योग की अनुमति दे दी।

दोनों रानियों से योग की अनुमति स्वरूप भिक्षा प्राप्त कर भरथरी अपनी तीसरी और प्रिय रानी पिंगला के द्वार पर भिक्षा लेने पहुँचे। उन्होंने अलख लगाकर कहा– हे माता पिंगला! महल से बाहर आओ, तुम्हारे द्वार पर योगी भिक्षा के लिये अलख लगाता खड़ा है। उसे भिक्षा दो। रानी पिंगला ने महल द्वार पर आकर जब अपने भरतार राजा भरथरी को योगीवेश धरे देखा, तब वह औचक हो उठी। उसने कहा– हे राजा भरथरी!

आप कब से जोगी हो गए? कब आपने यह भगवा वेश धारण कर लिया है? आपने यह सिंगी सेली कहाँ धारण कर ली? अरे महाराज! आपने राजसी वेशभूषा कब त्याग दी? हे महाराज! आपने कब और किसे अपना सद्‌गुरु स्थापित कर लिया? किसने मेरे भरतार को बिलमा लिया है।

रानी के इतने सारे प्रश्नों को सुनकर महाराज भरथरी ने कहा– मुझे यह योगी वेश सद्‌गुरु नाथ ने दिया है। भवसागर में डूबने से स्वयं भगवान शिव ने ही हाथ पकड़कर मुझे बाहर निकाला है। स्वयं महादेव ही मेरे गुरुनाथ बनकर आए हैं।

महादेव ही मेरे सद्‌गुरु हैं। हे माता पिंगला! उन्होंने मुझे 'सत' का सार समझाया है। भरथरी का यह स्पष्टीकरण सुनकर पिंगला ने कहा– हे राजा भरथरी! आपने राज और भोग किस कारण त्याग दिया? सारा रंग–रस किस कारण से छोड़ दिया। हे राजा भरथरी! किस कारण आपने यह वैरागी वेशधारण किया है? संसार से विरक्ति का क्या कारण है? ऐसा कौन सा कारण उत्पन्न हो गया कि जिस तन पर चंदन एवं सुगंधित आलेपन होता था, उस तन पर क्षार मलना पड़ी?

भरथरी ने धैर्यपूर्वक रानी पिंगला के प्रश्नों को सुना, फिर शांत भाव से बोले– हे माता! मैंने खूब सत्ता भोगी और जी भरकर रस रंग का भोग किया। मेरी आँखों पर भोग विलास का परदा पड़ा था। मेरी आँखों पर से सिद्ध सद्‌गुरु ने परदा हटा दिया और मुझे सत्य मार्ग का दर्शन कराया। हे पिंगला! मेरे लिए यह संसार स्वप्नवत् हो गया है। आँख खुलते ही सपना टूट गया। हे माता पिंगला! आप मुझे भिक्षा देकर कृतार्थ करो। आप झट बाहर पधारो और भिक्षा दे दो। योगी आपके द्वार पर खड़ा है।

योगी वेशधारी भरथरी के वचन सुनकर रानी पिंगला बोली– हे राजा भरथरी! अरे प्रिय स्वामी! मैं आपको भिक्षा देकर योग धारण की स्वीकृति देकर अपना यौवन कैसे व्यर्थ कर सकती हूँ?

हे स्वामी! मैं तो आपको अपना यौवन भिक्षा में समर्पित करती हूँ। आप स्वीकार करें। हे मेरे भरतार! आप मेरा यौवन और यौवन श्रृँगार निहारे। हे रंगीले जोगी राज! आँखें खोलकर देखो, आपके सामने आपकी रानी पिंगला खड़ी है।

हे महाराज भरथरी! आप महलों में पधारो? हे मेरे हृदयेश्वर! रानी पिंगला आपकी मनुहार कर रही है। आप महलों में पधार जाओ। मैं नृत्यगान की महफिल सजवाऊँगी। दोनों सेज पर बैठकर सोलासार (एक प्रकार का चौपड़ जैसा देसी खेल) खेलेंगे। हे महाराज! आप सेज पर पधारो। हे पिंगला रानी के भरतार! आप अपनी इस

प्रिय रानी के साथ सेज पर रमण करो। हे प्रिय! आप रंग रस का भोग करो ! मैं सोलह श्रृँगार करके सेज पर आपके प्रति समर्पित होऊँगी।

भरथरी ने जब रानी पिंगला के इस प्रस्ताव को सुना तो उसे मानो अनसुना ही कर दिया। उन्होंने उसी धैर्य से कहा– हे माता पिंगला! आप तत्काल बाहर पधारो और मुझे भिक्षा दो। यह योगी आपके द्वार पर अलख लगाता भिक्षा लेने हेतु खड़ा है।

योगी बने महाराज भरथरी के भिक्षा के हठ को देखकर रानी पिंगला ने कहा– हे महाराज भरथरी! यदि योग ही धारण करना था, तब मुझसे विवाह क्यों किया? दो रानियों के रहते तीसरी रानी क्यों लाए? यदि योग लेना हो तो मन में रख लो। मेरे हृदय के तारों को क्यों छेड़ा। मेरी काया? को भोग द्वारा अपावन क्यों किया? हे योगी! बताओ, पहले श्रृँगार को क्यों रचा था?

हे स्वामी! मैं अपने बाप के घर आराम से रह लेती । अपना जीवन बिता लेती। यौवन के चार दिन बिता लेती। पीपल और तुलसी पूजकर जीवन बिताती। मन को वश में रखकर जैसे–तैसे जीवन बीत जाता? आप यदि ब्याह कर नहीं लाए होते तो मेरा जीवन और यौवन तथा तन अपवित्र तो नहीं होता ?

अरे योगी! मुझे उत्तर दो कि क्यों आपने मुझसे विवाह रचाया और क्यों तीसरी नारी महलों में लाए? क्यों मेरी देह अपवित्र की ?

भरथरी ने रानी पिंगला के ऐसा कठोर वचन सुनकर भी धैर्य बनाए रखा और शांत वाणी में कहा– हे माता! आप कृपा करके मुझे दो मुट्ठी ज्वार की भिक्षा दे दो। मुझे तत्काल नाथों के साथ जाना पड़ेगा। मैंने नींद में सपना देखा था। मेरा पूर्व जीवन एक सपना ही था। अब नींद खुल गई है। सपना टूट गया है। सपना टूटते ही प्रकाश हो गया। पलक खुल गई, अज्ञान का अंधकार नष्ट हो गया। हे माता! कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? सब भूल गया हूँ । अब तो यह मेरा पुनर्जन्म है! आप मुझे भिक्षा देकर धन्य करो।

पिंगला ने भरथरी को बीच में टोककर कहा– मैं कैसे आपको भिक्षा दूँ। मन मृग को किस प्रकार वश में करूँ? आँखों से जो गंगाधार बह रही है, उसको किस प्रकार रोकूँ?

भरथरी ने फिर से अपना स्वर दोहराया। हे माता! आपकी भिक्षा से मेरा जन्म सुधर जाएगा। मुझे भिक्षा में एक मुट्ठी ज्वार दे दो।

हे राजा भरथरी! यदि आप अपनी हठ पर स्थिर हैं, तब आप मुझसे भिक्षा लेने के बजाय मुझे भी अपने साथ ले चलो। पिंगला का साथ ले चलने का प्रस्ताव सुनकर भरथरी ने कहा– आपको साथ ले चलना तो कठिन है। साथ ले चलने से मोह के बंधन नहीं टूट सकेंगे। हे माता पिंगला! मोह के तार तोड़ दो, मुझे भिक्षा में मुट्ठी ज्वार देकर विदा कर दो।

भरथरी का यह तर्क सुनकर रानी पिंगला ने फिर प्रश्न किया, अरे राजा! आप भोग भोगने में क्यों थक गए? अचानक योग धारण करने का निर्णय किस कारण लिया? ऐसी कौन सी औषधि आपने खा ली कि आपका भोग–रोग मिट गया? अरे राजा! मुझे बताओ, आपको योग के लिए किसने भरमाया और किसने योग की दीक्षा दी? किसने आपके हाथ में खप्पर (भिक्षा पात्र) थमाया? किसने आपको मोह जाल में फँसाकर योग धारण करने के लिए प्रेरित किया है?

भरथरी ने कहा– हे माता! मैंने असीम सुख भोगा है। हद ही पार कर दी। अतिशयता के कारण मेरा जीवन नष्ट हो गया। मुझे सच्चे गुरु मिल गए हैं। उन्होंने मेरी अज्ञान की पलक खोलकर ज्ञान का प्रकाश दिखाया है।

हे माता! यह देह तो कच्ची है। कांच के समान है। तनिक चोट लगते ही टूट जाएगी। इसके टुकड़े–टुकड़े बिखर जाएँगे। जोड़ने पर भी नहीं जुड़ सकेंगे। मैंने तो योग रमा लिया है। आप महलों से बाहर पधारो और हे माता! मुझे भिक्षा देकर विदा करो।

हे माता! मेरे हृदय में कामनियाँ बस गईं। उन पर आसक्त होकर मैंने भोग की अग्नि में स्वयं को जला दिया। अति भोग बहुत दुःख देने वाला होता है। मुझे स्वयं से एवं सांसारिक भोगों के प्रति घृणा हो गई है?

मेरे मन में ऐसी मादक माया बैठ गई थी कि मुझे कंचन काया भोग का रोग लग गया। इस कामना की माया से नारद जैसे ऋषि भी नहीं बच सके।

इस माया ने विश्वामित्र तक को बिलमा दिया। मैंने इस संसार को झूठी माया मान लिया है। मैंने माया की भोग अग्नि में स्वयं को जला डाला। मेरे स्वयं के हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। इसी समय मुझे पूरा ज्ञान सद्गुरु मिल गया। वे स्वयं अलख जगाने मेरे द्वार पर मेरा उद्धार करने आए। उन्होंने मेरी आँखें खोल दी हैं।

हे माता! आप मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा कर दो, यह योगी आपके द्वार पर खड़ा आपसे भिक्षा मांग रहा है। हे माता! भिक्षा देकर इसे धन्य कर दो।

महाराज भरथरी का दृढ़ संकल्प जानकर रानी पिंगला निराश होकर विलाप करने लगी। विलाप करते–करते पिंगला ने कहना शुरु किया– हे राजा भरथरी! आपने अच्छा किया (व्यंग), नदी को नाव में भरने जैसा आश्चर्यजनक एवं असंभव काम किया है। यदि आप मुझसे विवाह नहीं करते तो मैं अपने बाप के घर–आँगन में रहकर अपना समय बिता लेती। व्रत–त्योहार करती। पूजा–अनुष्ठान करती। कंदमूल आहार करती और पानी की छोटी–छोटी मटकियाँ भर–भरकर भगवान शिव को स्नान करवाती, उनका श्रृँगार करती। इस प्रकार अपना कौमार्य सुरक्षित रखती हुई जीवन बिता लेती।

आपने विवाह मंडल क्यों सजवाया? चँवरियाँ क्यों सजवाई? सप्तपदी क्यों करवाई? हे महाराज भरथरी! आपने यह खूब छल किया।

मैं अपने सत्य की रक्षा कर लेती । माता गौरी को साक्षी बनाकर पीपल–तुलसी पूज लेती, खेतों में पक्षी तोते आदि उड़ाकर खेतों की रखवाली कर लेती और अपना जीवन बिता लेती। आपने छल की माया रचाकर मेरी काया क्यों भटकाई? हे राजा भरथरी! आप अपनी करनी पर तनिक विचार करो। आपने चौबीस रानियों से विवाह किया। रखेलियों की तो भरमार कर ली। इनके अलावा पाप की कई नारियों को भी महलों में रख लिया। यथा अपहृत नारियाँ या युद्ध में जीतकर लाई नारियाँ। आपने इतने अत्याचार किए। आपको भोग की ऐसी लालसा रही जो कभी तृप्त नहीं हुई। आपने वही किया जैसा आपका मन चाहा। अपने मनमाने कृत्यों से आपने अपनी काया को भोग–अग्नि में जला डाला। इस प्रकार नर्क की व्यवस्था कर ली। हे राजा भरथरी! आपने ऐसी वृत्ति क्यों धारण की? इस प्रकार आपने अपयश क्यों कमाया?

आपने फूलों के हार–गजरे गूँथकर नारियों का श्रृँगार किया। चंदन घिस–घिसकर नारियों के उरोंजों को सजाया। उनकी काया चंदन चर्चित करते रहे।

हे राजा भरथरी– अंगराग, फूल और चंदन तो शिव और गौरां के अंग पर सुशोभित होना चाहिए। आपने तो कच्ची नश्वर देह पर चंदन सजाया और पुष्प–श्रृँगार किया। ऐसा पाप आपने अपने हृदय में धारण किया। आपको अपने यौवन का अभिमान बना रहा। काया का गुमान तो व्यर्थ होता है। आपने कभी नहीं विचारा कि जैसी करनी होगी वैसी भरनी भी होगी।

हे राजा! आपने अपना धर्म ही भुला दिया। आपने ऐसा खोटा कर्म क्यों निर्धारित किया? हे राजा भरथरी! गणिका पिंगला की कोई भूल नहीं है। आपने भरोसा किया।

वह भरोसा ही कच्चा था। उस कच्चे भरोसे की चूल हिल गई। यह तो होना ही था। सत मत के माथे पर धूल पड़ेगी, अर्थात् सत्य का अपमान हुआ। इसमें भी आप ही दोषी हैं।

पिंगला गणिका तो धन्य है, जिसने आपके प्रेम की सदा भरपाई की। उसने तो अपना गणिका धर्म निभाया, सत्य का पालन किया। गणिका धर्म ही उसका जीवन धर्म था। वह तो स्वयं ही सत्य दृढ़ हो गई। हे राजा भरथरी! आपने जो भी किया, बिना विचारे किया। मेरा क्या दोष? मेरा जन्म क्यों नष्ट करना चाहते हैं ?

हे भरथरी महाराज! आपने सूर्य की ओर थूकने जैसा पाप किया। यह दुस्साहस आपको ही पाप कर्म में लिप्त कर गया। स्वयं थूका जैसे स्वयं पर ही पड़ता है, वैसा आपने किया और भोगा। पाप तो श्वान जैसा होता है, वह व्यर्थ ही भौंकता रहता है। आपने स्वयं पाप का रोपण किया, पाप ही उगा। आपको भोग का रोग लग गया था। अब आपने योग की तैयारी कर ली। आप पर चारों ओर आपका पाप ही आपदा बन गया, तब आपको विरक्ति मार्ग सूझा।

हे महाराज! आपने सदा घी से अग्नि बुझाने का ही काम किया। अब जब आप तन और मन से थक चुके हैं। आपकी तरुणाई भी समाप्त हो चुकी है। भोगों को भोगने की क्षमता समाप्त हो गई, तब आप रानी को (पत्नी को) माँ कहने आ गए।

नारी विष की तरोई–बेल है। इसे आपने ही विषैला बनाया। तरोई बेल सभी कड़वी नहीं होती। हम कड़वा बीज बोएँगे तो कड़वी बेल उगेगी। रूप नागिन जैसा होता है। आप नारी के नयन बाणों से घायल हुए। सारा तन छिन्न–भिन्न हो गया।

आपने नागिन को अपने अंगवस्त्र में बसा लिया। अरे राजा भरथरी! आपने पाप की कमाई की। पाप कमाया तो पाप ही भोगना पड़ेगा। जैसा किया वैसा भोग रहे हैं। यह आपका विपरीत धर्मी कर्म है। ठीक वैसे ही जैसे कोई नदी को नाव में भरना चाहे। ऐसा करने पर उसे नाव सहित डूबने से कौन और कैसे बचा सकता है?

हे महाराज भरथरी! आपने खूब योग धारण किया। आज आपको योग कैसे सूझ पड़ा? आपने सेली सिंगी सजा ली। आप ऐसे विश्वासघाती हो गए। कौन है आपके गुरुजी, जिन्होंने आपको भटका दिया है? उन्हें मेरे समक्ष लाइए। हमें भी उनके दर्शन करवाइए। उनसे दो चार बातें करने का अवसर मिल जाए। उनसे पूछे कि यह अत्याचार वे क्यों करना चाह रहे हैं?

मैं पूछती हूँ यदि योग ही धारण करना था, तब अपने महलों में रानियों को क्यों भरा? क्यों इकट्ठा की ऐसी छल की छाया? क्यों छायी जिससे न शीत से बचा जा सके न धूप से न वर्षा से? हे महाराज! ऐसा छल आपने क्यों किया? इसका उत्तर दीजिए फिर आपको भिक्षा मांगने का अधिकार मिलेगा।

रानी पिंगला के आक्रोश और खरी–खरी बातों को सुनकर भी महाराज भरथरी शांतचित्त बने रहे। उन्होंने धैर्य रखकर रानी से भिक्षा की प्रार्थना की।

हे रानी पिंगला! आप मुझे शिक्षा मत दो। तुम्हारा आक्रोश भी उचित है। मैं दोषी हूँ। मैंने अपने कर्म में आगा–पीछा नहीं विचारा। मुझसे बहुत भयानक भूल हुई है। हृदय में टीस है। आप बीते हुए समय पर विचार मत करो। आप तो मुझे चार मुट्ठी ज्वार भिक्षा में देकर धन्य कर दो। यह योगी आपके द्वार पर खड़ा भिक्षा हेतु अलख लगा रहा है। यह योगी चिमटा बजा–बजा कर भिक्षा के लिए आग्रह कर रहा है।

मैंने दुर्भाग्य से भोगों को भोगा है। मैंने घी से आग बुझाने का मूर्खतापूर्ण कार्य किया है।

सद्गुरु ने मुझे पूरी तरह जगा दिया है। उन्होंने मुझे 'अलख' का मधुर राग प्रदान किया है। मैंने योग धारण कर लिया है। हे रानी पिंगला! मुझे भिक्षा दे दो।

भरथरी की तर्कपूर्ण बातें सुनकर तथा धैर्य देखकर रानी पिंगला ने उन्हे कहा– हे राजा भरथरी! आपको तो सच्चा गुरु मिल गया। आपके हृदय में प्रकाश हो गया, किन्तु मेरा मंदिर तो सूना हो गया। मेरे जीवन आकाश में घोर अंधकार भर गया। हे राजा भरथरी! मैं आपको भिक्षा कैसे दूँ? मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया।

हे रानी! आप अपने घट में झाँककर देखो। घट के भीतर प्रकाश झलमला रहा है। वहाँ अंधेरा नहीं है। भौतिक सुख का विचार त्याग दो और मुझे भिक्षा दे दो।

भरथरी की भिक्षा की जिद सुनकर रानी ने कहा–हे भरथरी! मेरी बाली उम्र है। युवावस्था परवान पर चढ़ रही है। आप ऐसी अवस्था में मेरे साथ छल करते हुए योग धारण कर रहे हैं। आप कौन से जन्म का बैर निकाल रहे हैं ?

हे भरथरी राजा! एक पुत्र भी यदि गोद में होता तो मैं संतुष्ट रह जाती। मैंने एक पुत्र भी गोद में नहीं खेलाया। अपने बेटे को दूध नहीं पिलाया। मेरी रेशम कंचुकी मेरे ही दूध से एक बार भी नहीं भीग पाई। मैंने अपने पुत्र को आंचल में लेकर बत्तीसधार दूध तक नहीं पिलाया।

हे राजा भरथरी! आप यह योगी वेश उतार दो और महलों में पधारो। मुझे एक पुत्र का पुरस्कार दे दो। फिर मैं आपको भिक्षा दे दूँगी।

रानी की बात सुनकर भरथरी ने व्यवस्था देते हुए कहा– हे रानी! आप भाई के बेटे को गोद ले लेना। उसे अपना उत्तराधिकारी बना लेना। मुझे भिक्षा देकर विदा करो।

हे महाराज! पुत्र तो वही होता है जो अपनी कोख से पैदा हो। पराए पुत्र की आस तो झूठी होती है। पराया पुत्र तो स्वार्थ का सगा होता है। उसका विश्वास कैसे किया जा सकता है? हे योगेश्वर! सब झूठे झगड़े हैं। क्या पता कब दगा दे जाये।

हे राजा! आप यह जोगिया वेश उतारकर उज्जैनी का राज करो। मेरे साथ सेज पर आनंद भोगो। आप मेरी इतनी सी बात मान लो। तब मैं आपको अवश्य मुटठी भर ज्वार दूँगी।

हे पींगला रानी! यह धन और योवन तो अतिथि हैं। हे माता! ये कभी भी साथ नहीं आते। मर जाने पर माता तो जन्म भर रोती रहेगी। बहन वार–त्योहार पर रोएगी। हे माता! घर की पत्नी चार दिन रोकर चुप हो जाएगी।

हे राजा भरथरी! मुझे लगता है आप पागल हो गए हैं या फिर भाँग खा ली है। घर की औरत को माता कहकर पुकार रहे हैं। इस प्रकार नरक का पाप कमा रहे हैं।

हे राजा! ऐसा कैसा आपका गुरु है? कैसा निर्धारण किया है? हे राजा भरथरी! आप अपने इस योग नशे से मुक्त हो जाओ। तब मैं आपकी मुटठी भर ज्वार की भिक्षा दूँगी।

रानी की बात सुनकर भरथरी ने उसे समझाकर कहा– हे रानी! न तो पागल हुआ हूँ और न भांग का नशा किया है। मेरी नशे की आँखें तो सद्गुरु ने खोल दी है। भोग का मादक नशा उतर गया है। मोह के बंधन टूट गए है। मैं पूरी सुध–बुध में हूँ। मुझे भिक्षा दे दो। –

महाराज भरथरी और रानी पींगला में खूब वार्तालाप हुआ। रानी महाराज पर खूब खीजीं। खूब प्रश्न किए। खूब विलाप किया। कूँज पक्षी की भाँति खूब कल्पती रही। खूब कोप भी दिखाया। भरथरी ने धैर्यपूर्वक रानी के तीखे–कड़वे, कसैले वचन सुने। अतार्किक प्रश्नों को शांत मन से सुनकर उन्हें सुलझाने का प्रयत्न भी किया। रानी के पास मन की व्याकुलता थी। पति वियोग की पीड़ा थी। भविष्य के अंधकारमय, निराशाजनक जीवन का असहनीय दर्द था और था आयु का असुरक्षाभास।

भरथरी के धैर्य और दृढ़ संकल्प ने रानी पिंगला को असहाय कर दिया। मन–बेमन से वे सहमत होती दिखीं। उन्होंने भारी मन से कहा– हे महाराज भरथरी! मैं आपको भिक्षा देने के लिए तत्पर हूँ। फिर भी मेरी बातों का उत्तर तो आपको देना होगा।

आपने अत्यंत चावपूर्वक एवं उमंगपूर्वक मेरे साथ तब विवाह क्यों रचाया था? क्यों रीते और व्यर्थ के सपने दिखाए थे? मेरे साथ मेरी तेरह वर्ष की बाल्यावस्था में विवाह रचाकर मेरा जीवन क्यों नष्ट किया? मेरे पिता को झूठे भरोसे में लेकर मेरे साथ छल क्यों किया? क्यों मेरा जन्म और कौमार्य नष्ट किया?

मेरी इन सब बातों का उत्तर दो। हे राजा भरथरी! ऐसी नाश वृत्ति क्यों अपनाई थी? मेरी काया को अपवित्र करके अब मेरी नाव को अधबीच भँवर में क्यों छोड़ रहे हो? क्या यह कार्य नदी को नाव में भरने जैसा स्वयं को नाव सहित डुबाने का मूर्खतापूर्ण कार्य नहीं है।

रानी पिंगला! बार–बार राजा को कोस रही थी। भरथरी के पास क्षमा मांगने के अलावा कोई मार्ग नहीं था।

हे रानी पिंगला! मैं बार–बार आपसे क्षमा माँगता हूँ। जब जागे तब सबेरा जानना चाहिए। मैंने अब अपनी गति और मति को जान–समझ लिया है। आज मुझे ज्ञान का बोध हुआ है। आज मुझे पारख बोध हुआ है। हे माता! मुझे भिक्षा देकर कृतार्थ कर दो।

हे माता पिंगला! आप मुझे शिक्षा तो खूब दे चुकी, अब दीक्षा हेतु भिक्षा दान भी दे दो। मुझे सच्चा गुरु मिल गया है। उन्होंने मुझे तारक ज्ञान दे दिया है। हे रानी पिंगला! हे माता पिंगला! यह योगी कबसे तुम्हारे द्वार पर भिक्षा की गुहार कर रहा है। इसे भिक्षा देकर धन्य कर दो।

अन्ततः धैर्य और संकल्प की विजय हुई। रानी पिंगला भिक्षा देने के लिए सहमत हो गईं। उन्होंने कहा– हे राजा! नियम की भिक्षा प्राप्त कर लो। योग रमा लो। मेरी सहमति और सुमति स्वीकार करो। सिंगी और सैली को बनाए रखना। चित्त में सत्य की ढाल और धैर्य मजबूत बनाए रखना। नगर, गाँव त्यागकर वन के पार जाकर तपस्या करना। गुरु की शरण मजबूत रखना। वे ही संसार सागर से पार उतार सकते हैं। गुरु कृपा से ही पार उतर पाओगे।

यह आपका नया जन्म होगा। इस पहले जन्म को भूल जाना। मैं तो मझधार में

डूब रही हूँ, आप तो भवसागर से पार उतर जाओ। लो अपनी इच्छा के अनुसार दो मुट्ठी ज्वार की भिक्षा प्राप्त करो। भोग की इच्छा मर चुकी है। हे राजा! योग की इच्छा प्रबल उठी है। जाओ जोगी, जाओ अपने सत्मार्ग पर जाओ। वन में जाकर योग रमाओ। तपस्या करो। अपने सद्गुरु की शरण में जाओ। आपने जो भी किया, उचित ही किया। नाव को नदी में तैरा लिया।

आपने भोग भोगते समय कोई विचार नहीं किया। यदि सीमा और मर्यादा में भोगों को भोगें, तब सुख देने वाले होते हैं। वे ही भोग अतिचार में व्यभिचार कहलाते हैं। जो भोग मर्यादा की सीमा से बाहर हो जाते हैं, वे रोग कहलाते हैं। भोगों की अतिचारिता या तो निर्लज्ज कर देती है अथवा योग की ओर प्रवृत्त कर देती है। आपके साथ भी यही हुआ। आप निर्लज्जता के बजाय योग मार्ग पर प्रवृत्त हो गए। यह कोई पुण्य फल और गुरुकृपा है।

हे योगीराज भरथरी! हे राजा भरथरी! मैं मन मृग को वश में करते हुए किन्तु दोनों नेत्रों से गंगधारा बहाते हुए आपको योग मार्ग पर प्रस्थान की स्वीकृति देती हूँ। हे जोगी! आप अपनी मंजिल पर पधारो।

जब तक यह सूर्य चन्द्रमा रहेगा– हे योगी! तब तक आपका नाम अमर रहेगा। हे योगी! जहाँ भी आपके चरण पड़ेंगे, वह स्थान तीर्थधाम स्थापित हो जायेगा। ऐसा कहकर रानी पिंगला ने भरथरी को दो मुट्ठी ज्वार भिक्षा देकर विदा कर दिया।

अपनी तीसरी रानी पिंगला से भिक्षा ग्रहण कर राजा भरथरी महलों को त्यागकर वन प्रान्तर में साधना हेतु प्रस्थित हो गए। उनके मोह के तार टूट गए। अन्तर्मन में जागृति हो गई। वे अपने सद्गुरु की शरण में गए। चरणों में धोक लगाई। सद्गुरु ने उन्हें आशीर्वाद देकर मुद्रा योग (योग मुद्रा) का ज्ञान प्रदान किया।

हे योगी भरथरी! जाओ और पर्वतों की गुफा में जाकर ध्यान लगाओ। अलख का ध्यान लगाने पर ही जगत का मोह टूटेगा।

सद्गुरु की आज्ञा पाकर भरथरी वन में जाकर एक गुफा में ध्यानस्थ हो गए। भरथरी ने एक वर्ष तक उस गुफा में बैठकर सहज समाधि लगाई। उनका ध्यान बार–बार भंग हो जाता था। मन बार–बार भटकता था। उन्हें बार–बार अपना अतीत स्मरण हो आता था। अतीत की स्मृति होते ही मन–चित्त भटकने लगता था।

कहा गया है समाधि के लिए पहले मन को वश में करना होता है। मन को वश

में करने के पश्चात् ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में किया जा सकता है। पाँचों इन्द्रियाँ जब वश में हो जाती हैंश तब दसों कर्मोन्द्रियों को वश में करना अधिक कठिन नहीं होता। इस प्रकार जब इतनी साधना पूर्ण हो जाती है, तभी सहज समाधि लग पाना सहज हो सकता है।

भरथरी ने मन को वश में करने का बार–बार यत्न किया, किन्तु वह प्रत्येक बार विचलित होकर उनकी ध्यानावस्था को भटका देता था।

जब राजा भरथरी अपनी रानियों से योग हेतु सहमति प्राप्त कर और भिक्षा एवं गुरु दीक्षा लेकर साधना हेतु समाधि लगाने में उद्यत हुए, तब बार–बार मन भटक जाता था। उनके इस भटकाव को महलों में साधनारत रानी पिंगला ने जान लिया। वे जान गईं कि योगीराज मेरे मोहपाश से मुक्त नहीं हो पा रहे। उन्हें अतीत भटका रहा है।

पिंगला रानी महलों में रहकर भी सिद्ध हो गई थी और भरथरी एकान्त गुफा में बैठकर भी मन के भटकाव के कारण सिद्ध नहीं हो पा रहे थे। साधना के लिए केवल एकान्तवास आवश्यक नहीं होता। मन का एकान्तवास भी आवश्यक है। भरथरी की व्याकुलता जानकर पिंगला रानी महल से चल पड़ी और भरथरी के साधना स्थान पर जा पहुँची। उसने अपनी साधना रोक दी। भरथरी की साधना को प्रशस्त करने का संकल्प ले लिया। गुफा के द्वार पर पहुँचकर उसने अलख–अलख का नाद करना शुरु कर दिया। हे योगी भरथरी! मेरी अलख निनाद को सुनो और तनिक समाधि से मुक्त हो जाओ।

अलख–अलख की ध्वनि गुफा के भीतर तक पहुँचने लगी। गुफा बहुत गहन थी। अलख निनाद भीतर जा पहुँचा। गुफा में नाद का निनाद होने लगा। योगी भरथरी बार–बार विचार करने लगे। किसने अलख लगाकर मेरी समाधि भंग की है? कौन है जो बार–बार अलख–अलख का नाद कर रहा है?

यह वाणी तो जानी पहचानी सी लग रही है। गुफा में निनाद गूँजने लगा था। तभी उनके कानों पर शब्द गूँज गए। हे जोगी! गुफा से बाहर तो पधारो। बाहर खड़ी पिंगला अलख लगा रही है।

पिंगला की पुकार सुनकर भरथरी गुफा द्वार पर आए। वहाँ खड़ी योगिनी वेशधारी पिंगला रानी को देख भौचक हो उठे। पिंगला ने शांत स्वर में कहा हे योगीराज सुनो– आपने इड़ा को साध लिया, सुषुम्ना को साध लिया, किन्तु पिंगला को अभी भी

आप नहीं साध पाए। आपका मन भटक रहा है। आप समाधिस्थ नहीं हो पा रहे। आपकी साधना का क्रम त्रुटिपूर्ण था। पहले इड़ा और पिंगला साधना होती है। तब सुषुम्ना अर्थात् बंकनाल त्रिकुटी तक पहुँचकर और उसमें से सहस्त्रार अमृत झरने लगता है। सुषुम्ना के जागरण से ही कुंडलिनी जागृत होती है। तभी अनहद नाद बजने लगता है।

अनहद नाद की मधुर ध्वनि सुनते–सुनते सहज समाधि लग जाती है। मन के स्थिर होने पर ही सहज समाधि लग पाती है। आपका मन स्थिर नहीं हो पा रहा। समाधि लगते ही बाहर का जगत और उसके समस्त विकार बिसर जाते हैं। जीव दस द्वारों में भटकना छोड़कर स्थिर हो जाता है। गंगा–जमुना और सूर्य–चन्द्र, इड़ा और पिंगला ही जानिए।

जब सहस्त्रार झरने लगती है, तब तन–मन अमृत रस से सिक्त हो जाता है। यही आनंदानुभूति पाने के लिए जोगी कुण्डलिनी जागरण करते हैं। भीतर घट में उजाला हो जाता है। अज्ञान समाप्त हो जाता है, तमस दूर हो जाता है।

आपने सबसे पहले उसे साधा, अर्थात् योग स्वीकृति हेतु उसे समहत किया। फिर दूसरी रानी इड़ला (इड़ा) को सहमत किया और अंत में पिंगला को समहत करने का प्रयास किया। इसी सहमति (साधना) में आपसे चूक हो गई। आपको पहले इड़ा और पिंगला को सहमत करना था। सुषुम्ना तो स्वयं ही सहमत हो जाती।

आपका गुरु कच्चा है। यह मैं समझ गई हूँ। इसी कारण आप समाधि नहीं लगा पा रहे। आपका मन बार–बार भटक जाता है। मन स्थिर होगा, तभी तो समाधि लग पाएगी। मन की स्थिरता ही सहज समाधि कहलाती है।

यदि आपने पिंगला को पूर्णतः सहमत कर लिया होता, तब आप सिद्ध योगी हो जाते। आप गुफा से बाहर पधारो। पिंगला स्वयं आपके द्वार पर आई है। उसे साध लो। अब पिंगला न तो महलों में (राजमहल में) रह सकती है, न बाप के घर जा सकती है। वह भटक रही है। व्याकुल है। उसे दीक्षा देकर सहज बना दो। अर्थात् उसे भी सहज भाव से सहमत (साध) कर लो। तभी आपकी समाधि सफल हो पाएगी।

आप अपने हृदय के तार पक्के कर लो। चित्त में स्थिरता लाओ। पिंगला के मोह से मुक्त हो जाओ। आज तक न तो आप पिंगला के मोह से मुक्त हैं, न मैं पिंगला आपके मोह से मुक्त हूँ। दीक्षा ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगी।

इतना कहकर पिंगला मौन हो जाती है और योगी भरथरी ने साधना गुफा के द्वार से बाहर आकर रानी पिंगला को मन ही मन प्रणाम किया। भरथरी का ऊहापोह समाप्त हो गया। उन्होंने पिंगला को वापिस महलों में लौट जाने का आग्रह किया।

भरथरी का आग्रह सुनकर पिंगला ने उनसे कहा– हे योगीराज! अब मैं न तो महलों में लौट सकती हूँ और न पिता के घर जा सकती हूँ। आप पिंगला नार (योग की पिंगला) की साधना करो। आप मुझे योग की दीक्षा देकर मेरा योग मार्ग प्रशस्त कर दो। मेरे योग धारण कर लेने पर मेरा भी उद्धर होगा और आपकी साधना का क्रम ठीक हो जाएगा। आप मेरी साधना करो। मुझे दीक्षा देकर संसार मोह से मुक्त कर दो। तभी आप मेरे मोहपाश से मुक्त हो पाएँगे।

हे योगी! आप हृदय के तार कठोर कर लो। उन्हें अच्छी तरह तान लो। तभी सहज समाधि लगा पाओगे। तभी इकतारा बजेगा। उसी की मधुर ध्वनि से आप समाधिस्थ हो सकेंगे। रानी पिंगला के आग्रह पर योगी भरथरी ने उसे दीक्षा प्रदान कर दी। दीक्षित होकर वह साधना हेतु प्रस्थित हो गई।

भरथरी के काल में तीन नारियों ने योग दीक्षा प्राप्त की। सबसे पहले गणिका पिंगला ने। उसे भी भरथरी ने स्वयं दीक्षित होने से पूर्व दीक्षित किया। वह स्वतःस्फूर्त योगिनी बनकर सर्वस्व त्याग तपश्चर्या हेतु चली गई। उसके पश्चात् विक्रमादित्य की रानी सतवंती ने भरथरी से दीक्षा प्राप्त की और सद्गुरु ने उसे 'मुक्ता' नाम प्रदान किया। तीसरी रानी पिंगला। इसे भी योग सिद्धि प्राप्त हुई और वह भरथरी से दीक्षित होकर तपश्चर्या हेतु सर्वस्व त्याग कर वन में चली गई ।

योगिनी पिंगला ने भरथरी के भीतर ज्योति प्रज्ज्वलित कर दी। रानी से जोगन बनी पिंगला तो वहाँ से चली गई थी, किन्तु उसका जोगिया वेश देखकर योगी भरथरी आश्चर्य चकित हो उठे थे। उसका मोह पूरी तरह समाप्त हो गया था। लेश मात्र भी शेष नहीं बचा था। वह सिद्ध हो गई थी। भरथरी को ज्ञान प्राप्त हो गया कि सिद्धि वन या पर्वत गुफा में बैठने तथा एकान्तवास से नहीं होती वह तो चित्त को एकान्त करने से ही सम्भव हो सकती है। रानी पिंगला ने और सतवंती ने महलों में रहते हुए सिद्धि प्राप्त कर ली और मैं एकान्त गुफा में रहकर भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सका। रानी पिंगला ने सुख और सुखधाम सब त्याग दिए। हृदय में किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं रह गया। मन पर अधिकार कर लिए। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और दसों कर्मेंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली। दोनों पिंगला तर गई। मैं भरथरी तो अभी भी मोहपाश बंधा अधर में लटक रहा हूँ।

भरथरी पुनः गुफा में गए। मन चित्त को स्थिर किया। उन्होंने अखण्ड समाधि धारण कर ली। अखण्ड समाधि में बैठे–बैठे युग–युगांतर बीत गए। समय का कोई आभास नहीं रहा। हृदय के भीतर जप का तार चल रहा था।

भरथरी ने पाँचों तत्त्वों को एकमेव कर लिया। देह काठ हो गई। वह काठ से पत्थर बन गई। उनके भीतर अजपा जाप चल रहा था।

ऐसा ही जाप माता अहिल्या ने किया था। उनको देह का भान तक भूल गया था। देह काठ और भाट हो गई। युग बीत गए तपस्या चलती रही। पिंजर मूर्तिवत् हो गया। भीतर मधुर तार बजने लगा। अनगिनत युग बीते, भीतर गंगा–यमुना बहने लगी। अमृत झरने लगा। तब राम–लक्ष्मण और विश्वामित्र वहाँ आए। राम जी ने अपना वरदहस्त उनके सीस पर धर दिया। उनके वरदहस्त से अहिल्या का उद्धार हो गया। उनके हृदय की अपराध कुण्ठा समाप्त हो गई।

उसी प्रकार योगी भरथरी भी साधनारत् हो गए। उनके भीतर भी नाद की झंकार होने लगी। गंगा–यमुना का निर्मल जल कल–कल प्रवाहित होने लगा। सहस्त्रार से अमृत झरने लगा। त्रिकुटी का कपाट खुल गया। घट भीतर मुरली बज उठी। उसकी मधुर ध्वनि भीतर गूँजने लगी। सितार के माधुर्य से आनंदानुभूति हो उठी।

जैसा तप त्रेता में माता अहिल्या ने किया था, वैसा ही तप योगी भरथरी ने किया। वे अपराध बोध और स्वामी गौतम के क्रोध शाप से कुंठित हो गई थी। वे काठ और भाट (पत्थर) हो गई थीं, किन्तु उनके भीतर मुरति बज रही थी। सुरती का सार जीवित और जागृत था। उन्होंने युगों–युगों तक घट के भीतर जाप किया। राम अलख का अवतार हुआ, तब उनकी सुरति पूर्ण हुई।

पहले नाथ तो महादेव जी हुए, फिर मत्स्येन्द्रनाथ हुए। उनके पश्चात् गोरखनाथ हुए। महादेव के बाद नाथ पद नंदी को प्राप्त हुआ। दूसरे नाथ गिरधर गोपाल कृष्ण हुए, उनके बाद तीसरे नाथ गोरख हुए। गोरख तो कई हुए। हर युग में गोरख हुए। जब–जब भी कोई मार्ग भटका, गोरख ने प्रकट होकर उसका उद्धार किया। महादेव से लगाकर भरथरी तक अनेक गोरख हुए। फिर भरथरी गोरख पद पर बिराजे। भरथरी गुफा में गोरख प्रकट हुए। उन्होंने भरथरी के शीश पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया। भरथरी धन्य हो गए। उनकी तपस्या सिद्ध हो गई।

सद्गुरु गोरखनाथ ने अपनी शक्ति का हाथ भरथरी के शीश पर रखकर अपनी लीला का सृजन किया। भरथरी समाधि से मुक्त हो गए। उनकी देह में गति आई।

उन्होंने आँखें खोल दी। सामने गोरखनाथ को खड़ा देख उन्होंने उनके चरणों में साष्टांग धोक लगाई। अलख–अलख का निनाद किया। तप भूमि गुफा नाद–निनाद से गूँज उठी। उन्होंने गोरख के समक्ष प्रार्थना की– हे मेरे सद्‌गुरु! मैं धन्य हो गया। आपने मुझे दर्शन दिए। मुझ पर ऐसी ही कृपा बनाए रखना। सदा सहाय बने रहना।

दोनों नाथों का मिलन हुआ। यह अजब योग था। उनमें न तो कोई गुरु था, न कोई चेला था। दोनों नाथ जगत के कल्याण हेतु प्रकट हुए। एक पहले अवतरित हुए। दूसरे ने उनके अवतार को जानकर अवतार लिया। जिस प्रकार पहले परशुराम ने अवतार धारण किया, फिर उन्हीं के काल में श्रीरामजी ने भी अवतार लिया। एक अवतार ने संसार के कल्याण का कार्यभार ग्रहण किया। दूसरा अवतार अपने धाम विश्राम हेतु चला गया। वे एक अंश के अवतार होकर भी भिन्न–भिन्न कारण अवतरित हुए। गोरख भी भगवान महादेव के अंश थे और भरथरी भी महादेव के अंश थे, जो एक समय प्रकट हुए। गोरख का कार्यकाल समाप्त हुआ, भरथरी का प्रारम्भ हुआ।

गोरख ने कहा– हे भरथरी! आप अब इस गुफा से बाहर निकलो। यह जगत बहुत दुःखी है, जगत कल्याण करो। ऐसा कहकर गोरख हाथ पकड़कर भरथरी को तुरंत गुफा से बाहर लाए। दोनों सिद्ध जगत उद्धार करने हेतु तत्पर हुए।

गुफा से बाहर आकर गोरख ने कहा– हे भरथरी नाथ! सुनो, मैं यहाँ सद्‌गुरु के आदेश से आया हूँ। आप उन्हीं के चरणों में भाव रूप से धोक लगाओ। आप अपने विचार से अपने मार्ग पर प्रस्थान करो। मैं अपने मत से अपने मार्ग पर प्रस्थान करता हूँ। फिर जब भी गुरु कृपा होगी, दुबारा मिलन होगा। जब तक यह सूर्य–चन्द्रमा है, तब तक– हे जोगी भरथरी! तुम्हारा नाम अमर रहेगा।

गोरख अपने पथ पर चले गए। भरथरी गुफा बाहर औचक खड़े रह गए। वे कहाँ खड़े हैं? यह भी भान नहीं हो रहा था। सब कुछ बदल गया था। युगों के बदलने पर संसार के दृश्य भी बदल गए थे। राजा कौन है? यह भी आभास नहीं था। वे आश्चर्य चकित होकर चारों ओर निरखकर यह निर्णय करने का प्रयास कर रहे थे कि वे कहाँ और कौन सी भूमि पर खड़े हैं? अन्ततः जब वे कुछ भी नहीं समझ पाए, तब उन्होंने अलख–अलख का नाद करना शुरु कर दिया। अपने चारों ओर न तो पूर्व जैसे वन देखे और न राजपथ, तब वे जान गए कि उन्हें तपस्या करते–करते कई युग बीत गए हैं। वे जब नगर की ओर बढ़े, तब उन्हें सब कुछ बहुत बदला हुआ लगा। अनेक जोगी नाथों का वेश धारण कर घर–घर भिक्षा मांग रहे थे। वे गोरख और भरथरी का नाम लेकर

तंत्र–मंत्र और जंतर के ढोंग रचाकर खोटे काम कर रहे थे। अलख–अलख का नाद करते हुए विचित्र–विचित्र स्वांग करते फिरते थे। डाकण और भूत का उपचार करते हुए बलि का निर्धारण करते थे। वे अलख के नाथ कहलाते और मसाण जगाते थे। गांजा, भांग और मदिरापान के साथ मांस भक्षण करते हुए विलासी एवं दुराचारी जीवन बिताते हुए जगत में क्लेश का वातारण बना रहे थे।

भरथरी ने कहा– ये तो नाथों की प्रतिष्ठा को धक्का और कलंक लगा रहे हैं। नाथ का अर्थ तो मालिक और स्वामी होता है। नाथ तो स्वामी का भी स्वामी माना जाता है। जो द्वार–द्वार भिक्षा मांगता फिर रहा हो, वह तो नाथ नहीं बल्कि अनाथ है।

न तो वे अलख को जानते हैं, न आसमान अर्थात् अज्ञान ब्रह्म को। झूठी समाधि का ढोंग रचाते हैं। नाथों के बताए मार्ग से भ्रष्ट होकर छल का जाल रचाते हैं।

ये सब छली जोगी रूपधारी पथभ्रष्ट अवगति को प्राप्त होंगे। भरथरी और गोरख दोनों महादेव के अवतार थे। दोनों ने अलख का दर्शन घट भीतर किया और अगम मार्ग पर प्रस्थित हुए। दोनों ने घट के नेत्र उघाड़ कर सत्य को जान लिया। दोनों धन्य हुए।

भरथरी के जीवन चरित्र के कई प्रसंग हैं। अनेक लोगों ने उन प्रसंगों को कथा–गीतों में लिखा– कहा और गाया है। मैंने भी नाथों के मुँह से उनके अद्‌भुत लीला चरित्र सुने। उनमें से एक यह भी है।

महाराजा विक्रमादित्य की एक रानी जिसका नाम सतवंती था, वह प्रतिदिन व्रत–पूजा और नियम–पूजा में अपना समय व्यतीत करती थी। उसके हृदय में सत्य का निवास था। वह यथा नाम तथा गुणवती थी। सतवंती प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में शिप्रा स्नान करती थी। शिप्रा स्नान करते समय ही वह सूर्य को अर्घ्य देती थी। फिर वह भगवान महाकाल के दर्शन करने के पश्चात् कालिका माता के दर्शन करने जाया करती थी। इसके बाद गायमाता की पूजा कर वह नर्मदा मैया का ध्यान लगाती थी। हरिसिद्ध के दर्शन के पश्चात् वह अपने सद्‌गुरु के दर्शनार्थ उनके आश्रम जाती थी। इतना सब नित नियम पूर्वक पूर्णकर सतवंती अपने राजमहल में लौट आती थी।

सतवंती बाल ब्रह्मचारिणी तपस्विनी थी। सदा मधुर वाणी बोलती थी, महल की सभी रानियाँ एवं स्वयं महाराज विक्रमादित्य उसका सम्मान करते थे।

उसने बारह वर्षों तक चन्द्र व्रत किया था। रात–दिन ओम् का जाप किया था। ऐसी व्रतधारी रानी सतवंती ने अन्न त्यागकर फलाहार का व्रत लिया और फिर फल भी त्याग दिए और दूधाहारी हो गई। उसने संसारी इच्छाओं का त्याग कर दिया और

महाकाल भगवान की अनुरागिनी हो गईं। वह धरती पर आसन बिछाकर शयन करती थी। अपने सभी कार्य वह स्वयं ही करती थी।

जब राजा भरथरी ने योग धारण किया, तब वह अत्यंत हर्षित हो उठी। उसने उनका अभिवादन किया। भरथरी प्रतिदिन रानी सतवंती के महल (द्वार) पर आकर अलख लगाते थे और भिक्षा की याचना करते थे। सतवंती भरथरी योगी को नित्य नियम से भिक्षा देती थी। योगी भरथरी उसकी कुशलक्षेम पूछकर चले जाते थे।

भरथरी अपने नेत्र झुकाकर रानी को आशीर्वाद देते थे। वे कहते– 'माता भिक्षा दो।' भरथरी समय नहीं चूकते थे।

करणहार की लीला तो स्वयं लीलाधारी ही जान सकते हैं। एक दिन योगी भरथरी भिक्षा हेतु नित्य नियमानुसार एवं समयानुसार रानी सतवंती के द्वार पर भिक्षा मांगने आए। उन्होंने अलख–अलख का उद्‌घोष किया। उन्होंने बार–बार कहा– हे सतवंती माता! भिक्षा दो। योगी द्वार पर अलख जगाता हुआ खड़ा है। योगी भरथरी ने बार–बार अलख लगाई, किन्तु सतवंती रानी भिक्षा लेकर बाहर नहीं आई।

रानी सतवंती सूर्यपूजा हेतु जलकुंड में खड़ी थीं। उनकी देह नग्न थी। वे आँखे बंद कर सूर्य का ध्यान कर रही थीं। ध्यानावस्था में उन्हें योगी भरथरी की अलख सुनाई नहीं पड़ी।

उन्हें जैसे ही अलख–अलख की नाद सुन पड़ी, वे तत्काल जलकुंड से बाहर निकली और उसी अवस्था में भिक्षा हेतु रखी सामग्री का पात्र उठाकर बाहर भागी। तब तक योगी भरथरी द्वार से आगे बढ़ गए थे। रानी भिक्षा सामग्री हाथों में उठाए उनके पीछे 'योगी रुक जाओ! योगी रुक जाओ!!' कहती हुई दौड़ने लगीं।

रानी की नग्न अवस्था जानकर योगी ने तत्काल पीठ फेर ली और आगे बढ़ते रहे। वे अलख–अलख का नाद करते आगे बढ़ते चले जा रहे थे और रानी 'योगी रुक जाओ' का घोष करती भिक्षा लिए पीछे दौड़ रही थीं। वह बार–बार कह रही थी– हे योगीराज! रुक जाओ। मुझे क्षमा कर दो। मेरे हाथ में भिक्षा है, उसे स्वीकार करो।

रानी के बार–बार पुकारने पर भी भरथरी नहीं रुके। भरथरी नहीं रुके तो रानी भी नहीं रुकी। सतवंती रानी ने तयकर लिया था कि मैं भिक्षा देकर ही वापिस महलों में लौटूँगी। वे कह रही थी– योगी मेरा और स्वयं का नित्य नियम भंग मत करो। आप तत्काल रुक जाओ। आपको भगवान महाकाल की आन है।

जब भरथरी बिना भिक्षा लिए तीव्रगति से अपने मार्ग पर आगे बढ़े चले जा रहे थे और रानी सतवंती उनके पीछे भिक्षा लिए दौड़ रही थी, तभी सिद्ध गुरुदेव सामने आ मिले। उन्होंने जब सारी स्थिति देखी, तब उन्होंने भरथरी को आदेश दिया –हे भरथरी! रुक जाओ। भिक्षा हेतु अलख लगाकर भिक्षा लेने से मना करना उचित नहीं होता। तुम तत्काल रानी से भिक्षा प्राप्त करो, अन्यथा वैराग्य भेष त्याग दो और पुनः सांसारिक हो जाओ। भरथरी रुक गए। उन्होंने सिद्धदेव से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि– हे प्रभु! माता नग्नावस्था में है। मैं उन पर दृष्टि कैसे डाल सकता हूँ । मैंने इसी कारण अपनी पीठ फेर ली है। मैं न तो रानी की उपेक्षा कर रहा हूँ, न भिक्षा की। यही मेरी विवशता है।

भरथरी का कथन सुनकर सिद्धदेव ने कहा– 'अरे योगी भरथरी! तुम्हें धिक्कार है। तुम कैसे सिद्ध हो? तुम्हें अभी भी देहभान है। अरे! तुम्हारी साधना व्यर्थ है। तुम्हारा देहा भान और सिद्ध होने का अभिमान व्यर्थ है।'

अरे भरथरी! यह रानी सतवंती धन्य है। उसे तो देहभान रहा ही नहीं, वह तो मुक्त हो चुकी है। इसी मुद्रा को तो मुक्ति कहना चाहिए। उसकी सभी ग्रंथियाँ खुल गई हैं। समस्त इच्छाएँ समाप्त हो गई हैं। वह परमहंस हो चुकी है। उसे तो केवल अलख का ही भान है। तुम उससे भिक्षा प्राप्त कर उसका मान रखो।

सद्गुरु सिद्धदेव की फटकार सुनकर योगी भरथरी को भान हो गया। उनके भीतर ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त हो उठी। उनका समूचा सिद्ध होने का गुमान गलकर बह गया। भरथरी की आँखों से अश्रु बहने लगे। भ्रम का रोग मिट गया। उन्होंने रानी सतवंती से भिक्षा ग्रहण कर कहा –'माता! आपसे भिक्षा प्राप्त कर यह भरथरी आज धन्य हो गया है।'

हे माता! आप अब वपिस अपने महल में लौट जाओ और अपने नित्य नियम का पालन करो। हे माता मुझे क्षमा कर दो। ऐसा कहकर भरथरी ने रानी सतवंती को नमन किया। उनके चरणों में अपना सिर रखकर बार–बार क्षमा याचना की।

भरथरी द्वारा भिक्षा ग्रहण करने लेने के पश्चात् रानी ने कहा मैं अब महलों में नहीं लौटूँगी। महलों का त्याग स्वतः हो गया है। मैंने वैराग्य धारण कर लिया है। आज दो सिद्धों का सत्य संयोग हुआ है। हे सिद्ध पुरुष! आप कृपाकर मुझे आशीर्वाद प्रदान कर दो। मैं सत्य धर्म पर अडिग रहूँ। ऐसे आशीर्वाद के साथ मुझे योग की भिक्षा प्रदान कर दो।

दोनों सिद्ध रानी का सत्यनिष्ठ भाव जानकर भाव–विभोर हो उठे। उन्होंने कहा– हे सतवंती! तू सत्य को अपने हृदय में धारण कर तथा समस्त ग्रंथियों से एवं इच्छाओं से मुक्त हो गई है। तूने परमहंस सत्यव्रत धारण कर लिया है। तुम्हारे चित्त में अलख विराजित है। इतना कहकर सिद्धों ने उसे आशीर्वाद प्रदान किया। आशीर्वाद देकर दोनों अपने–अपने मार्ग चले गए।

सतवंती सिद्ध हो गई। वह उसी क्षण से मुक्ता कहलाई। उसने सत्य विधान को धारण कर उसे अपना आराध्य बना लिया और हिमालय शैल में तपस्या करने चली गई। वह तपस्या करते–करते ब्रह्मवादिनी स्वरूपा हो गई । (लोक में यह भी मान्यता है कि उसके देह पर बहुत लम्बे रोम उग आए थे। शीश के बाल एड़ी तक लम्बे व घने हो गए थे। इसके फलस्वरूप उसकी देह लज्जा केश आवृत हो गई थी। यह प्रकृति माता की कृपा थी। उसने अपनी तपस्विनी पुत्री की लज्जा पर रोम–केश का आवरण चढ़ा दिया)। जब वे तपस्या हेतु जाने को उद्यत हुई थीं, तब स्वयं महाराज विक्रम वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने रानी सतवंती की पूजा–अर्चना की तथा विवाह बंधन से मुक्त कर निवेदन किया कि– हे देवी! आप तपस्या करने पधारो। करोड़ों वर्षों तक तुम्हारा यश बना रहे।

आपके कारण मालव धन्य हुआ है। यह उज्जैनी नगर भी धन्य हो गया है। जब तक सूर्य–चन्द्र हैं, तब तक आपका नाम अमर रहेगा।

महाराज गंधर्व सेन के वंश में गुणवंतों का नाम सदा जीवंत रहेगा। उनके वंश में यो तो सिद्ध योगी हुए या फिर महान सम्राट हुए हैं। सतवंती मुक्ता तथा पिंगला सिद्ध नारियाँ हुई हैं। इस वंश की सतियों ने सत्य धारणकर अपना यश सर्वत्र फैलाया है।

रानी सतवंतीबाई अपनी तपस्या और सद्‌गुरु की कृपादृष्टि के कारण मुक्ताबाई हो गई। भरथरी को मुक्ताबाई के संदर्भ से घट में जाग आ गई। उन्हें समझ में आ गया कि जब तक देह भान से मुक्ति नहीं मिलेगी, वैराग्य नहीं साधा जा सकता। इसके पश्चात् भरथरी ने सात बरस, सात मास और सात दिन तक पुनः निरन्तर तपस्या की। वे समाधिस्थ हो गए, तब उनका शरीर और मन स्थिर हो गया।

उन्होंने अपनी योगिनी पिंगला रानी के प्रबोध के कारण इंड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को साध लिया। उनके हृदय के भय और भ्रम मिट गए। त्रिवेणी के सधते ही सहस्त्रार से अमृत झर उठा। पाँचों तत्त्व अमृतमय हो गए। देह का भान समाप्त हो उठा। घट के भीतर ब्रह्मनाद की झणकार होने लगी।

जब तन और मन दोनों जोगी हो जाते हैं, तभी योग सध सकता है। रानी पिंगला का देह भोग का रोग इसी संयोग के कारण मिटा था। रानी पिंगला धन्य थी, जिसने तुरंत योग को साध लिया। उसने तत्काल सर्वस्व त्याग दिया। उसके सभी त्रिताप समाप्त हो गए।

रानी पिंगला ने पहले मन को जीता, फिर समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को वश में कर लेने के पश्चात् संसार के प्रति अनुराग भाव समाप्त हो गया। यदि इतनी साधना हो जाय, तब वैराग्य तो सध ही जायेगा। रानी पिंगला योगिनी पिंगला हो गई। वह धन्य हो गई।

भरथरी ने भी पहले मन पर अधिकार किया, फिर इंद्रियों पर। इस प्रकार वे इन्द्रियजीत हो गये। उनका हृदय निर्मल ओर सब भय समाप्त हो गया। हृदय की सभी ग्रंथियाँ खुल गईं। वह निर्ग्रंथी हो गया। तब जाकर उनकी साधना पूरी हुई। उनके अन्तर्घट में ज्ञान का प्रकाश फैल गया। उन्होंने अनेक ग्रंथों का सृजन किया। उनके शब्दों में प्रमाणिकता है। प्रत्येक शब्द अमृतमय होकर लोक कल्याण में उपयोगी हुए।

भरथरी सदा परदुःख भंजक के कल्याण मार्ग रहे। उन्होंने दुखियों के दुःख दूर किए। उन्होंने सदा सत्यधर्म की रक्षा की। जीवों पर दया का भाव रखते हुए अपने संदेश दिए। सतियों और जतियों की लाज और मर्यादा की रक्षा की।

भरथरी ने सदा अपने सद्गुरु की साक्षी लगाकर अपना लोक कल्याणी जीवन बिताया। महादेव का सदा मान रखा। गाय–ब्राह्मण की रक्षा में सदा सन्नद्ध रहे। उन्होंने कभी अभिमान नहीं किया। अभिमानी का पतन अवश्यंमभावी होता है। उसे शूकर और श्वान की योनी लेकर पुनः जन्म धारण करना पड़ता है। भरथरी सबके स्वामी हैं। वे नाथों के भी नाथ हैं। युग–युग में भरथरी इसी प्रकार अवतार लेंगे, जिस प्रकार गोरख युग–युग में अवतार लेते हैं।

योगी भरथरी घोर तपस्या में लीन हो गए। उनकी तपस्या से उनके सद्गुरु का मन तो अत्यंत हर्षित हो उठा, किन्तु इन्द्रपुरी (स्वर्गपुरी) में बैठे इन्द्र का मन व्याकुल हो उठा। वह उस व्याकुलता के कारण कभी भवन के भीतर जा रहे थे, कभी बाहर आ रहे थे। उन्हें कहीं भी चैन नहीं आ रहा था। उनके मन में इन्द्रासन छिन जाने का भय ऐसा पक्का बैठ गया था कि वे उससे मुक्त ही नहीं हो पा रहे थे। वे कभी तो क्रोध में मुट्ठियाँ कसते थे और कभी वज्र धारण करते थे। महर्षि दाधीचि की तापस अस्थियों से बना वह वज्र बहुत मजबूत था।

इन्द्र शस्त्रास्त्र धारण कर धरती पर गए और पागल की भाँति भ्रमित होकर इधर–उधर गुफा द्वार खोज रहे थे। उन्हें गुफा द्वार नहीं मिल पा रहा था। दिखता भी कैसे ? गुफा के चतुर्दिक अनगिनत सूर्य पहरा दे रहे थे। शेषनाग के अनेक दूत अपने–अपने फन फैलाकर फुफकार रहे थे। तभी आकाशवाणी सुन पड़ी– अरे इन्द्र! यदि अलख के दर्शन करना हो तो गुफा के भीतर जाओ। बाहर क्यों भटक रहे हो? भीतर जाकर अलख के दर्शन कर लो। गुफा के भीतर अलख का मधुर नाद बज रहा है। उसका आनंद भी प्राप्त करो। गुफा के भीतर अगम–निगम के दर्शन हो सकेंगे।

आकाशवाणी सुनकर इन्द्र आश्चर्यचकित हो गया। उसकी आँखें चौंधिया रही थी। गुफा मार्ग नहीं सूझ रहा था। वह उस माया का रहस्य नहीं जान पा रहा था। जिसने माया रची है, वही माया का रहस्य भी जान सकता है या फिर कोई प्रभु का भक्त ही जान सकता है, क्योंकि भक्त पर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। क्रोध और लोभ में बंधा अविवेकी इन्द्र तो कदापि नहीं जान सकता। क्रोध करने से बुद्धि का नाश हो जाता है। फिर पछताने से क्या लाभ? इन्द्र न तो वापिस इन्द्रलोक जा पा रहा था और न गुफा के स्थल पर रुक पा रहा था। गुफा के भीतर भी तो वह नहीं जा पा रहा था।

तभी अचानक प्रकाश की चमक कुछ कम हो गई। उसे गुफा का द्वार दिखने लगा। इन्द्र ने गुफा के भीतर जाने का निर्णय कर लिया। भीतर जाकर इन्द्र ने देखा– भरथरी कमल पर विराजित हैं। वह एकदम स्थिर बैठे समाधि में लीन हैं। अटल समाधि में लीन भरथरी साक्षात् महादेव लग रहे थे। उनके चतुर्दिक अगणित सूर्यों का आभा मंडल दीपित था। उधर देखने पर आँखें चौंधिया जाती थीं। उनके मुख पर अद्‌भुत आभा ज्योतित थी। उनके मुख पर दृष्टि नहीं टिक रही थी।

इन्द्र गुफा भीतर की आभा देखकर अपनी सुध–बुद्ध भूल गया। उसे अपने तन का भान तक नहीं रहा। उसे यह भी स्मरण नहीं रहा कि वह गुफा में किस उद्देश्य से आया है? वह वज्र को हाथ में लिए मूर्ख–बांवरे की भाँति वहाँ खड़ा रहा। उनके हाथ में सिद्ध ऋषि–दाधीचि की अस्थियों से निर्मित अस्त्र था। गुफा की रक्षक शक्ति ने सिद्ध ऋषि का मान रखा। जब इन्द्र के हाथ से वह वज्र बेमानी अवस्था में धरती पर गिर पड़ा, तब वह वज्र सूर्य की भाँति चमक रहा था। उस पर फूलों की वृष्टि करते हुई गुफा की रक्षक शक्ति ने वज्र ऋषि की देह मानकर उसका मान रखा।

इन्द्र कसमसा उठा। उसकी देह थर–थर काँपने लगी। उसकी देह से पसीना टपकने लगा। ऐसा लग रहा था मानो वह वर्षा में भींग गया हो। वह घबराकर गुफा से बाहर निकलने के लिए भाग खड़ा हुआ, किन्तु उसे फिर गुफा द्वार दिखना बंद हो

गया। इन्द्र इधर–उधर दीवारों से टकराने लगा। वह घबरा उठा। बाहर कैसे जाऊँ? ऐसा विचार कर वह अत्यंत व्याकुल हो उठा।

देव को दया आ गई। देव तो दया की खान हैं। इसी भाव को देवत्व कहते हैं। जो दाता है, वही देवता है। देव भूलने वालों को क्षमा दान देते हैं। भटकों को दिशा ज्ञान देते हैं। अचानक एक भंवरा प्रकट हुआ। वह गुंजार करता हुए इन्द्र को मार्ग की ओर ले चला। इन्द्र गुफा से बाहर आ गया। इन्द्र की स्थिति वैसी ही थीख मानो कोई चौबे बनने की चाह लेकर जाय और दुबे बनकर लौटे। उसका उत्साह और उमंग जैसे ठंडी पड़ जाती है, उसी प्रकार इन्द्र भी निराश और हताश हो गया था। हाथ का वज्र गंवा कर वह गुफा के बाहर खड़ा था। उसकी दुर्दशा वैसी थी, जैसे कोई व्यापार करने जाय और गाँठ की मूल पूँजी भी गँवाकर वापिस लौट आए।

गुफा से बाहर आकर इन्द्र बहुत पछताने लगा, वह इन्द्रपुरी पहुँच गया। इन्द्रासन को देखकर उसके भीतर एक तीखी पीड़ा उठने लगी। उसे पक्का विश्वास हो गया था कि इन्द्रासन उससे अवश्य छिन जाएगा। उसके मन का धीरज टूट रहा था। वह इन्द्रासन पर डटकर बैठ गया और उसे मजबूती पूर्वक पकड़ लिया। उसने इन्द्रासन पर अपनी पकड़ कसते हुए कहा– भरथरी अवश्य ही इन्द्रासन पर अधिकार कर लेगा। इन्द्रपुरी के ठाठ समाप्त हो जाएँगे। जो भी व्यक्ति भरथरी के समान तपस्या करते हैं, वे अवश्य ही इन्द्रासन का अधिकारी हो जाते हैं। इन्द्र के मन में अनेक विचार आने–जाने लगे। कोई भी उसे धैर्य बंधाने वाला नहीं था।

इन्द्र स्वयं हार चुका था। चन्द्र और सूर्य भी हार चुके थे। अग्निदेवता और वायुदेवता भी हार चुके थे। वरुण देवता भी हार चुका था। कोई भी भरथरी की तपस्या भंग नहीं कर पाया था। भरथरी के दरबार में एक–एक करके सभी स्वतः पराजित हो गए थे। अप्सराएँ भी भरथरी की समाधि भंग नहीं कर पाई थीं। अप्सराओं की तो ऐसी दुर्दशा हुई कि वे कुरूप होकर जैसे–तैसे अपने प्राण लेकर भागकर वापिस लौटीं। वे लज्जित होकर स्वर्ग के द्वार पर बैठी रहीं। संकोचवश इन्द्र के समक्ष जाने का साहस तक वे नहीं जुटा पाईं। उन्होंने जैसे–तैसे पछताकर रोते हुए अपनी दुर्दशा की कथा इन्द्र को सुनाई।

जब सभी पराजित हो गए, तब इन्द्र का संताप और भी बढ़ गया। उसने कामदेव से कहा– हे कामदेव! तुम तुरंत जाओ और कामबाण द्वारा भरथरी की समाधि भंग करो। इन्द्र का आदेश सुनकर कामदेव काँप उठा। वह हाँ या न नहीं कह सका। वह जान गया कि दोनों स्थितियों में क्लेश होगा। पहले भी मैं समाधि भंग का संताप भोग चुका हूँ। महादेव के कोप से भस्म होकर अनंग बन चुका था। यदि मैंने भरथरी की

समाधि भंग की तो अवश्य ही मेरी दुर्दशा होगी। यदि मैंने इन्द्रदेव को मनाकर दिया, तब भी दुर्दशा होगी।

कामदेव डरता–डरता उज्जैन पहुँचा। गुफा के भीतर जाकर जब वहाँ का अद्‌भुत दृश्य देखा, तो मोहित हो उठा। जो स्वयं ही मोहित हो, वह भला भरथरी को कैसे मोहित कर पाता। कामदेव के हाथों से उनका मोहक धनुष छूट कर धरती पर गिर पड़ा। वह मोहवश सुध–बुध भूलकर बार–बार प्रणाम करता हुआ, जय हो....जय हो... का घोष करने लगा। उसके मन का संताप मिट गया। कामदेव अपने प्राणों की रक्षा करता हुआ गुफा से बाहर आ गया।

अपनी पराजय पर पश्चाताप करता हुआ वह इन्द्र के दरबार में पहुँचा और सारी घटना कह सुनाई। कामदेव की पराजय जानकर इन्द्र और अधिक व्याकुल हो उठा। वह अधीर हो उठा। हार की सूचना उसके हृदय में एक पीड़ादायक बाण की भाँति चुभ गई।

देवगुरु वृहस्पति ने इन्द्र को धैर्य बंधाते हुए कहा– अरे इन्द्र! सुनो। भरथरी की तपस्या इन्द्रपुरी प्राप्त करने के लिए नहीं है। वह भगवान महादेव का अंशावतार है। वह अपनी आत्मा के उद्धार के लिए साधनारत है।

उसके घट के भीतर समूचा ब्रह्माण्ड विद्यमान है। स्वयं ब्रह्म उसके घट में निवासित हैं। उसके हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल चुकी हैं। वह इन्द्रियजित हो चुका है। वह निर्भय हो चुका है। जिसने समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो, इन्द्रपुरी जिसके घट में बस रही हो, ऐसा तापस सिद्ध योगी जो जागते हुए भी संसार को नश्वर मानकर अपनी आँखें मूंदे अपने घट के भीतर स्थित ब्रह्म में लीन हो चुका हो। उसे आपके इन्द्रलोक और इन्द्रासन की क्या अभिलाषा?

ऐसा कहकर बृहस्पति जी इन्द्र और समस्त देवताओं को लेकर धरती पर आए और तप गुफा के भीतर ले गए। सभी देवता करबद्ध वृहस्पतिजी के पीछे–पीछे चल रहे थे।

भरथरी की तपोभूमि गुफा के भीतर की अनुपम छवि देखकर सबको ऐसा लगा, मानो किसी अद्‌भुत लोक में आ गए हों।

गुफा के भीतर भाँति–भाँति के फूल खिले थे। उनमें से मधुरी–मधुरी सुगंध आ रही थी। निरमल जल के अमृत झरने झर रहे थे। उन्हें देख–देखकर मन और नेत्र

हर्षित हो उठे। सूर्य–चन्द्रमा झलमल चमक रहे थे। उनकी शोभा का वर्णन शब्दातीत है। आकाश में तारामंडल झलमल हो रहा था। इस अजब लीला को समझना असंभव था। एक साथ सूर्य–चन्द्र और तारामंडल की उपस्थिति का दृश्य अनोखा था।

कमल पर भरथरी बैठे समाधिस्थ थे। वे त्रिकुटी में अपना ध्यान केन्द्रित किए अग–जग से अनभिज्ञ थे। उनके शीश पर शेषनाग फन फैलाए छाया छत्र बनाए था। पीछे ब्रह्मा, विष्णु, महेश खड़े मंद–मंद मुस्करा रहे थे। बायी ओर अछरा माताएँ हुलसित होकर आनंदित खड़ी थीं।

ऐसी छवि के साथ भरथरी समाधि में मग्न थे। वे घट के भीतर अलख जगा रहे थे। अलख निरंजन के नाद की मधुर ध्वनि गुफा में निनादित थी।

इन्द्र भरथरी की तपस्या गुफा का अद्‌भुत एवं मनोरम दृश्य देखकर अपनी सुध–बुध भूल गया। तापस भूमि के आलोक ने उसके हृदय की समग्र कालिमा स्वच्छ कर दी। वह तन और मन से निर्मल हो गया। उसके समस्त शोक–रोग मिट गए। वह धम्म से धरती पर बैठ गया। एक लम्बी आह उसके मुँह से निकल पड़ी। उसने आँखें बंद कर भरथरी का ध्यान लगाया, फिर उस साक्षात् शिव स्वरूप तपस्वी के समक्ष जाकर वंदन कर क्षमा प्रार्थना की। इन्द्र ने आर्तभाव से कहा– हे नाथ! मुझे मेरी धृष्टता के लिए क्षमा कर दीजिये। मैं दोनों हाथ जोड़कर आपके समक्ष क्षमा प्रार्थी हूँ ।

इस प्रकार अपनी भूल–चूक एवं धृष्टता हेतु क्षमा प्रार्थना करने के पश्चात् जब इन्द्र ने आँखें खोली, तब वह और भी आश्चर्यचकित रह गया। सारी लीला लुप्त हो गई थी। गुफा में भरथरी ध्यान समाधि में लीन बैठे थे। इन्द्र ने पुनः उन्हें साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया, फिर अपनी भूल–चूक के लिए क्षमा माँगी।

हे योगीराज भरथरी! आप धन्य हैं। आपके सद्‌गुरु भी धन्य हैं, जिनका आपके शीश पर वरदहस्त है। आपने संसार सागर से पार उतरने के लिये स्वयं महादेव को अपना सद्‌गुरु बनाया।

सद्‌गुरु नाथ की लीला का पार कोई नहीं पा सकता। मैं इन्द्र भ्रमवश आपकी परीक्षा लेता रहा और आपकी समाधि भंग करने का मूर्खतापूर्ण प्रयास करता रहा। मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी।

महादेव और भरथरी तो गुरु और शिष्य का श्रेष्ठ एवं पुण्य संयोग है। वृहस्पति जी ने इन्द्र को इस अद्‌भुत जोग का रहस्य बताया। देवगुरु से गुरु–शिष्य की महिमा

सुनकर इन्द्र के हृदय का भ्रम मिट गया। वह विनम्र होकर महादेव और भरथरी को धन्य–धन्य कहते हुए वंदन करने लगा। उसने कहा–जो आपके सिद्ध गुरु थे। जिन्होंने उन्हें अमृत छिड़ककर पुनर्जीवित किया था, फिर अमृत फल देकर संसार के छल जीवन का भान करवाया था, जिन्होंने उन्हें दीक्षित किया था, जिन्होंने मुक्ताबाई (सतवंती रानी) के संदर्भ में देहभान से मुक्त होने का आदेश दिया था सतवंतीबाई को मुक्ताबाई का नाम देकर तपस्या हेतु सहमति प्रदान की थी तथा साधना के मध्य सदा रक्षा–सुरक्षा प्रदान की थी, वे ही सिद्ध गुरु थे, वे ही महादेव का स्वरूप थे। वे ही इस प्रकार स्वयं महादेव ही भरथरी के दीक्षा गुरु थे। वे महादेव ही थे। महादेव की लीला सर्जना उनके सिवा और कौन जान सकता है?

भरथरी की गाथा तो अद्‌भुत है। मैं उसका बखान कैसे कर सकता हूँ ? मैंने जितनी भी गाथा सुनी है, उसे शब्दों में लिखकर प्रमाणित किया है।

मेरा नाम थावर खराड़ी है। (यह नाम व गोत्र भील समाज में होता है) मेरे गुरु का नाम मनरंगजी है। मैं भुवाई कलाकार हूँ। नंदलालजी भुवाई (नायक) मेरे उस्ताद (गुरु) हैं। मैं उन्हीं के साथ भुवाई खेल करता हूँ। आशाराम भुवाई (नायक) ने मुझसे यह गाथा सुनी और खेल तैयार किए। हमने बहुत से खेल रचाए हैं। उनका प्रदर्शन गाँव–खेड़ों में करते रहते हैं। यह शरीर तो नहीं रहेगा, किन्तु इन खेलों के कारण हमारा नाम अवश्य अमर रहेगा।

हमने जितने भी खेल रचे हैं, उनमें दो खेल बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। एक 'राजा हरिशचन्द्र तथा दूसरा 'धरती की हूर' (मांडव की रानी रूपमती)।

अब हमने ये दो खेल रचे हैं– एक 'भरथरी राजा' तथा दूसरा 'इन्द्र की हार' ये दोनों खेल हम तुरंत (शीघ्र ही) प्रदर्शित करेंगे। ये खेल भी (दोनों भरथरी प्रसंगों के खेल) अवश्य बहुत प्रसिद्ध होंगे। हम जहाँ–जहाँ भी भुवाई के इन खेलों का प्रदर्शन करें, आप वहाँ–वहाँ खेल देखने अवश्य आना।

टीप– भरथरी की गाथा के इस प्रसंग में एक विशेष बात उभरकर आती है, वह यह कि अब तक पूर्व में अलख जगाये राजा भरथरी में जिन तीन रानियों सुखमणा, ईंड़ा और पिंगला का उल्लेख हुआ है, वह वस्तुतः योग साधना की ओर इंगित करता है। योग साधना में सुषुम्णा, ईड़ा और पिंगला तीन नाड़ियों का उल्लेख प्रमुख रूप से आता है। रानियों के नाम प्रतीकात्मक हैं। इन्हें साध लेने के पश्चात् ही कुण्डलिनी जागृत होती है। कुण्डलिनी जागृत हो जाने पर साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

इस गाथांश के अनुसार तीनों रानियों में पटरानी सुखमणा (सुषुम्ना) थी। उससे छोटी रानी अर्थात् बीच की रानी इड़ला (इड़ा) और उससे छोटी रानी पिंगला थी। यही तीनों नाम योग साधना की नाड़ियों के कहे गए हैं। इन

नाड़ियों को साधने का एक निर्धारित क्रम है। पहले इड़ा और पिंगला को क्रम से अनुलोम–विलोम क्रिया से साधा जाता है। जब ये दोनों जागृत हो जाती हैं, सुषुम्ना अर्थात् बंकनाल जागृत होती है। कुण्डलिनी का उद्‌गम मूलाधार है। यहीं पर तीनों नाड़ियाँ कुण्डली मारे अपना मुँह दबाए स्थित हैं। इसी को सर्पिणी या शक्ति भी कहा गया है। इसके जागृत होकर सहस्त्रार में पहुँचने पर साधक को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसका मुँह प्राणायाम से ही खुल सकता है। इसके खुलते ही अनहद नाद बज उठता है। तभी यह सीधी होकर सहस्त्रार की ओर अग्रसर हो जाती है।

अनहद नाद जब सूक्ष्म होकर और मधुर होकर भ्रमर जैसा गुँजार करने लगता है, तब मन भी उसके साथ सहभागी होकर भ्रमरवत हो जाता है। यह सारी गतिविधि ब्रह्मरंध्र में होती है। इसी को भंवर गुहा कहा गया है।

यही स्थिति समाधि की कही गई है। सहज समाधि अर्थात् मन की स्थिरता। सहज समाधि की पूर्णता ही ब्रह्म समाधि कहलाती है। इस अवस्था में ही साधक को ब्रह्म ज्योति के दर्शन हो पाते हैं। तब साधक ब्रह्ममय हो जाता है। इसी अवस्था को ब्रह्म समाधि या सिद्धावस्था कहा गया है।

टीप– **अछरामाई–** अछरा माई अर्थात् सप्तमातृकाएँ। सप्तमातृकाओं के अंकन एक ही शिलापट्ट पर उकेरने का चलन कब प्रारम्भ हुआ, यह कहना कठिन है। गुप्तोत्तर काल में सप्तमातृकाओं का उल्लेख इधर मिलता है। इन सप्तमातृकाओं में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा हैं। दोनों ओर क्रमशः वीरभद्र तथा नृत्यरत गणेश प्रतिमा उकेरी जाती है।

लोकजीवन में उनकी पूजा का बहुत महत्त्व माना गया है। इन सप्तमातृकायुक्त शिलापट्ट को एकरूप मानकर इसे लोकमाता 'अछरामाई' कहा जाता है। अछरा का अर्थ होता है, जिसका कभी क्षरण नहीं हो सकता, जो सदा जीवन्त एवं जागृ रहकर शक्तिमान रहती है, ऐसी माता । यह ठीक भी है। इस 'अछरा माता' के शिलापट्ट पर जो माताएँ उकेरी जाती हैं, वे सभी अखण्ड शक्तियाँ होकर 'अछरा' हैं। एक साथ नौ देवी–देवताओं की पूजा का योग है। सात माताएँ व वीरभद्र सहित श्री गणेश की पूजा करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं एवं समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। ये सब माताएँ अपराजित मानी गयी हैं। अछरा माई के शिलापट्ट दशपुर जनपद में अनेक हैं। लगभग सभी खण्डित हैं व सब देवियाँ भिन्न–भिन्न स्वरूपों में पूजी जाती हैं। ये सप्तमातृकाएँ सात मनोभावों की प्रतीकात्मक शक्तिया मानी गई है। इनका उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। माहेश्वरी काम भावना की। वैष्णवी–लोभभावना की। ब्राह्मणी–मद भावना की। कौमारी–मोह भावना की। इन्द्राणी–इन्द्रियों पर अंकुश की। चामुण्डा–यज्ञ शक्ति की तथा वराही–असूया या ईर्ष्या भाव की प्रतीकात्मक शक्ति माता मानी जाती हैं। इन माताओं के वाहन भी निर्धारित हैं।

प्रेत संस्था तु चामुंडा, वराही महिषासना।
ऐन्द्रीगज समारुढ़ा, वैष्णवी गरुड़ासना।।
माहेश्वरी वृषारूढ़ा, कौमारी शिखिवाहना।
ब्राह्मी हंसमारूढ़ा, सर्वाभरण भूषिता।।

सप्तमातृकाओं (अछरा माई) के शिलापट्ट इस जनपद में हिंगलाजगढ़, इन्द्रगढ़, अनसर क्षेत्र, मोड़ी, घसोई, भानपुरा, धर्मराजेश्वर, पिलोद, ढाबला–महेश, पंचदेवल, रामनाथ, उगराण, ग्वालदेव्यास पीठ, कोठड़ी, जीरन आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। कहीं–कहीं माताओं के क्रम में परिवर्तन मिलता हैं तथा कहीं–कहीं संख्या में भी घट–बढ़ दिखलायी देती है। दोनों ओर शिव–शक्ति के वरदायी देवता वीरभद्र एवं पार्वती पुत्र गणपति जो रिद्धि–सिद्धि दाता हैं, उत्कीर्ण मिलतें है। ढाबला महेश में वीरभद्र के स्थान पर वेणु गोपाल उत्कीर्ण हैं।

ढोला–मरवण

लोक साहित्य काल की सीमाओं की चिन्ता किए बिना लोक में अपनी मान्यता स्थापित कर लेता है। बावजूद इसके वह न तो विस्मृत होता है और न विचलित। ढोला–मरवण का यह प्रेमाख्यान भी ऐसा ही है। आख्यान में ढोला को राजा नल का बेटा कहा गया है तथा उसी संदर्भ में उसकी माता का नाम दमयंती भी।

संभव है नरवरगढ़ का राजा कुँवर ढोला राजा नल का वंशज रहा हो। कभी नाम साम्य के कारण भी ऐसा हो जाता है। पाबूजी की लोकगाथा में पाबूजी लंका से सांडनियाँ लाते हैं। तब लंका का राजा महाबली रावण था। शोधों से पता चला कि गुजरात में लंका नाम का राज्य किसी समय था तथा उसके राजा का नाम रावण था। उसके पास सांडनियों के कई झुंड थे। समुद्र लांघन के संदर्भ सिंध नदी पार उतरने से हो सकते हैं। मारवाड़ में सबसे पहले सांडनियाँ (ऊँट पशु) गुजरात से आईं और पाबूजी लाए, ऐसी लोक मान्यता है। यह भी संभव है कि नरवरगढ़ भी कोई अंचल रहा हो तथा आज उस अंचल का नाम परिवर्तित हो गया हो। राजा नल की लोकगाथा में भी नल को नरवरगढ़ का राजा कहा गया है, उसके पुत्र का नाम भी ढोला कुँवर ही कहा गया है। नरवर की भौगोलिक स्थिति देखें तो वह शिवपुरी जिले का एक प्राचीन नगर है। ग्वालियर के अधिक निकट है। इसी संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि ग्वालियर के राजा मानसिंह की रानी मृगनयनी इसी नरवर की रहने वाली थी।

ढोला को नल का पुत्र बताना एक संयोग है। बहुत संभव है कि नरवर में कोई नल नाम का राजा हुआ हो। नाम साम्य के कारण उसे दमयंती का पति नल मानकर उसके साथ स्वाभाविक रूप से दमयंती का नाम भी लोक साहित्यकारों ने जोड़ दिया

हो। यह भ्राँति लोकमान्य हो गई। नल–दमयंती वाली एक गाथा में भी ढोला को राजा नल का बेटा बतलाया गया है। अब तक प्राप्त शोधों के आधार पर यह निर्धारित है कि नल–दमयंती वाली गाथा नरवर वाले ढोला–मरवण के राजा से भिन्न है। दमयंती के पति नल विदर्भ क्षेत्र के थे और ढोला के पिता नल ग्वालियर के निकट नरवर के राजा थे। जिस प्रकार अनेक विक्रमादित्य हुए, उसी प्रकार एकाधिक नल नामधारी राजा भी हो सकते हैं।

ढोला–मरवण की गाथा को पाँच सौ वर्ष तक प्राचीन माना जा सकता है, अर्थात् 16 वीं शताब्दी विक्रम के मध्य । ठीक–ठीक समय निकाल पाना सहज नहीं है। मेरा काम इतिहास पर न तो शोध करना है और न पूर्व किए गए शोधों की समीक्षा करना मैं तो लोक साहित्य का शोधार्थी हूँ। लोक से जो, जितना मुझे उपलब्ध हुआ है, उसे लोकार्थ पुनः लोक के सामने प्रस्तुत कर देना ही मेरा अभीष्ट है। शेष कार्य शोधार्थियों के लिए छोड़ा है।

राजस्थान प्रेमाख्यानों का सबसे बड़ा भंडार है। उसका मूल कारण वहाँ के राणाओं राजाओं, रावों, ठिकानेदारों की रसिकता भी है तथा लोक गायकों को प्रदत्त संरक्षण भी। यही स्थिति गुजरात की भी है। मालवा भी पीछे नहीं रहा।

ढोला–मरवण का प्रेमाख्यान मारवाड़, मेवाड़ या कहूँ समग्र राजस्थान, गुजरात, सिंध, पंजाब, ब्रज, मालवा और निमाड़ तक विख्यात है। थोड़े बहुत पाठ भेद से यह प्रेमाख्यान वहाँ की लोकभाषाओं में कहा–सुना जाता रहा है। आगे चलकर ढोला–मरवण का नाम प्रेमी–प्रेमिका के रूप में प्रयुक्त होने लगा। ढोला का विशेषण लगाकर अनेक गीत रचे गए। आज भी उन्हें रस लेकर गाया जाता है। एक दोहा बहुत प्रसिद्ध हैं–

दोहो सोरठियों भलो, भल मरवण री वात।
जुबना छायी गोरड़ी, ताराँ छायी रात।।

मरवण री 'वात' का अर्थ भी मरवण की कथा–गाथा एवं आख्यान से ही होता है। ढोला को पंजाबी में ढोल और ढोलणा कहकर अनेक गीतों, दोहरों में एक उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में गाया गया है। मरवण की भाँति विरहदग्ध युवतियाँ अपने प्रेमी को गीत के माध्यम से ढोल या ढोलणा कहकर संबोधित करती हैं तथा अपनी विरह व्यथा बखानती है–

पतणा ने तकाँ तैडी राह मिट्ठा ढोलणा वे।

पत्तण पर खड़ी–खड़ी हे मेरे मीठे (प्यारे) ढोलणा! मैं तुम्हारी वाट निहार रही हूँ।

जा–जा वे ढोलणा–तेडे नाल नईओ बोलणा।

प्रेमिका प्रतीक्षा करते थक गई। फिर प्रियतम आया, तब वह रुठ जाती है और कहती है– 'जा प्रियतम! तू वापिस चला जा, मुझे तेरे साथ बात ही नहीं करना है।

मालवी (दशौरी) में उपलब्ध मेरे संग्रह की यह प्रेम गाथा अन्य प्रचलित लोक गाथाओं के कथानक से समानता रखने के बावजूद अनेक कारणों से भिन्न भी है। इसे किसी भुवाई खिलाड़ी खेल करने वालों ने नाट्य के रूप में लिखा है। संवाद गायिकी और गद्य दोनों में हैं। इसके गाथाकार और रचनाकार का उल्लेख कहीं नहीं है। मैंने इसे रीछालाल मुँहो, तहसील/जिला–मन्दसौर में रहते हुए आशा राम नायक, नंदलाल नायक से सुना था। सन् 1967 में उन्होंने भुवाई का खेल गरोड़ा में किया था। मैंने वह खेल देखा भी था। आशाराम को पूरा खेल कंठस्थ था। नंदलाल को भी याद था। दोनों सगे भाई थे। आशाराम प्रतिदिन मुझे इस आख्यान के अंश लिखवाता था। वह रातभर उन्हें याद करता और प्रातःकाल मुझे सुना जाता था। जहाँ वह भूलता, अपने भाई नंदलाल से पूछ भी लेता था। इस प्रकार मैंने यह गाथा जितनी आशाराम को याद थी, लिख ली थी। बहुत दिनों तक यह मेरे संग्रह में रखी रही। महागढ़ तहसील–मनासा में मैं सन् 1970 में आया। मेरा परिचय मोहनलाल नायक भुवाई से हुआ। उन दिनों मैं 'दम्भ का विष' उपन्यास लिख रहा था। यह भी एक प्रेमकथा पर आधारित कथानक है। उस प्रेम कथा का अंत दुखान्त हुआ। ठिकाना जीरन और महागढ़ दोनों नष्ट हो गए। ठीक वैसे ही जैसे कौरव व पाण्डव नष्ट हो गए थे। उसी मध्य मोहनलाल नायक ने ढोला–मरवण की चर्चा की और कुछ अंश सुनाए। मैंने उन्हें भी लिख लिया, कालान्तर में मेरा परिचय संधारा के गुरुजी ठा. दलेलसिंहजी यादव (जादौन) से हुआ। उनके संग्रह तथा कंठ में लोक साहित्य का अखुट भंडार था। वे ढोला–मरवण गाते भी थे और कथा भी सुनाते थे। उनके गाए और सुने अंश भी मैंने लिखे। यह बात भी उन्हीं ने सुझाई थी कि नरवरगढ़ जो ग्वालियर के निकट एक प्राचीन नगर है। ढोला वहीं का राजा था। उसके पिता का नाम नल था। वह नल, दमयंती के पति नल से भिन्न था। ग्वालियर ब्रजभूमि से लगा हुआ क्षेत्र है। यही कारण है कि वहाँ की बोली भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। ब्रज बोली में ढोला–मरवण की गाथा गायी जाती है। उसे वहाँ 'बाग को ढोला' कहा जाता है। इस प्रकार मैंने इस प्रेमाख्यान को सुलेखित किया। यह मालवी प्रेमाख्यान सुखान्त है। ब्रज में जो 'ब्रज को ढोला' लोक गाथा है, उसके अनुसार नरवर का राजा 'प्रथम' था। उसकी

रानी मंझा थी। जब वह गर्भवती हुई तो उसे कलंक लगाकर बधिकों को दे दिया गया। बधिकों को दया आई उन्होंने उसे जंगल में छोड़ दिया और हरिण को मारकर उसकी आँखें निकाल ली। मंझा ने जंगल में नल को जन्म दिया। इसी नल का पुत्र ढोला है।[1] डॉ. सत्येन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि अब तक प्राप्त ढोला–मरवण की गाथाएँ, बीच के प्रसंग हैं। ढोलाकारों ने नल–दमयंती को शामिल कर लिया है, नल से ढोला का कोई सम्बन्ध नहीं है। नल रामचन्द्र से भी पूर्व का व्यक्तित्व है। नल से ढोला का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। ढोला–मारु का मारवाड़ी किस्सा बहुत बाद मध्य युग के कथाकार ने बड़े कौशल से जोड़ दिया है।[2]

मालवी में उपलब्ध मेरे संग्रह की इस गाथा की एक और विशेषता इसका मंगलाचार है। अंत में कथा का दार्शनिक पक्ष है, जो किसी भी अन्य गाथा में नहीं पाया जाता है। साखियों और गद्य संवादों से गुँथी यह गाथा अन्य भाषा–बोलियों में उपलब्ध अब तक प्राप्त गाथाओं में सबसे बड़ी है। रोचक है। इसकी नाट्य विधा, शैली कथा को और भी अधिक प्रभावशाली बना देती है। इसी प्रकार भले ही यह गाथा भी ढोला–मरवण के मिलन प्रसंगों तक ही सीमित है, किन्तु इसमें पूर्णता है। लोकभाषा मालवी में उपलब्ध प्रेमाख्यानों में यह सर्वश्रेष्ठ प्रेमाख्यान है। इस दृष्टि से यह आख्यान मालवी लोकभाषा की सर्वाधिक अमूल्य पूँजी भी है।

यदि हम भारत में प्रेम प्रसंगों की परम्परा पर ध्यान दें, तब हमें कृष्ण–रुक्मिणी, प्रद्युम्न–रुक्मावती, दृष्ठद्युम्न–उषा जैसे महाभारत कालीन प्रेमाख्यान पढ़ने में मिल जाते हैं। ये एक ही परिवार के प्रेमाख्यान हैं। इस लोकाख्यान में कहा गया है–

मरवण ने यूँ जाणजो, ऊषा रो औतार।
द्रस्टदुमन ढोलोवियो, मरवण रो भरतार।।
पूरबला संजोग था, करजुग जुड़यो जोग।
बालपणे परणादियो, मिल्यो जोग–संजोग।।

इसी प्रकार के कुछ प्रसिद्ध प्रेमाख्यान सूफी कवियों ने भी रचे हैं। यथा– लैला–मजनूँ, सोनी–महिवाल, हीर–राँझा, मिरजा–साहिबा और भी अनेक। बाद में दार्शनिक परम्परा में रतनसेन–पद्मिनी, चित्रावली की कथा, इन्द्रावती की कथा, अनुराग–बाँसरा की कथा आदि अनेक आख्यान मिल जाते हैं, जो सूफी दर्शन पर आधारित हैं। इनके अतिरिक्त चंदण कुँवर, सुलतान निहाल दे प्रेमाख्यान, मोमल–महेन्द्र प्रेमाख्यान, सोरठ कुँवरी प्रेमाख्यान, सोना–रूपा प्रेमाख्यान आदि। यह परम्परा पूरे भारत की लोक बोलियों और अंचलों में अनवरत रही और आज भी निरन्तर हैं।

प्रेम तत्त्व जीवन का ऐसा आनंददायक तत्त्व है, जिसके बिना जीवन नीरस और निरर्थक लगने लगता है।

उमरखैय्याम ने लिखा है–'सच्चा प्रेमी सदा प्रणय की मदिरा में मतवाला रहना चाहता है। प्रेम की मदिरा हमें बहुत लाभ पहुँचाती है। उससे हमारे शरीर और प्राणों को शक्ति मिलती हैं एवं उसके पीने से रहस्य का उद्‌घाटन होता है।'[3]

प्रेमी अपने प्रियतम या प्रियतमा पर सदा एकाधिकार चाहता है, वह सदा यही कहता है–

नयना भीतर आव तू, लेऊँ मैं नयन झँपेऊँ।
ना मैं देखूँ और कूं, न तुझ देखन देऊँ।।

प्रेम की गली अति सांकरी होती है। इसमें दो नहीं समा सकते। यूँ कहें कि प्रेमी या प्रेमिका को 'तरवार की धार पे धावनो हे।'

प्रेमाख्यान सूफी कवियों ने रचे हों अथवा भारतीय लोक रचनाकारों ने उनके महत्त्व को लोक ने अवश्य स्वीकारा है। मेरी ही एक पुस्तकाकार प्रकाशित प्रेमाख्यान 'रंभा' को आज भी मालवा में भिन्न–भिन्न स्वरूपों में गाया जाता है। जो अंश जिसे रुच गया वह उसके कंठ का आभूषण बन गया। पशु चारण करते हुए चरवाहे तक उसे गाते हैं।[4]

सूफियों ने जहाँ प्रेमिका को ब्रह्म निरुपति किया है, वहीं हिन्दी एवं लोक बोलियों के गाथाकारों ने प्रेमी को ब्रह्म मानकर अपना प्रेमाख्यान रचा है। ढोला–मरवण की गाथा कहती है–

ढोला जाणो ब्रह्म ने, मरवण जाणों जीव।
मवरण ने परणी कहयो, ढोला वाज्यो पीव।।

ढोला को ब्रह्म जानिए और मवरण को जीव। गाथा में हमने मरवण को प्रेमिका (पत्नी) और ढोला को प्रियतम (पति) कहा है। वह तो पुरुष और प्रकृति का योग है। पुरुष और प्रकृति के सुखद संयोग से सृष्टि की रचना होती है, एक से अनेक होते हैं।

पुरख अर परकत मीलणो, मरजादा री टेक।
सौमतियो संगम बणे, वेवे एक–अनेक।।

पुरुष प्रकृति का (नर और मादा का) संगम हो तथा वह सुमति एवं मर्यादा से हो। तब ही उचित है।

गाथा के अंत में 13 साखियाँ इस गाथा के आध्यात्मिक लक्ष्य की स्थापना करती हैं। इस नाते भी यह प्रेमाख्यान अन्य प्रेमाख्यानों से भिन्न एवं महनीय है।

इसमें प्रेम है, विछोह है। विरह की व्याकुलता और मिलन की उमंग है। इसमें हास्य है, श्रृंगार है, करुणा है, वीर है तथा रौद्र और भयानक रसों को अत्यंत सहजता से संजोया गया है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों का रस इसमें आनंददायक है।

ढोला, विक्रम की भाँति न्यायशील और राजा भोज की तरह वीर है, वह कुशल योद्धा है।

जोधा राजा भोज ज्युँ, विक्रम सरखो न्याव।
नरवरगढ़ रो राज थो, कुँवर ढोलयो राव।।

नरवरगढ़ का राव राजा ढोला, विक्रम जैसा न्यायप्रिय और भोज जैसा वीर तो था ही, वह अर्जुन और भीम के समान धनुर्धर और बलशाली भी था ।

धनस धरे, अरजन समाँ, कम्मर खुसे कटार।
बल तो जाणो भीम ज्युँ, हाथाँ में तरवार।।

मरवण अपनी पत्री में संदेश देती है कि ढोला प्रिय! आप शस्त्र सजाकर तथा साँडनी सवार होकर तत्काल पींगलगढ़ आ जाओ और अपनी ब्याहता (मुझे) लिवा ले जाओ। वह उसी प्रकार शस्त्र सज्ज होकर जाता है। शस्त्र का उपयोग भी उसे करना पड़ता है। यही कारण है कि आज भी दुल्हा कमर में कटार और हाथ में तलवार रखता है। भले ही आज इसका कोई औचित्य नहीं हो, पराक्रम परम्परा बन गया है।

रेमा मालण ने ढोला को अपने वश में कर रखा था। वह उसे दिन में मदिरा पान करवाकर मदहोश कर देती थी और सांझ पड़े दासियाँ उसे नहला कर नवीन वस्त्र धारण करवा, इत्र का छड़काव कर मालण की सेज पर पहुँचा देती थी। इस प्रकार वह ढोला का भोग करती थी। वह कामण (माया) जानती थी। उसने मरवरण के द्वारा प्रेषित संदेशवाहिनी कूँजों (कलिंजड़ियो–क्रौंच पक्षियों) को बाज बनकर मार डाला था। उसी ने ढोला के ऊँट करेला में पैरों में कील ठुकवा दिये थे। गाथाकार ने जहाँ उसे खलनायिका के रूप में प्रस्तुत किया है, वहीं उसे आध्यात्मिक विवरण में माया निरुपति किया है, जो जीव को ब्रह्म से मिलने में बाधक बनती है।

रैमा माया जाणजो, अदभत ख्याल रचाय।
जीत–ब्रह्म बिलगो करे, रेह–रेह ने बिलमाय।।

रेमा माया नित नये अद्‌भुत खेल रचाती रहती है। वह जीव और ब्रह्म को मिलने नहीं देती। बार–बार जीव को भ्रमित करती है।

मरवण और ढोला का विवाह बालपणे में ही हो गया था। दोनों नें एक दूसरे को नहीं देखा था। एक क्रौंच मादा उसे अपने पति का भान करवाती है। क्रौंच जिसे गाथा में कलिंजड़ी कहा गया है, स्वयं विरहदग्ध है। इस कारण वह मरवण की विरह पीड़ा को समझ लेती है और उसके कहने पर ढोला के लिए संदेश ले जाती है। मालण रेमा उसे मार डालती है। दूसरी कलिंजड़ी भी रेमा द्वारा मार डाली जाती है, तब सुग्गा मरवण का संदेशा लेकर ढोला के महल नरवरगढ़ पहुँचता है। बचते–बचाते वह मरवण का संदेश ढोला को देने में सफल हो जाता है। ढोला को सारी स्थिति का भान हो जाता है। वह रेमा के मोह से मुक्त होकर करेला नाम के अति वेगवान ऊँट पर बैठकर पींगलगढ़ जाने को तत्पर हो जाता है, तभी मौका पाकर रेमा मालण (जिसे कहीं–कहीं मालवण भी कहा गया है) करेला के चारों पैरों में कीलें ठुकवा देती है। नाम से करेला नर ऊँट लगता है, किन्तु गाथाकार ने उसे साँडनी कहा है। यह पारंपरिक भूल हो सकती है। बहुधा सवारी साँडनियों पर (ऊँटनियों) ही की जाती थीं। ऐसा पढ़ने–सुनने में आता है। करेला बोतड़ा अर्थात् युवा ऊँट था।

करेला की मंथर गति देखकर ढोला उसे कोसता है, तब करेला अपनी स्थिति बतला देता है। ढोला नीचे उतर कर उसके पैरों में ठुके कीलों को निकालकर पट्टियाँ बाँध देता है। करेला समयावधि में पींगलगढ़ के बाग में पहुँच जाता है। ढोला पींगलगढ़ की पनिहारिनों द्वारा मरवण को संदेश पहुँचाकर उसे बाग में बुलवाता है। मरवण अपने पति ढोला की परीक्षा हेतु पहले अपनी दासी हीराँ को सजा–सँवार कर भेजती है। (हीरा दासी का उल्लेख तेजल गाथा में भी हुआ है। यह पारंपरिक है।) बाग में भेजती है। सुग्गे की सहायता से ढोला–मरवण की चतुराई जान जाता है और उसे वापिस लौटा देता है। उसके पश्चात् नाथ मायन मरवण का वेशधर बाग में आती है। ढोला सुग्गे के सहयोग से उसे भी पहचानकर वापिस लौटा देता है। तीसरी बार स्वयं मरवण सजधज कर बाग की ओर प्रस्थान करती है। मरवण के साज श्रृँगार का वर्णन गाथा में अत्यंत सुन्दर ढंग से किया गया है। यह वर्णन अद्‌भुत है। ऐसा वर्णन अन्य किसी कामिनी का अन्यत्र नहीं मिलता। मालवी लोक साहित्य में श्रृँगार का यह वर्णन हिन्दी भाषा अथवा अन्य लोक भाषाओं के लिए भी अनुकरणीय है। दोनों का मिलन हो जाता है।

ढोला भी कहाँ कम था? वह भी मरवण के सत्तधर्म की परीक्षा लेता है। जब मरवण अपने साथ लाई ठंडे जल की झारी से उसे जल पिलाना चाहती है, तब ढोला

कहता है तुम कच्चे घड़ोलिए (छोटी मटकी) में कच्चे सूत की डोरी बाँधकर बावड़ी से जल भरकर लाओ, तब मैं पानी पिऊँगा। मरवण सतवंती थी। वह माता गौरी के सामने तथा सूर्य की साक्षी में कहती है– मैंने आज तक यदि अपने सत को खंडित नहीं होने दिया हो तो मेरी परीक्षा सफल हो जाय। वह पानी भर लाती है। ढोला आश्वस्त हो जाता है।

मरवण ढोला को सम्मान सहित महलों में ले जाती है। जब रात्रि में वह उससे मिलने जाती है, तब ढोला उससे प्रेमालाप तो करता है, किन्तु पति धर्म का निर्वाह नहीं करता। सात दिन और सात रातें बीत जाती हैं। मरवण अपने मन की पीड़ा अपनी भाभी से कहती है। भाभी मरवण के भाई से कहती है। भाई यह मानकर कि ढोला–मरवण को नहीं चाहता, उसका विवाह एक अन्य मित्र राजा सूमरा सोढ़ा से करवाने का निर्णय लेकर उसे निमंत्रित करता है। विवाह में बाधा नहीं पड़े, इस कारण वह ढोला कुँवर को खेतों पर बने भवन में रहने के लिए भेज देता है। मरवण को जब अपने पुनर्विवाह की चर्चा का पता चलता है, तब वह छुपती–छुपाती ढोला के पास जा पहुँचती है।

ढोला को वह सारी स्थिति का भान करवाती है। ढोला–मरवण को आश्वस्त कर कंठ लगाता है। दोनों का संयोग होता है। मरवण ढोला को उलाहना देकर पूछती है– आपने सात दिन तक मुझे पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया, फिर आज आपके मन में परिवर्तन कैसे आ गया ? वह मर्यादा की बात कहकर मरवण से कहता है– तुमने तब हाड़ी (साढ़ी) पहनी थी। एक तो हाड़ा मेरी ननिहाल की गोत्र है, दूसरे मेरी धायमाता हाड़ी (साड़ी) पहनती है। तुम्हें उस वेश में देखकर तुम मुझे अपने ननिहाल की कन्या अर्थात् बहन जैसी लगती थी। दूसरे मेरा धायमाता के रूप में मुझे माता जैसी लगती थीं। साड़ी राजपूतानी का वेश नहीं है। यह तो बनियों और ब्राह्मणों का वेश है। मेरी परणी (पत्नी–ब्याहता) तो राजपूताना है। इसलिए मैं संकोच में रहा। आज तुम लहंगा चूनर पहनकर आयी हो। इसलिए मैंने संकोच तोड़कर तुम्हारे साथ पति धर्म का निर्वाह किया है। मरवण आश्वस्त हो जाती है। ढोला उसे विश्वास दिलाता है कि तुम मेरी पत्नी हो और सदा मेरी ही रहोगी। मैं तुम्हें अपने साथ लेकर जाऊँगा।

जब प्रातःकाल मरवण को पालकी में बैठाकर सूमरा सोढ़ा के साथ विदा किया जा रहा होता है, तब ढोला वहाँ पहुँचकर ललकार लगाता है–

धरती पे जलम्यो नहीं, मरवण ने ले जाय।
कण रा दस माथा विया, ढोला ती टकराय।।
मरवण परणी ढोल री, ढोलो ई ले जाय।

जण रा दन आ खूटया, शस्त्र साज आ जाय।।
जण री जामण ने भख्यो, हवा हेर रो हूँठ।
ऊऽज हाथा ढाबसी, तरवारां री मूठ।।

धरती पर अभी ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ, जो मेरी ब्याहता मरवण को ले जा सके। इसे तो ढोला ही ले जाएगा। जिसकी माँ ने सवा सेर सोंठ खाया होगा। वही मेरे सामने तलवार थामकर आ सकेगा। ऐसा कहते–कहते उसने मरवण को करेला की पीठ पर बैठा लिया और वहाँ से निकल पड़ा। सब औचक होकर देखते के देखते रह गए।

सोड़ा सूमरा घोड़े पर सवार होकर पीछा करता है, किन्तु नहीं पहुँच पाता। लौट जाता है। ढोला का एक साढूभाई दानमल उसे छल कर रोक लेता है। वह चाहता है कि ढोला को मारकर मरवण से विवाह कर लूँगा। उसने ढोला को विश्वास में लेकर रोका और खूब मनुहार की। कलालण की सहायता से उसे नशे में मदहोश कर दिया। मरवण उसकी चाल समझ गई। उसने कलालण से विनती कर कहा– हे बहन! मेरे सुहाग की रक्षा करो। यह मेरा बहनोई दुष्ट है। यह ढोला को मारकर मुझे अपने कब्जे कर लेगा। कलालण का मन पसीज जाता है। वह एक औषधि द्वारा ढोला का नशा उतार देती है। गाथा कहती है –

अवरा रो सवरो वियो, कल्लालण री सूझ।
सतवंती री सगत ने, सके न कोई बूझ।।

बिगड़ा काम सुधर गया। कलालण की सूझ–बूझ से सब ठीक हो गया। सतवंती की शक्ति कोई नहीं जान सकता है।

ढोला सावधान होकर दानमल का वध कर देता है और अपनी मरवण को अपने राज्य नरवरगढ़ ले जाता।

इस प्रकार ढोला मरवण की यह कथा सुखान्त हो जाती है। खूब आनंद मनाया गया। गीताचार हुआ।

गाथाकार कहता है– गौरजा माता जैसा मिलाप तूने ढोला–मरवण का करवाया, वैसा सबका करवाना। किसी का भी सत्तनेम टूटे नहीं, ऐसी सद्‌बुद्धि देना। गाथा के अंत में आध्यात्मिक रूपक के बखान में गाथाकार कहता है–

ढोला मरवण री कथा, जीव ब्रह्म रो मेल।

भूल–चूक बगसावजो, करवा आस्याँ खेल।।

कथा के सार सारांश में लोक गायक कहता है। लोक में मरवण और ढोला उसी प्रकार प्रेमी–प्रेमिकाओं के आदर्श बन गए हैं, जिस प्रकार राधा–कृष्ण।

मरवण तो राधा कहूँ, ढोलो नंदकिसोर।
या तो हे चित चोरणी, ऊ जाणो चित्तचोर।।

आगे लोक गायक कहता है। सबकी अपनी–अपनी मरवण होती है और सबके अपने–अपने ढोला होते हैं।

सबरी अपणी मारुणी, सब रा अपणा ढोल।
छाने छपके कान में, बोले मधरा बोल।।

मरवण और ढोला प्रकृति और पुरुष का स्वरूप हैं। मरवण धरती है और ढोला कुँवर आकाश है। ढोला–मरवण की यह कथा सर्वत्र भिन्न–भिन्न रूपों में ख्यात है।

मरवण तो धरती कहूँ, ढोलाकुँवर आगास।
रमझम बरसे मेवलो, तन मन मिटे पिआस।।

प्रत्येक ढोला (प्रेमी) की एक मरवण होती है और प्रत्येक मवरण (प्रेमिका) का एक ढोला होता है। वे गुपचुप नयनों और संकेतों से परस्पर प्रेमालाप करते हैं।

हर ढोला री मरवणी, हर मरवण रो ढोल।
नयणा ती वाताँ करे, सैनण बोले बोल।।

घर–घर एक मरवण और एक ढोला होता है। हर घर में ऐसी प्रेम कहानियाँ कही–सुनी जाती हैं। इस प्रकार अनेक ढोला और अनेक मरवण हुई हैं। उनके अनेक गीत, आख्यान, कथाएँ, कहावतें और बखाण, सर्वत्र प्रचलित हैं। यह गाथा उन्हीं में से एक है। ढोला मरवण का प्रेमाख्यान देश–विदेश में ख्यात है। वहाँ की भाषाओं और लोक परम्पराओं के अनुसार उन्हें कहा–सुना जाता है।

1. मालवी लोककथाएँ–डॉ. प्रहलादचन्द्र जोशी, पृ. 500
2. पंडित नरेश त्रिपाठी कौमुदी भाग–5, ग्रामगीतों का परिचय पृ. 9 एवं मालवी लोक कथाएँ प्रहलाद जोशी, पृ. 501
3. सूफ़ीमत और हिन्दी साहित्य–डॉ. विमलकुमार जैन, पृ.65
4. रंभा, डॉ. पूरन सहगल।

अरदास

सदा भवानी दाइने, सनमुख रणत गणेश।
मरवण रो खेलो रचाँ, वेवे नहीं करेस।।1।।
अम्बा हे कुलदातरी, नमे भुवाई जात।
हिंगलाजाँ ने धोकताँ, पूजाँ अछरा मात।।2।।
ढोला मरवण री कथा, जाणे जगत जहान।
प्रेम डोर एसी बंध्या, दो देही एक जान।।3।।
मरवण ने यूँ जाणजो, ऊषा रो औतार।
द्रस्ट दुमन ढोलो वियो, मरवण रो भरतार।।4।।
पूरबला संजोग था, करजुग जड़यो जोग।
बालपणे परणा दियो, मिल्यो जोग संजोग।।5।।
लेख विधाता खुद लिखे, खुद ही परबे हाँच।
विधना रो लिख्यो थको, कोई सके न बाँच।।6।।
माया तो भगवान री, हमज नी आवे नेक।
ख्याल रचावाँ रंगरचो, सदगुरु राखे टेक।।7।।
नाम–गाम भगवान रो, सदर भुवाई जात।
हलमल ने खेलो कराँ, लजपत राखे मात।।8।।

आगमच

राजा नल रो बेटड़ो, ढोलो जण रो नाम।
नानपणे परणा दियो, जाणे गाम न धाम।।9।।
नरवरगढ़ रो राजथो, कुँवर ढोलयो राव।
जोधो राजा भोज ज्युँ, विकरम सरखो न्याव।।10।।
परण वरण रो थो नहीं, ढोल कुँवर ने भान।
गाठ–गठीलो ढोलयो, होयो गजब जुआन।।11।।
ढोला री दासी सुणी, मालण जण री जात।
कामण गारी कामणी, माया जाणे हात।।12।।
रेमा मालण नाम थो, बागाँ बीचे मेहल।
ढोला पे कामण करी, खेले चोपड़ खेल।।13।।
रात–रात सेजाँ रमें, ढोलो मालण संग।
दन–भर तो दारु पिये, राते भोगे रंग।।14।।

दन उगताँ रेमा करे, दारु में गड़गच्च।
दन नमतां ने दासियाँ, असनावे घण मच्च।।15।।
पेहरावे वसतर नवा, छड़के अतर फुलेल।
रथ असवारी बेठताँ, पउँचे रेमा मेहल।।16।।
रेमा रे संग रस रमे, सेजाँ उड़े सुवास।
माया धारी रेमड़ी, ढोलो करयो दास।।17।।
राजकाज सब भूलो, रहयो न मान गुमान।
भोगी भँवरो रस पिवे, भूल गये सब भान।।18।।

अथ गाथा ढोला मरवण री

ढोला री परणी सुणी, कुँवरी मरवण नाम।
पींगलगढ़ री बेटड़ी, तन–मन उमग्यो काम।।19।।
बागाँ पड़या झूलड़ा, होवे उमगी झूल।
बागा बीचे तार में, खिले कँवल रा फूल।।20।।
मरवण पदमण नत दना, करे हुरस असनान।
कँवलाँ तोले सेलियाँ, गावे मधरा गान।।21।।
मेहलाँ पच्छम सरवरो, हंसा करे मुकाम।
सुरखाबाँ रा जोड़ला, सरवरया रे हाम।।22।।
कूँजाँ रो जोड़ो वठे, प्रेम प्रकट सरसाय।
एक दूजड़े रे बना, घड़ि–पल नी रह पाय।।23।।
एक दना कुँजोड़ल्यो, गयो वाट बिलमाय।
विरहण रोवे बाग में, रेह–रेह ने बिलखाय।।24।।
मरवण कँवरी यूँ कहे, सुण ले दासी वात।
बागाँ बीच कलंजड़ी, बिरखी आखी रात।।25।।
तुरताँ माली ती कवों, कँवरी रो आदेस।
परे नवाड़ो कुंजड़ी, हुकम टरे नहिं लेस।।26।।
ना सोवे ना सोंण दे, रात–रात कुरलाय।
कै तो काटे बाग ने, कै कुंजड़ी नवाय।।27।।
रीसाँ वई कलिंजड़ी, सुण ले कँवरी वात।
म्हारो जोड़ो वछड़यो, ज्युँ कुरलाई रात।।28।।
थारे जिव भाटो पड़यो, नी परण्या री याद।
नानपणे परणा दई, भूल पड़ी मरजाद।।29।।

नरवरगढ़ रो ढोलयो, हे थारो भरतार।
एसो लागे निरखताँ, कामदेव औतार।।30।।
धनस धरे अरजन समाँ, कम्मर खुसे कटार।
बल तो जाणे भीम ज्युँ, हाथां में तरवार।।31।।
मरवण सुण औचक वई, रहयो न तन रो भान।
नयणा ती आँसूँ ढरे, झर–झर, गयो गुमान।।32।।
परण्या ती कसतर मलूँ, रेह–रेह ने अकलाय।
कूँजा ज्युँ कुरला उठी, सखियाँ धीर बंधाय।।33।।
पंख जो वेता ऊड़ती, नरवरगढ़ रे देस।
परण्या ने जा भेंटती, मिटतो सगल करेस।।34।।
हाथ जोड़ आरत करे, सुणो कलिंजड़ी बेन।
थारे बिन संवरे नहीं, म्हारो अवरो धैन।।35।।
उड़जा–उड़जा बेनड़ी, परण्या जी रे देस।
तुरताँ पउँचा आवजे, यो म्हारो संदेस।।36।।
परण्या ने करवावेज, मुझ परणी रो भान।
हात जलम भूलूँ नहीं, बेना रो एहसान।।37।।
सस्तर सज आवे तुरत, परणी ने ले जाय।
बिरह अगन तद बूझसी, परण्यो कंठ लगाय।।38।।
मरवण परणी आप री, थें म्हारा भरतार।
म्हारे तन–मन चित्त पे, हे थाँको अधकार।।39।।
तुरताँ आवो हे धणी, परणी ने ले जाव।
पींगलगढ़ पउँचो तुरत, नरवरगढ़ रा राव।।40।।

ढोला मरवण री ख्याल सरु

मरवण

म्हारे परण्या ने सेनसो पउँचा दे ए बेनाबाई,
करि दे यो बड़ो एसान।
जीऊँ अतरे जस मानसाँ ए कलिंजड़ी बेन,
करसाँ थारो पूरो सनमान।।41।।

मरवण री आरत अरज सुणताँ कलिंजड़ी बोली–

कलिंजड़ी

रेमा मालण तो घणी चगतरी ए कँवरी, नीलागण दे दाव।
थारा परण्या ने ऐसा मोहयो ए मरवण भूलि गयो परणी रो नाँव।।42।।
अगम पछम रेमा जाणले ए कँवराँ, करि दे काम तमाम।
कसतर ले जाऊँ थारो सेनसड़ो ए कँवराँ, कसतर सारूँ थारो काम।।43।।
जीव निछारूँ थारे कारणे ए मरवण, सारूँ ली थारौ काम।
विछड़ा रो दरद जाणू ए कँवराँ, लजपत राखे ला सिरिराम।।44।।
हिरदा रा तो करि ले कागद ए मरवण, सुतराँ री करि ले फरयाद।
नैणा काजल री तो मसि ए कँवराँ, आसूड़ा री कलम दवाद।।45।।
लिख दे ए कँवराँ थारो सेनसड़ो, पउँचाऊँ थारा परण्या रे हात।
विरहन रे हित कारणे ए मरवण, झेलूँ ली रेमा मालण री घात।।46।।
सन्नेसो ले जावसाँ नी जाणू एहसान।
बिरहण रो जोड़ो जुड़े, करूँ निछावर प्रान।।47।।

कागद में कई लिख्यो जो सुणो–

मरवण

नानपणे परणाई ओ म्हारा परण्या,पोतड़ा में छुड़वाया हतलेवा।
मरवण छे म्हारो नाम ओ म्हारा परण्या, पींगलगड़ आजो लेवा।।48।।
कागद बाँच्यो जा सके जी ढोला, करम नी बाँच्यो जाय।
बारक वे तो राख लूँ जी ढोल अंचलाँ, जुबन नी राख्यो जाय।।49।।
बालपणे परणाई माय–बाप ओ कँवरा, मरवण थाँकी नार।
वाट तकूँ ओ ढोला गोखड़े, रोऊँ जारो जार।।50।।
सावण लागो जी पिवजी सरसणो, बरसण लागो मेह।
नैण दुख्याजी पथ ताकताँ, सरसण लागो नेह।।51।।
चेत मास घण चेतणो, वैसाखो सुभ मास।
जेठ तपायो हाँचलो, जगी असाढ़े आस।।52।।
कसतर लिखती पानड़ी, कासिद मले न खास।
लिख ने भेजी पावड़ी, कूँजाँ रे विसवास।।53।।
आई जाओ गोरी रा सायबा, सूखण लागी देह।
सूखण लागी देह जी ढोला, सूखण लागी देह।।54।।
छप्पर पुराणो पड़ गयोजी ढोला, तड़कण लागा बाँस।
हाँजी ढोला, तड़कण लागा बाँस।।55।।
धड़कण लागो हीवड़ो जी ढोला, अटकण लागी साँस।

झट आ पउँचो म्हारा ढोलजी, म्हारी भटकण लागी आस।।56।।
बदलाँ चमके बीजरी, नी दरपे मखण नार।
झट आई जाओ म्हारा सायबा, हूड़ो निकरे बाऽर।।57।।
बरस मईना बीत्या जी ढोला, सावण बीत्यो जाय।
सावण बीत्यो जाय वो ढोला, जोबनयो अकलाय।।58।।
बीत गया जी बरस मइना, यो सावण नी जाय।
झट आवो मरवण रा सायबा, जीव घणे अकलाय।।59।।
कुँओ होय तो ढोला डाक लेऊँ जी, ढोला समदर नी डाक्यो जाय।
झट आवो मरवण रा पण्या, थांकी परणी विरह अगन जराय।।60।।
पींगलगढ़ आ पहुँचो कुँवर, नरवरगढ़ रा राव।
लिखियो कागद वाँचताँ, करजो तुरत छड़ाव।।61।।
कागद होय तो ढोला बाँच लेऊँ, करम नी बाँच्यो जाय।
तुरत पधारो ढोलजी, जुबन झकोला खाय।।62।।
काचो डील काँच को जी ढोला, लागी बिरह की मार।
ढोल कुँवर आ कंठ लगाओ, मरवण रा भरतार।।63।।
यो जुबनो फेर मेल नईं परण्या, जलम न दूजी दाण।
भीड़ सांडणी आओ ढोल जी, होय जुबन री हाण।।64।।
थाँकी परणी सूती मेहलाँ, ऊपराँ ताराँ छाई रात।
जद जागूँ तद एकली जी परण्या, थर–थर धूजे गात।।65।।
जल बिन तलफें माछरी, त्युँ मरवण कलपाय।
ढोल कुँवर आवो तुरत, विरह अगन बुझाय।।66।।
सावण बरसे सेवरा, काम देव रा बाण।
ढोल कुँवर झट आ पुगो, मुझ विरहण रा प्राण।।67।।
घन गरजे बीजे बले, बरसे मूसलधार।
मुझ विरहण रा डील पे, झरे अगन अंगार।।68।।
रुत आवे जावे कुँवर, नत पलटे दन रैण।
मरवण रे नत हाँवणो, झर–झर बरसें नैण।।69।।
बागाँ में झूला पड़या, तीजाँ रो तेवार।
सखियाँ तो तीजाँ रमें, करती गीताचार।।70।।
तीजाँ रमती मरवणी, वेती हिरदै ठार।
ढोल कुँवर आ पूगता, वै साँडी असवार।।71।।
म्हारी जोड़ी री सैयाँ तीजाँ पूजती, ओ कंवरा

म्हारे बी आवे हिलोरां जीव।
सांडनी तो झटपट भीड़ लो जी ढोला, आ पुगो वराँ चेती पीव।।72।।
झट आ पउँचो सायबा, वै सांडनी असवार।
नरवरगढ़ रा गढ़ धणी, मरवण रा अरतार।।73।।

कलिंजड़ी रे कहयाँ मुजब मरवण कागज लिखवा जा बेठी। आँखाँ में ती तो आँसूड़ा वेवे अन कारजा में वादी बरे। कई लीखूँ ने कसतर लीखूँ। मरवण बेठी विचार करे। मरवण रे हिवड़ा री अकलाट जाणगी। कलिंजड़ी वण ने कहयो

मरवण मन गाठो करो, चित्र ने राखो ढाब।
परण्या ने कागद लिखो, पंख लेओ सुरखाब।।74।।

हे मरवण कुँवरी! थारा मन अर चित्त ने कबजे राख अर सुरखाब रा फींकड़ा ती थारा परण्या ने कागद लिख दे।

मरवण ने अपणा कारजा री कोर ती आँसुणा में वेता काजल की मस ती कागज लिख्यो। कागद लिखी ने होना की तार में पिरो कलिंजड़ी रा गरा में पेराइ द्यो। कलिंजड़ी हवा री चाल ती उड़ चाली। नरवरगढ़ हीम में पोंचताँ–पोंचताँ दन नम चाल्यो। रेमी तो अव्वल लम्बर री जादूगरनी थी। वा बाराकोस तक का पंखेरु ओरख लेती थी। कलिंजड़ी ने देखताँईऽ वण ने सगन काढ़ ल्या। अरे या तो मरवण री दूती है। पिंगलगढ़ ती आई। रेमा सावचेत वईगी। यें तो कलिंजड़ी ढोला रे मेल रा कंगूरा पे आइ ने बेठी अने वें रेमी ने जादू रो जब्बर बाज उड़ायो। बाज गयो ने कलिंजड़ी पे अणचेत्याँ झपट्टो मार दियो। कलिंजड़ी धरती पे आइ पड़ी। रेमी नेझट कटार काढ़ी ने कलिंजड़ी री गाबड़ काट दी। गरा ती चिट्ठी काढ़ ने बार दी। कलिंजड़ी नरवरगढ़ में करांजी। वण री करांज पिंगलगढ़ में कलिंजड़ा रा हिरक्ड़ा में घाव करगी। घायल री गत घायल जाणग्यो वण ने सारी हकीकत मरवण ने जा सुणाई। मरवण रोवा लागी। अरे कलिंजड़ा। मूं थारी मुजरम। म्हारे कारण थारे विछोड़ो पड़्यो। तू म्हने माफी दे दे।

कलिंजड़ा ने कह्यो– ओ मरवण कुँवर–माफी मांगवा ती कई वे म्हारे तो वछोड़ो वइ गयो। मूं तो जीवताँइ मर्या समान हूँ। थारे कारण म्हारो जोड़ो टूट्यो। पण मूँ थने सरापूँ गा नी। मरवण री आँखाँ में तराइयाँ भराइ गी। कुँवरी ने कलिंजड़ा ती कह्यो के हे कलिंजड़ा थारो दुखड़ो मूँ समझूँ। तू म्हने एसो सराप देके मूँ बरि न राखोड़ो बणी जाऊँ। म्हारो दुख मेट दे। अतरो बोल मरवण वाँ ती चाल पड़ी ने दूसरी कलिंजड़ी के पास गी। कुँवरी ने कलिंजड़ी ती अरज करी–

अणी भव की तो तू कलिंजड़ी रे बेना, वण भव की तू म्हारी बेन।

म्हारो संदेसो म्हारा पिव ने पौंचा दे, झर–झर वरसे म्हारा नेन।।75।।

कुँवरी री अरज सुण कलिंजड़ी बोली–

मालण की बेटी घणी रे वीरव्वली ओ कँवराँ, कण विद देवूँ संदेसड़ो।
एक वछोड़ो तो थने पेलां करायो कँवराँ, क्यूँ छुड़वावे म्हारे देसड़ो।।76।।
चतराई तो राखजे म्हारी बेनड़ी, रेमा ती तो रइजे सावचेत।
संदेसो पउँचादे ढोला भरतार ने, मेल करा दे म्हारे हेत।।77।।
आगली कलिंजड़ी बलि गई ए कँवराँ, क्यूँ मरावे म्हने आज।
जबरा तो राखे रेमा पींजरा जबरा, पारेतर वण का बाज।।78।।
थारे बी दुखड़ो म्हारे ती देख्यो की जाय, ओ काँवराँ करुँ निछावर म्हार प्रान।
पोंचाउँ थारो संदेसड़ो ए मरवण, ढोलो मिराऊँ थने आन।।79।।
झटपट लिख दे कँवरा कागदो, उड़ि जाउँ अतरेतार।
बाँध दे कागद म्हारा गरा में, मिला देउँ थारो भरतार।।80।।
बिरह बिछोड़ो सूल ज्युँ, चुभे कारजा माँय।
कंवरी झट कागद लिखो, देर करण री नाँय।।81।।

कलिंजड़ी की बात सुण मरवण का मन री आसा जुड़ी। वण ने कागद लिख्यो–कागद में संदेसो लिखियो–

नाईं तो काणी नाई कूबड़ी जी ढोला, नाई लूली नाई पाँगली।
बालपणा परणाई ओ ढोला धारे से, माँ–बाप ने कर्‌यो ब्याव।।82।।
एक रे कलिंजड़ी म्हाने मोकली ओ, कँवरजी रेमा ने ले लिया प्रान।
संदेसो तो मलताँ ई भीड़ो तेजल, हाँडणी करो नी तुरत परयान।।83।।
आरत अरज सुणो बना, परणी लेवा आओ।
बिरह अगन लपटाँ उठे, तुरताँ आन बुझाओ।।84।।

असो संदेसो कागद पर लिख अन मरवण कँवरी ने कलिंजड़ी का गरा में बाँध दियो। कलिंजड़ी उड़चाली नरवरगढ़ की दिसा में। कलिंजड़ी जाइ पोंची नरवरगढ़ हीम रेमा मालण री चोकसी पूरी पक्की थी। कलिंजड़ी ने देखताँइ वा जाणगी के या मरवण रो संदेसो लै ने पींगलगढ़ ती आई हे। रेमा ने अणी कलिंजड़ी रा बी प्रान हर लिया।

कलिंजड़ी पाछी फर ने नी आई। एक पूरो अठवाड़ो बीत गयो। मरवण समझ गी के कलिंजड़ी मारी गी। मरवण अकलाई थकी बाग में गी अर पंखेरु–पंखेरु ती प्रार्थना करी। एक हूड़ा ने मरवण पे दया आई। वण ने मरवण ती कह्यो के हे कँवरी थे 'रोओ

मति।' कागद लिखो अन म्हारा गरा में बाँध दो। मूँ खरोखर कागद थारा भरतार ढोला रे हाथ पोंचाउँगा। थें म्हारे भरोसो राखो। हूड़ा रो बिसास पा कँवरी मरवण री हिम्मद बंधी। वण ने कागद लिख्यो। कागद में लिख्यो के–

दो तो कलिंजड़ी थेलाँ भेजी ओ ढोला जी, रेमा ने हर लिया प्रान।
तीजो आयो यो बीरो हूड़लो, तुरत निभावजो आन।।85।।
आन तो निभाजो ढोला धरम की, राखजो परणी रो मान।
अबके नी आया वाला परण्या, तो त्याग मरुँदे प्रान।।86।।
लिख–लिख कागद हारगी ओ सायबा, पाकण लगी रसल हाग।
लींबू हो पाक्या परण्या रस भर, खोटा तो होया म्हारा भाग।।87।।
जोबन तो पाक्यो ढोला कचपचो, नख दीयाँ रस जाय।
झट आओ म्हारा परण्या, रस चवण लग जाय।।88।।
मीठा घण हवाद जी ढोला, चाखो नी मधर सुवाद।
रेह रेह आवे ओलयो, हिरदै वाजे नाद।।89।।
कागद ले कूँजा पुजी, रेमा हर लिया प्रान।
हूड़ो वीरो आवसी, राख लेवजो मान।।90।।
दाखाँ पाकी बाग में, चाखण हारा आप।
झपटपट आवो हे भंवर, रस पीवण ने धाप।।91।।

मरवण ने चिट्ठी लिखी अन हूड़ा का गला में बाँध दी। मरवण ने कह्यो म्हारा बीरा थारो देव राखो। थू म्हारो पूरबला जनम रो भाई। आ थारा पग में राखी का डोरो बाँध दूँ। यो डोरो थारी रकसा राखेगा। असो बोल मरवण ने हूड़ा रा पग में कारा डोरा री राखी बाँध दी। हूड़ो उड़ चाल्यो।

हूड़ो आगले दन साँझ पड़ताँ–पड़ताँ नरवरगढ़ जाइ पोंच्यो। रेमा मालण तो सावचेती वई पूरी चौकसी में चाक चौबंद थी। वण ने बाराकोस तीऽज देख ल्यो के हूड़ो आइ र्‌यो हे। यो हूड़ो नरवरगढ़ रो तो नी दीखे। यो तो पींगलगढ़ को हूड़ो दीखे। हूड़ो बी पूरो चतराक थो। ऊ रेमा रा भाव ताड़ ग्‌यो। ऊ जाइ ने मेऽल रा कंगूरा पे बेठ ग्यो। मालण रेमा बाज बण ने हूड़ा पे झपटी। हूड़ो फुर्र ती उड़्यो ने मेऽल का भीतर ढोला कुँवर का पलंग पे जाइ बेठ्यो। लागो टें–टें करवा। बाज बणी रेमा हूड़ा ने होदती–होदती मेऽल में आइ अतरे तो ढोलो जाग चुक्यो थो। वण रो दारु नसो बी उतर चुक्यो थो। बाज बणी रेमा हूड़ा पे झपटे अतरे ऊ उड़ ने ढोला का खोरा में जाइ बेठ्यो। ढोला ने डंडो हाथ में ले बाज रे असी ठपकारी के बाज घीऽ घीऽ करतो बाऽर उड़ी

गयो। थोड़ी सीऽज में रेमा असल रूप धर दोड़ती–भागती मेऽल में आई। देखे तो हूड़ो ढोला की गोद में बैठ्यो। ढोला ने कह्यो के रेमा देख कतरो रुपारो हूड़ो हे। ढोला ने जसोई रेमा आड़ी हाथ फेलाओ हूड़ो घबरा उठ्यो। रेमा लपकी। हुड़ो सावचेत वई गयो रेमा ने सोच्यो यो मौका ठीक हे। हूड़ा ने कब्जे कर अणी गाबड़ मरोड़ दूँगी। पण हूड़ो तो पूरो चातरो निकल्यो ऊ फुरती ती उड़्यो ने ढोला रा खोरामें जाइ बेठ्यो। हूड़ा री चतराइ देख रेमा रीस में आइ गी ने पग पटकती बाऽर चली गी। ढोला ने हूड़ा पे हाथ फेर्‌यो तो बण रा गरा में होना रो तार। तार में चिट्ठी । ढोला ने झट चिट्ठी खोली ने भणवा लागो। चिट्ठी में मरवण रो संदेसो लिख्यो थो–

राजा नल जी म्हारा ससरा लागे, पींगल जी म्हारा बाप।
यो हूड़ो तो म्हारो धरम की वीरो, परण्या लागो आप।।92।।
वका पड़याँ पे नरवर छोड़, पधार्‌या था म्हाँ के राज।
दमयंती थाँकी जामण कुँवरजी, मूँ मरवण थाँकी साज।।93।।
नानपणे परणाई ओ कँवरा, देखूँ थाँकी वाट।
तुंरत पधारो ढोला पीवजी, जुबन सकूँ नी काट।।94।।
कण कामण बिलमाविया, कण रो छड़यो रुआब।
लिख–लिख परवाना भज्या वो ढोला, आयो नीं पलट जुवाब।।95।।
कलिंजड़ियाँ ले परवानो भेंजी, पाछी नी आइ लोट।
कै तो खोटा म्हारा करम वो ढोला, कै थाँके हिरे खोट।।96।।
यो सुवलो म्हारा लाड़ को रे ढोला, म्हारा पूरब जनम से वीर।
तीन दनाँ म्हारे देस पधारो, आइ बंधाओ धीर।।97।।
ढोल कंवर आजो तुरत, मन नी रेहवे धीर।
सुवटा रो जिव राखजो, म्हारो सग्गो वीर।।98।।
हिरदे ऊठे ऊकरियाँ, रेह–रेह ने अकलाऊँ।
जुबन जरे बिरहा अगन, जबरी लागी लाय।
ढोल कुँवर थारे वना, नी कोई सके बुझाय।।99।।
बीत गया बरस मइना ओ ढोला, फागण उड़ी सुवास।
बाट निहारताँ जोबन बीत्यो, बीत्यो रंग सुवास।।100।।
झट आओ म्हारा सायबा, मरवण घणी उदास।
मति तरसाओ ढोल जी, फागण मइनो खास।।101।।
तुरत पधारो ढोला कुँवर, फूलाँ छाई सेज।
जोबन छाई मरवणी, रस भीजी लबरेज।।102।

कागो बोल्यो कांधली, पिव आवण री आस।
बेरस होवे जोबनो, मुरझे फुलाँ वास।।103।।
फागण हरसाओ कँवर, गगना उड़े गुलाल।
रंग रस हलमल खेलसां, मरवण करो निहाल।।104।।
झट आ जाओ ढोल जी, बागाँ छाई बहार।
सज–धज आजो हरसता, परणी री मनवार।।105।।
फागण चूक्यो ढोल जी, ओढूँ जोगियो वेस।
सस्तर सज आजो बना, चेतन रवो हमेस।।106।।

चिट्ठी भणताँइ ढोला ने तेश में आयो। अणी रेमा रांड ने गजब कर्‌यो। चिटियाँ फाड़ी जो फाड़ी। बापड़ी कलिंजणियाँ रा बी प्राण हर्‌या। दुखियारी मरवण म्हारी वाट जावे। या मालण रेमा म्हारो जीव मोवे। हे भगवान तीन दन में सात से कोस रो फासलो कसतर पार हावे। ढोलो साँडाँ रा नेरा में गयो। वाँ जाइ ने एक साँडणी ती अरज करी–

अणी रे भव री तो तू साँडणी ए देवाँ, पेलाँ भव की तू म्हारी माय।
सात जनम थारो ऋण मानूँगा, जो तूँ म्हने पींगलगढ़ पउँचाय।।107।।
सार दे यो म्हारो काम हे माता, म्हारी परणी जावे वाट।
सात सै कोस रो तो फासलो जाणो, तीन दना री साट।।108।।
भूरी साँडनी सुणताँ बोली, ढोला सुण लो म्हारी सुदास।
सौ कोस री म्हारी चालणी कुँवर, कबरी री जाणो पंचास।।109।।
कारी जायो करेलड़ो रे ढोला, बाड़याँ चरे पींगल घाट।
साँझ पड़या ऊ चाले म्हारा कँवरा, अधराताँ पाछो आवे साट।।110।।
कोस सात सै मंजलाँ, तीन दनँ करि पाय।
युवन करेलो बोतड़ो, नत–दन चरवा जाय।।111।।

ढोलो नेरा से चाल्यो अर करेला रे बाड़ा में गयो। देख्यो तो करेलो आराम ती बेठ्‌यो–बेठ्‌यो वगोल रयो है। चारी चुमेर मरवा मोगरा, चम्पा, चमेली की मन भाती खुसबू फेल री है। ढोलो करेला के मेरे गयो ने अरज करी–

अणी रे भव तो तू बोतड़ो रे भाया, वणी भव को तू म्हारो वीर।
वका पड़ी बीरा जोर की, तू मिटा सके म्हारी पीर।।112।।
पींगल रे गढ़ म्हारी बींदणी, ऊभी जोवे म्हारी बाट।
बालपणा परणाया माय–बाप, पींगलगढ़ गढ़ का ठाठ।।113।।
परणी तो कर्‌यो करार रे भाया, मरवण जण को नाम।

तीन दना में कोस सात सै, पारकर पींगल होय मुकाम।।114।।
थारा वचन निभाऊँ ढोला जीव पे, करुँ पवन ती वात।
सात सै रो चालनो म्हारे खरो ओ कंवरा, पउँचा देऊँ रातो रात।।115।।
मति करो मन में विचार जी ढोला, मति करो तनक अफसोस।
राजा नल को तो मू चाकर रे ढोला, कें लागे सात सै कोस।।116।।
राजा नल रा हाथ की पड़ी काठियां रे ढोला, दमयंती रानी की बक्शी झूल।
होना रूप री नकेल ओ कंवरा, मोतियाँ जड़ी छे म्हारी बूल।।117।।
गाढ़ा रे कस दे तू कसणा रे ढोला, होजा तू झट–पट असवार।
थांकी परणी मला देऊँ ढोला कोल पे, हवा में उड़ि जाऊँ अतेरतार।।118।।
ढोल कुँवर घिरता धरो, करो न हिरदै होज।
वाय वेग मंजिल करुँ, एक रात एक रोज।।119।।
झट–पट भीड़ो काठड़ी, कसना कस लो गाठ।
तुरत सवारी साज लो, तुरतां काटूँ वाट।।120।।

करेला री या वात सुणताँइ ढोला ने ढाँढस बंध्यो। ऊ झट–पट भंडार में गयो। हाथौ–हाथ काठीलाई ने करेला पे भीड़ी। ढोला करेला पे सवारी करे–करे अतरे रेमा मालण आ पोंची। वह नरमाइ काटती थकी लाड़ती बोली! ओ म्हारा ढोला कुँवर थें जाइ र्‌या वो तो जाओ। भले पधारो पण अणजीम्या तो मति जावो। भोजन तैयार है। झटपट जीम लो ने वेराँचेती निकर जाओ। मूँ थाने नी रोकूँगली। ढोलो रेमा मालण री वाताँ में फँसि गयो। रेमा ने भोजन परोस दियो। ढोला जीमवा लागो। अँइँ रमली पुगी लोवा रे के घरे। रेमली लोवार ती बोली–

अणी रे जनम को तो तू लोवार रे भाया, पेला जनम को म्हारो वीर।
म्हारो कारज सार दे वीरो, कर दे एसी तदवीर।।121।।
भलकाँ तो घड़ दे बीजल सार री रे वीरा, घड़ि दे खीलाँ चार।
मन का चाया देऊँ दाम रे भाया, अरज करे या दुखिया नार।।122।।

पाप कमायो रेमणी, घण चतरी हुसियार।
जण हिरदै हाँच वे, पत राखे करतार।।123।।

लोवारा ने रेमा री बात हुणी। वण ने झटपट बीजलसार री चार खीलाँ घड़ दी। रेमली झट–पट करेला रा वाड़ा में पोंची ने वण रा चारी पगाँ में खीलाँ ठोक दी। खीलाँ ठोक वा ढोला के पास पोंड्ची ने हाथ जोड़ अरज करवा लागी–

हदी–हदी जाओ म्हारा ढोला कुँवर, थाँकी परणी जोवे बाट।
करेला तो बेठ्यो उतावरो रे कंवरा, पोंचो झट पींगल घाट।।124।।

ढोलो रेमा मालण ती रुखसत लैने करेला के पास गयो। भगवान रो सिमरन कर्‌यो। माय बाप रो सिमरन कर्‌यो। धरती माता अने करेला ने धोक दई ढोला करेला पे सवार होयो। करेला रा पगाँ में तो खीलाँ ठुकी थी। जस तर–तसतर करेला साँझ पड़ताँ–पड़ताँ पचास कोस पार करि सकयों। यूँ करताँ एक दन एक रात वीत गी। करेला की या दसा देख ढोला रा मन में डबका पड़वा लागा। ढोला करेला ती केवा लागो–

थारी तारीफाँ तो घणी सुणी रे करेला, थने करी थी बढ़–चढ़ ने वात।
कोस तो एक सै पार करया रे भाया, बीत्या दो दन ने दो रात।।125।।
कई तो वणेगा म्हारा कोल रो रे वीरा, कई तो पूरेगा करार।
कई होयो रे थने केव दे, टूट्या गोड़ा के चढ़यो तजणो बुखार।।126।।

ढोला की बात हुणताँ करेला बोल्यो–

नीचे तो उतरो ढोला कँवराँ, जाण लो म्हारो हाल–बेहाल।
रेमा ने ठोकी कीलाँ पगतलियाँ, चालूँ तो उठे कारजे झाल।।127।।
कीलाँ तो परी काढ़ो कँवरजी, कसी देओ पाटा बाँध।
फेर करो असवारी ओ ढोला, हवा ने लै चालूँ साथे काँध ।।128।।

ढोला करेला की पीठ ती नीचे कूद्‌यो। देखे तो चारी पगाँ में खीलाँ ठुकी। ढोला ने कहयो अरे रेमा राँड थने छल कर्‌यो। थारो तो मूँ पछे खोज जवाणूँ ला। पेलाँ मूँ पोंचूँ म्हारी परणी मरवण रे पास पींगलगढ़। ढोला ने चारी खीलां खेंच ने परे फेंकी। करेला रा चारी पगाँ पे पाटा बांध्या। ढोला करेला री पीठ पे असवार होयो। करेलो हवा वइ गयो। हवा पाछे ने करेलो आगे। तीजे दन दफोर वेताँ पेली ऊ पींगलगढ़ री हीम में जाइ लागो। जाइ ने एक बाग की बावड़ी पे डेरो डाल्यो। करेला ने कह्‌यो के ढोला कुँवर म्हने भूख लागी। म्हारी काठी खोल दो। थोड़ो खाई पी लूँ। पींगलगढ़ री वाड़ियाँ घणी मीठी लागे। करेलो वाड़ियाँ चरवा लागो। ढोला बावड़ी रा थारा पे बेठ ने सोचवा लागो के कोई दीख पड़े तो मरवण ने हमचो कराऊँ। अतरा में पाँच जणियाँ बावड़ी पे पाणी भरवा आई। ढोला ने वणा ती कह्‌यो मरवण ने म्हारो हमाचार करजो के ढोलो बावड़ी पे आइ पोंच्यो हे। वणी ने तरस लाग री हे। थें जाओ ने ढोला की तरस मिटाओ।

हमचो हुणताँइ मरवण रो मन खिलि उठ्यो। मूँडा पे नूर आई गयो। मरवण ने होची के ढोला रो सत कतरो खरो हे अणरी परख करणी छावे। मरवण ने अपणी खास दासी हीराँ ने आवाज लगाई। हीराँ दासी हाजर वई। हीराँ! गाम गोयरे बागवारी बावड़ी पे म्हारो परण्यो आयो। ढोला कुँवर जण रो नाम। ऊ मने नी ओरखे। तू म्हारो वेस पेऽर ने बावड़ी पे जा। देख–परख के ढोला कँवर सत रो कतरो पाको?

दासी हीराँ सोला सिंणा सज, बण–ठण, काजल्या, झांझर पेरी, टीली, मेंदी रचा, केस–केस में मोत्याँ री मारा पिरो, झिंगार झारी हाथ में लई अटकती–मटकती, संग में हात हेलियाँ आगे अन हात पाछे राख लांबो छेड़ो काढ़ी ने रमा झम्मा करती बावड़ी पे जाइ पोंची।

बावड़ी के माथे चम्पा को गोड़। गोड़ पे हूड़ो बेठो थो। हूड़ो बोल्यो–ढोला कुँवर सावचेत वई जाओ। हामें रमक झमक करती जो लाड़ी बण ने आइ री हे। या मरवण नी हे। या वणा री दासी हीराँ हे। ढोलो सावचेत वई गयो। जसाँ हीराँ ढोला रे मेरे पोंऽची। वसाँ ढोलो बोल्यो अरी हीराँ तू थारा माजना ती पाछी फरी जा। थारी कँवराणी ने मोकल। यो छला–छली को खेलो मति खेलो। हीराँ दासी ढोला री डपट खाई ने पाछी मेऽल में आइ गी। हगरी वात मरवण कँवरी ती केवालागी। हीराँ दासी की वात सुण नाथी नावण बोली। हीराँ तो घणी भोरकी हे कुँवरी मरवण। अबरके म्हने जावा दो। मूँ ढोला ने मोई लूँगा। असो कसो सतवंतो कुँवर आयो। मने आछा–आछा को सत तोड़ दियो ढोलो कँवर कै लागे ?

मरवण बोली– ठीक हे नाथी। तू बी म्हारा ढोला को सत परख ले। ढोला सत्त पर कायम है और कायम रेवे ला।

नाथी नावण ने भारी सिंणगार साज्यो। मोत्याँ ती मांग सिंणगारी। केसो केस मोती पिरोया। अणवट बिछिया पेर्। काजल्या झांझर पेर्, नेणा में सुरमो सार्यो। माथा पे रखड़ी बंधाड़ी। कंठ में नौसरो हार के पेर्यो। ताराँ जड़ी चूनरी ने टुक्कीदार काँचरी, साठ कली रो घाघरो। हाथाँ में हाथी दाँतो चूड़लो। हात तराँ को अंतर छटक्यो। नाथी नावण मखण रो रूप धर चवदा संगसेलियाँ आगे पाछे राख। होना री झारी में गुलाब जल वासंतो ठंडो पाणी भर अटकती–मटकती बावड़ी पौंची।

हूड़ो बोल्यो– ढोला कुँवर फेर ती सावचेत वई जाओ। अबरके नाथई नावण छल करवा आई हे। अण ने तो पूरो पक्को सबक सिखा दीजो। जसाई नाथी नावण बावड़ी में पौंची। तसाँई ढोला कुँवर सावचेत वई गया अर हाथ में कीमड़ी ले खेंच ने नाथी नावण की मोराँ पे ठपकारी। नाथी नावण। दई पाटी भागी पाछाँ मेटल री वाट। रोती झींगती नाथी मरवण के हामू जाइ पोंची। सारी गत बयान करी।

नाथी नावण की गत बेगत वई गी। तो काणी करकसा ने भी रुआब आयो। वा भी सिणगार करी अने लाम्बो छेवड़ो काढ़ बावड़ी पे गी। वण की बी दुरगत वई गी। अतरो व्याँ बाद मरवण बोली म्हारो ढोलो सत पे कायम है। वणरा मन में ढोला कंवर रे वास्ते प्रेम के साथे सम्मान भी सामिल वई गयो। आओ ए सेलियाँ म्हारे सिंणगार करो। अबे मूँ खुद जाऊँली ने म्हारा परण्या री तरस मेटूँ ली। कुँवराणी मरवण रो सिंणगार वेवा लागो–

मेलाँ में चढ़ी जी कोई मरवण, न्हावे रे जल में अंतर डार।
न्हाई धोइ मरवण धोके राजा सूरज, सीस नवावे बारंबार।।129।।
सारदा भवानी माताँ जाई ने धोके, रीजो हगरा म्हारे लार।
रद्ध–सद्ध गणपति दीजो, भेंटण जाऊँ भरतार।।130।।
म्हारे सत की दीजो साखई हे देवत, राख राखजो करतार।
परण्या ती म्हारो भेंटो कराजो, ढोलो कर लेवे सवीकार।।131।।
सोला जी सिंणगार तो साज्या कुँवर मरवणी, भेंटण चाली भरतार।
असी तो सुंदर दीखे मरवण कुँवरी, नई तो नवेली रतनार।।132।।
ताराँ जड़ी तो ओढ़ी चूनर सुवासणी, इंदर धनसी टुकियाँ काँचरी।
कसना कसी जुबन काँचरी जी कोई, घाघरा की कलियाँ घुम्मर नाचरी।।133।
बिछिया तो पेर्याँ बाजणा, काजल्या पेर्या झम्मकदार।
झाँझर तो गजब साज्या गोरी मरवण, चालताँ देवे झणकार।।134।।
नौसर्यो हार पेर्यो हीराँ जड़्यो जी, कोई नथड़ी में सूरज चंदाधार।
रखड़ी तो साजी नागण मणिधरी, जणे रूप की बेठी पेरादार।।135।।
काना में साज्या झुमका झूलणा, नाचो दिखावे कम्मरहार।
माँग सजाई असल मोतियाँ, टीली दीखे सत्तरी झार।।136।।
सुरमो तो सार्यो आँखाँ माछरी, लाम्बी खेची काजल धार।
धनष तो भवाँ तीखी कामणी, आँखाँ तो बाण तीखी मार।।137।।
चोटी ती लाम्बी नागण झूलणी जी कोई, मरवण तो होइ कामणगार।
हाथाँ में पेर्यो चुड़लो हुआगणों, जी कँवराँ फेर सजाओ बाजूबंद।।138।।
गजरा तो साज्या सखियाँ लाड़ती, मरवण तो झलकी सूरज चंद।
चाली जी हुआगण बागाँ बावड़ी, सोला तो रचाया सणिगार।।139।।
छेड़ो तो काढ़यो थोड़ो नमतड़ो जी कँवरी, मोवण चली जी भरतार।
संग की सएलियाँ चाली साथ में जी, कोई ले मोतियाँ रा थार।।140।।
होना रूपा री चमकण जलझरी, पाणी तो भर्यो ठंडो ठार।

खुसबू तो उड़े पवनाँ सुवासणी, गेहणा री वाजे झणकार।।141।।
पग तो चाले जी उतावला, बागाँ ने चाली मरवण नार।
कम्मर कंदोरो निरत करे जी कोई, झूले जी कँठ रा नौसर हार।।142।।
बागाँ में चानण–सगमर बावड़ी जी कोई, एरे मेरे हे चंपा बाग।
बावड़ी वराजे ढोलो वींद राजुला, मरवण भेंटण चाली जी गाती राग।।143।
गीत तो गावे संग सेलियाँ, मीठी तो लागे गीताचार।
मरवण चाले कम्मर लोचती जी कोई, मोयो तो मोयो संकसार।।144।।
रणकी–छणकी गोरड़ी, ऊषा री औतार।
बागाँ बीचाँ आपुगी, सज सोला सिंणगार।।145।।
हिवड़ो तो धग–धग करे, पीव मिलण री आस।
नीं देख्या नी परखया, ढब–ढब चाले सांस।।146।।
हे गारां पत राखजे, हरजे अलग–बलाय।
सदमत रेहवें पीवजी, लेवें कंठ लगाय।।147।।
आंबा बेठ्यो सूबटो, चेतो ढोला राज।
मरवण कँवरी राजली, आइ थाँके मलवण काज।।148।।
नयणा ती नयना जुड़या, मली सांस ती साँस।
दोई होया मोइता, लाम्बी भरें उसांस।।149।।
सबद अबद सब खूटिया, वाणी वई अवाक।
दोई बोलण छावता, मूंड़े कढ़े न अवाक वाक।।150।।
हाथ जोड़ मरवण उभी, अरज करे बार–बार।
नानपणा परणाई माय बापाँ, थें म्हारा भरतार।।151।।
घूंघट नमतो राख मरवण बोले, जल आरोगो सायबा।
तरस बुझा लो पीवजी, फेर ले चाबूं मेऽला लार।।152।।
नी पिउँ पाणी झारीती ओ मरवण, सत ती पिउँ पाणी धार।
काची तो घड़ोली पाणी लाओ, नेज बणाओ काचो तार।।153।।
हात जोड़या सूरज देव के, थें पत राखण हार।
साँस–साँस की साखी दीजो, पाणी भर लाऊँ काचे तार।।154।।
घड़ल्यो मोलायो काका कुमार ती, रेंट्या ती लाइ जी काचो तार।
सत राखे माता गोरजाँ, सत राखे म्हारो परण्यो भरतार।।155।।
मुख देख्यो माय बाप को, कै दैख्यो ढोला कुँवर असवार।
सूरज देवता थें लज्ज राखजो, रइजो सत रा आधार।।156।।
गौरां लज–पत राखजो, सत री राखण हार।

तन मन चित्त हे हांचला, हे सत रो आधार।।157।।
सत रा राखा सायबा, मन चित राखूँ ढाब।
सतवंती सत थिर रहे, मूंडे रवे रुआब।।158।।
हूरज ज्युँ भलको रवे, चन्दा ज्युँ उजलाव।
सतवंती सत नी तजे, बैठे अगन अलाव।।159।।
मरवण हिरदे सत धर्‌यो, चाली सत चितधार।
काचो घुड़ल्यो सूत लें, मन पाको निरधार।।160।।
पत राखी सत बोल गयो, मवरण होई सुचान।
पाणी पीने परण्यो, सत्त रो रहि गयो मान।।161।।
सत का घड़ोल्या सत की नेवज, सत रो भर्‌यो नीर।
पाणी पी ढोलो राजी होयो, आइ रिदे में धीर।।162।।
ढोला ने पाणी पिला, मरवण मेऽलाँ में आय।
ढोला ने साथे लियो, मनवारां सरसाय।।163।।

मेऽल में सेज वछी। सेज पे भाँत वरणा फूल बखेर्‌। मरवण ने वेस पलट्‌यो। सुवासती 'हाड़ी' पेऽर मेऽल में आई। ढोला रे पास सेज पे जइ बेठी। मरवण ने देखताँ ढोला रा मन में विचार आयो। मरवण रा डील पे 'हाड़ी' सोवे। म्हारे मामा की गोत बी 'हाड़ी' हे। यो योग–मेल नी वइ सके। प्रेम री वाताँ तो करी पण सेज नी माणी। मरवण रो मन टूट ग्यो। ढोला ने म्हारा सत री परीक्षा लई ली। फेर म्हारे में कइ बामच। यों करताँ–हात दन–ने हात राताँ वीत गी। आखिर मरवण ती रह्‌यो नी गयो। वण ने मन रो दुखड़ो भाभी ती कह्‌यो। भाभी ने मरवण का भाया ती कह्‌यो। हमराँ विचार कर्‌यो के ढोलो मरवण ने वसाणो नी छावे तो मरवण रो दूसरो ब्याव कर देवाँ। नाता रो विचार पक्को कर सोड़ा समूरा ने कागद लिख भेज्यो। सोड़ो सूमरो मवरण ती नाता री वात सुणताँइ चाली पड़्यो। कोई–कोई लोग सोड़ा अन सूमरा दो भाई गणे। या वात हमज ती बाहर हे। नातो तो एक तीऽज वे। सूमरो वण रो नाम अन सोड़ो वण की गोत थी।

सोड़ा सूमरा रो हमचार पिंगलगढ़ आइ पोंच्यो। मरवण रा भाइयाँ ने ढोला ती कह्‌यो के थें घरे बेठ्‌या–बेठ्‌या कई करो। खेते पधारो। खेत पे आपको मन लाग्यो रेगा। वठेऽज आराम करजो। थाँको भोजन वटेऽज पोंचतो कराँगा। ढोला मेहल छोड़ खेताँ का डागरा पर चल्यो गयो, वणे मेहलां रा छल–छली री ठानी थी।

सोड़ा–सूमरो मेऽल में आइ गयो। वण री खूब मनवाराँ वेवा लागी। मरवण ने मोको देख्यो ने रोटा बाँध खेत पे जाइ पौंची। मरवण ने घुम्मर–घेर घाघरो ने मेत्याँ जड़ी चूनर ओढ़ी थी। वा रलक–दलक करती छूपती–छुपाती ढोला रे पास पौंची। मरवण ने

आइ जाण ढोला रा मन राजी वई गयो। ढोला रा हिरदे प्रेम उपज्यो। मरवण ने कंठ लगा ली। खूब प्रेम होयो, ढोला ने मरवण रो मिलापो होयो। डागरा पे ओटो कर दोइ को संजोगो होया। दोइ रा मन धाप ग्या। दोनोईं आधी रात सुदी प्रेमालाप करता रह्या। समय बीतवां को भान दोनोई ने नहीं रह्यो।

मरवण केवा लागी के आप म्हारे पे अतरा टूटमान था तो प्लायाँ अतरा दन तक वेराग काँ जतायो। ढोला ने कह्यो मरवण म्हारे नानेरा की गोत 'हाड़ी' हे। तू नतदन हाड़ी पेऽर म्हारे हामूँ आती थी। आज चूनर ओढ़ ने आई तो म्हारो हंकोच टूट्यो। थू हमेसा लूगड़ो पेऽरजे। हाड़ी मति पेरजे। मरवण ने हामी भरी–

हाड़ी पेरूँ यूं लगो, जाणे म्हारी धाय।
दूध पिलायो धायमा, जाणू हंग्गी माय।।164।।
हाड़ी फेरे वाणियाँ, कै बामण री जात।
चूनर लेहंगा में फबे, रजपूतण हरसात।।165।।
लेहंगा चूनर वेस में, थें आया हो आज।
जीव जड़ी परणी लगो, एसा सज्यो साज।।166।।
म्हारे हिवड़े आ लगो, करो न मन हंकोच।
मरवण ढोला री रहे, करो न तनको होच।।167।।

मरवण ने कह्यो ढोला कुँवरजी ओर वाताँ तो छोड़ो। म्हारी वात सुण लो। म्हारा भाई म्हने नाते दइ र्या हे। सोड़ो सूमरो मेऽल में पोंची गयो हे। आज दीतवार हे। आज री रात ऊ म्हने नाते लई जागा। म्हारो सत राख लो। नी तर मूँ प्राण छोड़ दूँगा। थें म्हने मरी थकी देखोला।

ढोलो सावचेत व्यो। ढोला ने कह्यो के मरवण घबरा मत। थारो सत नी जावा दूँला। थूं पाछी घरे जा। मूँ थने हगराँ का हामूँ करेला ये बेठाइ ने लै जाऊँला। म्हारी परणी ने सूमरो तो कई हजार सूमरो बी नी लै जा सके। थूँ म्हारो भरोसो राख। मरवण तो ढोला री हे अन जनम–जनम ढोला रीऽज रेगा। मरवण आखी रात रोती कलपती पड़ी री। मरवण पाछी मेऽल में पोंचीगी । हवेरे वेताँ भाइ–भतीजाँ वण ने जबरदस्ती पारकी में बेठायो। अने सूमरा रे साथे वदा करी। अतरा में ढोलो करेला पे सवार वई जाइ पोंच्यो । वटे पौच ढोला ने कहयो–

धरती पे जलम्यो नहीं, मरवण ने ले जाय।
कण रा दस माथा विया, ढोला ती टकराय।।168।।

मरवण परणी ढोल री, ढोलो ई ले जाय।
जण रा दन आखूटया, सस्त्र साज आ जाय।।169।।
जण री जामण ने भख्यो, हवाहेर रो हूंठ।
ऊऽज हाथां ढाबसी, तरवारां री मूठ।।170।।
झपट सांडणी पे वियो, ढोलो झट असवार।
मरवण परणी पूठ पे, सज सोला सिंणगार।।171।।
रपट करेलो दौड़यो, वायर पाछे छोड़।
सपट बंधी नहीं सूमरे, कसतर करतो होड़।।172।।

करेलो नम्यो ने मरवण ढोला रो हाथ ढाब करेला पर बेठ गी। करेलो तो करेलो। हवा रो बेटो। यो जा–ऊ जा। सब का देखता देखताऽज रइ गया। सोड़ो सूमरो चेते–चेते अतरे तो करेलो हवा वई गयो। सोड़ो सूमरो अपणा वरातियाँ ने साथे लै ने ढोला रो पीछो करवा लागो।

करेला ने बहुत लम्बी मंजिल पार कर ली थी। ऊ थक्यो भी था। ढोला वणी स्थिति ने भांप गयो। मरवण भी थाग्गी थी। ढोला ने विश्राम रो विचार करेला ने ढाप दियो। ढोला ने मारग में एक बामण मल्यो, ढोला ने करेला ती कह्यो तनिक ढब जा। करेलो ढब गयो। नीचे बेठ्यो। ढोला ने मरवण करेला की पीठ ती नीचे उतर्या। दोई ने बामण माराज का पग धोक्या। बामण माराज ने खूब आसीर्वाद दिया। मरवण ने खुदरा गरा की खुंगाली काढ़ बामण माराज ने दान में दे दी। ढोलो हाँटा रा खेत में गयो। खेत में ती एक हाँटो काट ने लायो। तरवार ती हाँटा को एक मूँडो तीखो कर्यो ने धरती में गाड़ दियो। ढोला ने बामण माराजी ती कह्यो– माराज जी थें अठेऽज ऊबा रइजो। म्हारे पाछे सोड़ो सूमरो अणी बाटे आ गा। ऊ थाँक से म्हारो पतो पूछे तो सई–सई वता दीजो। वण ने कीजो के यो हाँटो ढोला ने धरती में गाढ़यो हे। थूँ अण ने काढ़ सके तो ढोला के पाछे जा नी तो अठा तीऽज पाछो फर जा। अतरो केताँ ढोलो मरवण समेत करेला पे सवार वई गयो। करेलो रपट पड़यो। थोड़ी वार पाछे सोड़ो सूमरो आयो। वण ने पूछ्यो के अठा ती कोई सवार निकर्यो? माराज ने कह्यो के ढोलो अर मरवण दोइ गया। ढोलो यो हाँटो धरती में दो हात गेऽरो गाढ़ गयो। ढोला ने कह्यो के सूमरो अणी हाँटा ने एक झटका में काढ़ सके तो म्हारो पीछो करे। नी तर अठा तीऽज पाछो फरी जावे। ब्राह्मण री वात सुण सूमरो रीस में आई गयो और हाँटो काढ़वा लागो।

सोड़ा ने हाँटो काढ़वा की घणी कोसिस करी पण हाँटो नी निकर्यो। सोड़ो ढोला की तागत अनमान गयो अन वटा तीऽज पाछो फरी गयो।

सोड़ो पाछो फरि गयो पण ढोला को एक साढू भाई थो। वण को नाम दानमल थो। वण की बी निगा मरवण पे थी। वण ने कयो के म्हारो घोड़ो, करेला ती बी तेज चाले। मूँ अबार पोंचूँ ने ढोला को माथो काट ने लाऊँ। मरवण ने म्हारे घोड़ा पे बाँध लाऊँ। अतरो केताँई दानमल ने घोड़ो रपटायो–

दगो कमायो दानमल, वै घुड़ले असवार।
ढोला मरवण री करुँ, मनचीती मनवार।।173।।
घोड़ो रपटायो दानमल, पौंच्यो अम्मरकोट।
ढब जाओ ढोला कँवर, आज कराँ ला गोट।।174।।
ढब जाओ साढू अठे, भाँग लेओ तकरार।
तुरत करेला ढाबयो, ढबयो गोड़ा ढार।।175।।
ढोला ने ढाबयाँ पछे, गयो कलालण पास।
मदको लाजे गेरड़ो, ढबया पावणा खास।।176।।
दारू फिरयो जेरड़ो, ढोले वियो बेभान।
मरवरणी अकला उठी, छल रो होयो भान।।177।।
ढोलो अणचेतयो पड़्यो, कसतर चेते आय।
झर–झर रोवे मरवणी, हूजे नहीं उपाय।।178।।
हे कल्लालण बेनड़ी, जोड़ूँ थारा हाथ।
अरज सुणाऊँ आरताँ, चरणा धोकूं माथ।।179।।
दानमलो जीजो लगे, दगो कमायो आज।
प्राण राख ले कँवर रा, रखलो म्हारी लाज।।180।।
दारु पी दाखिल विया, फूट्या म्हारा भाग।
बेना रगसा राख लो, ढोला करो सुजाग।।181।।
झुमका लेलो कान रा, ले लो नौसर हार।
झट उपाव एसो करो, बच पावे भरतार।।182।।
जलम–जलम नी भूलसाँ, यो थारो उपगार।
म्हारा परण्या रो करो, रगसा रो निरधार।।183।।
मरवण वै जा धीरती, पत राखे करतार।
नी लेऊँ थारा झूमका, नी लेऊँ नौसर हार।।184।।
थारा परण्या ने करुं, तुरत–फुरत हुसियार।
म्हारे वेताँ कँवर ने, कोई सके नी मार।।185।।
दानमलो कपटी बड़ो, छल बल में हुसियार।

जोधा चाकर मोकरा, जुड़या अण रे लार।।186।।
ताब रूआब अण रो घणो, बड़ो ठिकानेदार।
चार चुमेरा हे उबा, वण रा ताबेदार।।187।।
तू सद रइजे चेतणी, रखजे हिरदै ढार।
कंवरा रे हाथाँ थमा, बीजड़ली तरवार।।188।।

हे मरवण यो दानमल बड़ो धूर्त हे। छल–बल खूबकर सके। यो जालिम जुल्म करताँ दया नी राखे। यो बड़ो ठिकानादार है। अण रे ताबा में खूब लड़ाका भी है। तू रोणो धोणो बंद कर ले। म्हारे पे भरोसा राख। मनेऽज अवरो कर्‌यो हे तो मूँऽज सवारो बी करुँली। तू सावचेत वई जा। मूं थारा परण्या ने अबार चेत्यो करुँ। म्हारे से जो भूल अण जाणताँ वई मूँ वण रो सुधारो करुँ ली–

कल्लालण करवा लगी, हिरदा में पछताव।
म्हारा खोटा करम ती, मरसी ढोला राव।।189।।
कुलदाती रगसा करो, सूझण करो उपाव।
कसतर बे अरथो करुँ, दुस्ट दान रो दाव।।190।।
प्राण निछावर कर सकूँ, नीत धरम रे काज।
रगसा राखूँ ढोल री, कुँवरी राखूँ लाज।।191।।
साड़ी रो तागो कर्‌यो, बाँध्यो ढोला हाथ।
रगसा करताँ वीर री, सेहज निछारूँ माथ।।192।।
मरवण थे रोवो मती, रगसा करुँ जरूर।
दगो कमायो दानमल, करसी अवसाँ वार।
ढोला रे हाथा धरो, बीजलड़ी तरवार।।193।।

कल्लालण ने धार लियो के भले माथो कट जावे परण म्हने जो पाप कमायो वण ने सुधारो मूँ अवस करुँ ली। ढोला रा प्राण अन मरवण री लाज बचा मानूँ ली। वण ने तुरताँ अमृतो पिआलो भर ढोला कुँवर ने पिआ दियो। ढोला रो दारूँ उतर गयो। दारू उतरताँई ढोला रीस कर ऊठ्‌यो वण ने बीजल तरवार हाथ में धारण कर ली अने ललकार लगाई–

कठे छिपयो रे दानमल, ओछी करो ली घात।
थान चुघयो वे माय रो, कर ले दो–दो हात।।194।।
न्हारड़ी रो चूघयो, ढोल कुँवर ने थान।
हिम्मत वे तो आ डटो, दूराँ करो मिआन।।195।।

सात जणा आ घेर्‌यो, फेर पौंच्या बीस।
ढोल सूरमो जूझयो, काटया सब रा सीस।।196।।
अतरा में फेर आ गया, जोधा ससतर साज।
चार चुमेरा घिर गयो, नरवरगढ़ रो राज।।197।।
अभमनू ज्युँ फंसि गयो, ढोल कँवर बलधार।
हिम्मत गाठी राखताँ, कर्‌े वार पे वार।।198।।
चाले चक्कर घूमती, बीजलड़ी तरवार।
काट–काट ढरका दिया, ज्युँ आड़ी कठवाड़।।199।।
मरवण ऊबी धूजती, आसूड़ा ढरकाय।
कल्लालण सत राखतां, रेह–रेह धीर बंधाय।।200।।
मरवण रोणो छोड़ दे, हाथाँ ले तरवार।
दुरगा बण जा मरवणी, कर दुसमण पे वार।।201।।
मरवण ने सत छड़ गयो, भरी गजब हंकार।
रजपूतण री बेटड़ी, करे वार पे वार।।202।।
जो भी सपटे आ पड़े, सीधो जमपुर जाय।
गाठा रइजो ढोल जी, मरवण हाँक लगाय।।203।।
मारकाट एसी मची, मचगयो हा हा कार।
सीस कटे छाती फटे, व्हे रगताँ की धार।।204।।
दानमलो औचक वियो, रेह–रेह न पछताय।
जाण हमज पावे नईं, कसतर प्राण बचाय।।205।।
दुसमण ने ढरकावताँ, मलया नैण ती नैण।
भली करी हे मारुड़ी, धन्न कलालण बेन।।206।।
धन्न–धन्न रे बेनड़ी, खूब कर्‌यो उपगार।
दोयाँ की रगसा करी, अपणी भूल सुधार।।207।।
परभाताँ भूले पड़े, साँझ पड़याँ घर आय।
करया काम हुदार ले, भटकयो नी केहवाय।।208।।
ढोल कुँवर घायल घणो, मरवण झेल्या घाव।
पण लागण दीयो नहीं, दानमला रो दाव।।209।।
मोको देख्यो दानमल, घायल हे गण ढोल।
नी बच पावे ढोलया, उचर्‌या कड़वा बोल।।210।।
रीस लगा ने दानमल, ले झपटयो तरवार।
ढोले करी उड़ीकड़ी, झेल लियो झट वार।।211।।

पलटवार में कँवर ने, हदवाई तरवार।
मूंडी कट दूराँ पड़ी, लोथ पड़ी अड़झार।।212।।
कल्लालण धन–धन कहे, वाह रे ढोला सूर।
दानमला ने मारताँ, पाप काट्यो मूर।।213।।
वाह री मरवण न्हारड़ी, हद वाही तरवार।
दुसमण ने ढरका दिया, करताँ गाठा वार।।214।।
जतरी थें कामण लगो, रगत कँवर रे साँय।
वतरी हो मरदानड़ी, रणचण्डी रे न्याँय।।215।।
ढोल कुँवर रण धीरयो, जंग जूझणो धीर।
थूहर नयाँई काटया, बड़ा–बड़ा रणवीर।।216।।
म्यान करो तरवार ने, पंथ करो निरधार।
झटपट मंजल काटजो, वै साँडी असवार।।217।।
ढोला मरवण ने करी, कल्लालण रे धोग।
फेर मलां ला जीवता, राम मिलाड़े जोग।।218।।
जीवा तईं भूलाँ नहीं, बेहना थारो हीत।
अवरा रो सवरो कर्‌यो, दया धरम री नीत।।219।।

कल्लालण ने धोग लगाता ढोला मरवण करेला पे असवार वै सरपट मंजला पार कर अपणे देस नरवरगढ़ जा पौंच्या। पौंचताई ढोला ने रेमा मालण नकटी–बूची बणा, कारो मूंडोकर देस निकारो दे दियो। ढोलो राज बिराज्यो, मरवण नरवरगढ़ री राणी वाजी।

हे माता गोरजा जसो मेलो ढोला मरवण रो करवायो वसो सबाँ रो करवाजो। सबाँ रो नेम धरम ठोर ठकाणे राखजो। देस में कद्या बी कार नी पड़े। अन्न धन्न रो वाधो बणे। रोग सोग–मामारी नी वे वे। हगरा सुखी रेवें–

कथा रो तार–नितार

ढोला मरवण री कथा, अग–जग जाणी जाय।
जो अणवाचे अर हुणे, हिरदा में हरसाय।।220।।
मारवाड़ गुजरात ब्रझ, सिंध अने पंजाब।
मेवाड़ों बड़ मालवो, हाड़ोती दो आब।।221।।
राजपुताना ती पुगी, मदभारत रे पार।
ढोला मरव रा विया, अणगणती औतार।।222।।

कथा रो रथ पौंच्यो, मारासटर री हीम।
मली–जुली कंथा बणी, बोली देस मुकीम।।223।।
गुड़ती पड़ती या कथा, गई विदेसाँ माँय।
अरक–फरक थोड़ो घणो, मोटो अंतर नाँय।।224।।
कण गाई कण ने सुणी, नी अणरो अनमान।
जुड़ती–घटती या कथा, आई म्हारे जान।।225।।
कंथा सुण खेलो रचयो, घट–बढ़ करी न मूल।
मनख जाणताँ वैसके, छोटी–मोटी भूल।।226।।
मरजादा रघनाथ री, लीला क्रसन मुरार।
प्रेम रूप ढोला कह्यो, मरवण रो भरतार।।227।।
ज्युँ राधा किरसन विया, पुरख प्रकत औतार।
त्युँ ढोला–मवरण कथा, प्रेम तत्त रो सार।।228।।
दुहो सोरठयो भलो, भल मरवण री वात।
जुबना छायी गोरड़ी, ताराँ छायी रात।।229।।
ढोला री जिव जेवड़ी, कनक कारजा कोर।
जिण घट मारुणी बसे, नी बसे पावे ओर।।230।।
मरवण तो राधा कहूँ, ढोलो नंद किसोर।
या तो हे चित चोरण, ऊ जाणो चित्तचोर।।231।।
सब री अपणी मारुड़ी, सब रा अपणा ढोल।
छाने छपके कान में, बोले मधरा बोल।।232।।
वाजे मरवण रे रिदै,मधुरो मधर सितार।
ढोला रो मन मेरड़ो, पीऽ काँ करे पुकार।।233।।
मरवण तो धरती कहूँ, ढोल कँवर आगास।
रमझम भरसे मेवलो, तन–मन मिटे पिआस।।234।।
हर ढोला री मखणी, हर मरवण रो ढोल।
नयणा ती वाताँ करे, सैनण बोले बोल।।235।।
तोता मैना री कथा, जाणे जगत जहान।
अपणा–अपणा सत्त रो, दोई करे गुमान।।236।।
उतक उराहनो देवताँ, परगट होवे नेह।
चोंच लड़ावे चोंचला, हिरदै घणो सनेह।।237।।
मोमल अने महेन्द्र री, प्रेम कथा परगाढ़।
संक फांस हिरदै गची, कोई सक्यो नि काढ़।।238।।

संक कदाँ कसतर बणे, केई सके न जाण।
तागो तोड़े नेह रो, जोड़याँ पड़े गठाण।।239।।
सावण बरसे बादरी, आवो पिव सुरताण।
निहाल दे रे जिव चुभे, वरखा विरह बाण।।240।।
रम–जम बरसे सेवरा, तन मन ने सरसाय।
बिन प्रीतम सुरताण रे, नेहल ने कलपाय।।241।।
पिव–पिव करे पपीहरो, झर–झर बरसे मेह।
पिव परदेसाँ हे सखी, नेहल रो कई वेह।।242।।
निहाल दे रा ढोलणा, तुरताँ आवे गेह।
जुबन तड़ाके काँचरी, नेह तड़ाके देह।।243।।
प्रेम अगन हिरदै लगी, मरवण ने कलपाय।
झट आवो पिव ढोलणा, जोबन बीत्यो जाय।।244।।
जोबन आवण जावणो, नी हिरदे परवाह।
मरयाँ पेहलाँ आ मलो, अतरी हिरदै चाह।।245।।
बणज नेह कर्‌यो नहीं, नहीं ताकड़ी तोल।
सीस दियाँ ढोलो मले, मरवण ने अनमोल।।246।।
कतराई ढोला विया, कतरीऽ मरवण जाण।
कतराइ लिखया गीतड़ा, कतराइ लिख्या बखाण।।247।।
घर–घर राजल मरवणी, घर–घर ढोल सुजान।
घर–घर नेहल केणियाँ, घर–घर बिरह गान।।248।।
ढोला मरवण री कथा, खूब छड़ी परवान।
देस बिदेसाँ में कथ्या, अणगण अनखा गान।।249।।

कंथा ढोला मरवणी, कर दी प्रकट बखाण।
भूल चूक राखी नहीं, अपणीं करतां जाण।।250।।
ढोला जाणो ब्रहम ने, मरवण जाणो जीव।
मरवण ने परणी कह्‌यो, ढोला वाज्यो पीव।।251।।
जीव ब्रह्म रो मिलण हे, ढोला मरवण गाथ।
विछड़्याँ अकलावे घणो, आणद होयाँ साथ।।252।।
पुरख परकत मीलणो, मरजादा री टेक।
सैमतयो संगम बणे, वेवे एक अनेक।।253।।
रेमा माया जाणजो, अदभत ख्याल रचाय।

जीव ब्रह्म बिलगो करे, रेह–देह ने बिलमाय।।254।।
कूँजा तो सुक्रत कहूँ, जीव करे अरदास।
माया री हाटक पड़े, जा नी पावे पास।।255।।
हूड़ो जाणो सतगुरु, जीव–ब्रह्म अरथाय।
आरत–अरजी जीव री, ब्रह्म ठोर पहुँचाय।।256।।
पुण्य करेलो बोतड़ो, जीव करे असवार।
ठोर–ठिकाणे जा पुगे, करताँ बिघनाँ थार।।257।।
सुमरो–नुगरो दानमल, ब्रह्म मिलण री बाध।
सतवंता जिव नी ढबे, राखे सत री साध।।258।।
बामण मलयो वाटड़ी, पुण्य करम रे काज।
अवरा ने सवरो कर्‌यो, नीत धरम रे साज।।259।।
अवरा रो सवरो वियो, कल्लणरी सूझ।
सतवंती री सगत ने, सके न कोई बूझ।।260।।
लीला लीलाधार री, कोई जाण न पाय।
अदभुत्याँ लीला करे, अजबा खेल रचाय।।261।।
मरवण–ढोला री कथा, जीव ब्रह्म रो मेल।
भूल चूक बगसावजो, करवा आस्याँ खेल।।262।।

वन्दना

माता भवानी सदा मेरे दाहिने रहे और सिद्धि के दाता गणेश हमारे सम्मुख रहें। हम ढोला–मरवण का खेल रच रहे हैं इसमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ पाए।

अम्बामाता हमारी कुलदेवी हैं। सारा भुवाई समाज इनकी वन्दना करता है। हिंगलाज माता को पूजते हुए हम अछरा माई की पूजा करते हैं।[1]

ढोला मरवण की कथा को तो सारा जगत जानता है। दोनों प्रेम की डोरी में इस प्रकार बंधे थे कि मानों दो देह और एक प्राण हों। मरवण को तो उषा का अवतार मानिए और ढोला को दृष्टद्युम्न का अवतार, जो कि मरवण का भर्तार था। उनका यह पूर्वजन्म का योग था, जो कलयुग में संयोग बना। दोनों का योग–संयोग ऐसा जुड़ा कि बचपन में ही उनका विवाह करवा दिया गया। दोनों अभी तो पोतणों (पैदा हुए) में थे। विधाता स्वयं ही लेख लिखते हैं और स्वयं ही अपने लेख को सिद्ध करने का योग भी बनाते हैं। उसे सत्य करते हैं। विधाता का लिखा लेख कोई नहीं पढ़ सकता। वे खुद ही

लिखते तथा बाँचते हैं। भगवान की माया (लीला) कोई तनिक भी नहीं जान सकता। उसी की इस लीला का हम खेल रच रहे हैं। सद्गुरु सदा सिद्ध करें।

हमारा गाँव और नाम तो भगवान ही है। वही हमारा परिचय है। उसी का भरोसा है। हमारी जाति भुवाई है। हम सब हिलमिलकर खेल रचाते और दिखाते हैं। माता हमारी लाज रखेंगी।

पूर्वाभास

ढोला (नरवरगढ़ के) राजा नल का पुत्र था। उसका विवाह शिशु अवस्था में ही कर दिया गया था। वह न तो अपने ससुराल का गाँव ठिकाना जानता था, न वह घर–परिवार जहाँ उसका विवाह हुआ था। उसे तो यह भी पता नहीं था कि, उसका विवाह हुआ भी था। वह अब स्वयं नरवरगढ़ का राजा था। वह धार के परमवीर राजा भोज की भाँति योद्धा एवं शौर्यवान था। उज्जैन के राजा विक्रम की भाँति न्यायशील था। उसे विवाह आदि संबंध का कोई बोध नहीं था। सुन्दर एवं कसी हुई देहयष्टि वाला ढोला अद्भुत युवा था। ढोला की एक दासी थी, वह जाति की मालन थी। (कुछ विद्वान उसे मालवण अर्थात् मालव युवती मानते हैं। उज्जैन की मालिनें प्रसिद्ध भी रही हैं। उनकी सुन्दरता तथा पुष्प कला सर्वत्र ख्यात थी। सम्भव है मालवा की कोई मालन या माली परिवार तबके नरवरगढ़ में जा बसा हो। उसी परिवार की वह युवती हो।) वह बहुत सुन्दर तथा कामण (सम्मोहन विद्या) में प्रवीण थी। उसे सात माया विद्याओं की सिद्धि प्राप्त थी। (मोहन, मारन, उच्चाटन ये वशीकरण के मूल मंत्र हैं तथा शेष चार इन्हीं के उपमंत्र)।

उसका नाम रेमा मालन था। राजबाग के मध्य उसका महल था। उसने ढोला कुँवर पर सम्मोहन विद्या का प्रयोग कर उसे अपने वश में कर लिया था। वह ढोला कुँवर के साथ सदा चौपड़ खेलती थी। ढोला रात भर तो मालण रेमा के साथ सेज सुख भोगता था और दिन भर मदिरा पान कर मदहोश पड़ा रहता था। ऐसा चक्र रेमा मालन ने चला रखा था। दिन ढलते–ढलते रेमा की दासियाँ ढोला को स्नान करवातीं, उसे नए वस्त्र पहनाकर इत्रादि सुगंध से सुवासित करतीं। फिर वह रथ पर सवार होकर रेमा

1. अछरा अर्थात् अक्षरा–जिनका कभी क्षरण नहीं होता। इन्हें सप्तमातृका कहा गया है– ब्राह्मणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा दोनों ओर क्रमशः वीरभद्र और नृत्यरत गणेश चित्रित या उकेरित होते हैं। दशपुर अंचल में अनेक स्थानों पर मुझे ऐसे शिलापट्ट मिले हैं, जिन पर इनको उकेरा गया है। विशेष रूप से हिंगलाजगढ़, इन्द्रगढ़, अनसर क्षेत्र, मोड़ी, घसोई, भानपुरा, धर्मराजेश्वर, पिलोदा, ढाबला महेश, पंचदेवल, रामनाथ, उगराण ग्वाल, व्यासपीठ, कोठड़ी, जीरन, डीकेन आदि स्थान पर ऐसे शिलापट मौजूद हैं।

के महल पहुँचता था। वहाँ वह रेमा के साथ रंग–रस का भोग करता। सेज सुवासित हो उठती। मायाधारी रेमा ने ढोला को अपने वश में कर रखा था। वह राजकाज और अपनी मान–मर्यादा का भान भी भूल चुका था। वह रस लोभी भोगी भँवरे की भाँति सारे जगत को भूल चुका था।

आख्यान

ऐसा ज्ञात हुआ कि ढोला कुँवर की परणीता का नाम कुँवरी मरवण था। वह मारवाड़ के पिंगल क्षेत्र में स्थित पिंगलगढ़ की राजकुमारी थी। उसके तन और मन में काम भाव उमंगित हो उठा था।

बागों में झूले पड़े थे। वहाँ वह सखियों सहित झूला झूलती थी। बाग के बीचों बीच में एक सुन्दर तालाब था, जिसमें कमल पुष्प खिलते थे। वह पद्मिनी मरवण कुँवरी प्रतिदिन हर्षित मन उस कमल ताल में स्नान करती थी। स्नान करने के पश्चात् उसकी सहेलियाँ उसे कमल पुष्पों से तोलती थीं। मधुर–मधुर गीत गाकर उसे प्रसन्न करती थीं।

उसी बाग के पश्चिम में एक और तालाब था, जिसमें हंसों का निवास रहता था। तालाब के सामने सुरखाब पक्षियों के जोड़े कलोल करते रहते थे। वहीं पर कूँजों के जोड़े भी थे, जो परस्पर प्रेमालाप करते दिखते थे। उन्हें प्रेममय देखकर मन सरस हो उठता था। वे कूँज (क्रौंच) पक्षी एक पल भी एक दूसरे से अलग नहीं रह पाते थे।

एक दिन नर कूँज पक्षी मार्ग भटक गया और संध्या होने पर भी सरोवर पर नहीं लौट पाया। विरहन कूँज मादा रह–रहकर उसकी बाट निहार रही थी और बिलखते हुए सबके मन को व्याकुल कर रही थी। वह रात भर रोती–बिलखती रही। उसकी विरह वेदना भरी आवाजों को सुनकर मरवण रात भर सो नहीं पाई। उसने भोर में दासी को बुलाया और कहा– अरे दासी बाग में रह रही कलिंजड़ी (कूँज) रात भर बिलखती रही। मैं उसकी दुःख भरी आवाजें सुनकर रात भर सो नहीं पाई। तुम तत्काल बाग में जाओ और माली से मेरा आदेश देकर कहो कि वह कलिंजड़ी को तुरंत बाग से दूर भगा दे। ध्यान रहे, मेरा आदेश टाले नहीं। वह कलिंजड़ी न तो रात भर स्वयं सोती है, न मुझे सोने देती है। माली से जाकर कहो कि वह या तो कूँज को बाग से दूर भगा दे या फिर पूरा बाग ही काट डाले। न रहेगा बाँस न बजेगी बंसरी।

जब कूँज को कुँवरी मरवण का यह आदेश ज्ञात हुआ, तब वह क्रोध में भर उठी। वह तत्काल मरवण के पास गई और कहा– 'हे मरवण कुँवरी! मेरी बात सुन लो।' मेरा

जोड़ा बिछड़ गया है मैं इस कारण रात भर कुरलाती रही। तेरे हृदय में तो पत्थर रखा है। तू विरह वेदना की पीड़ा क्या समझे? तुझे तो तेरे परण्ये (पति) की याद ही नहीं है। तुझे तो शैशवकाल में ही परणा दिया था। तू सारी मर्यादा भूल गई है। नरवरगढ़ का ढोला कुँवर तेरा भर्तार है। वह देखने में ऐसा लगता है मानों स्वयं कामदेव ने अवतार लिया हो।

वह जब कंधे पर धनुष धारण करता है, तब अर्जुन जैसा लगता है। वह कमर में कटार खोंस कर रखता है। उसमें भीम के समान बल है, वह हाथों में तलवार धारण किए रहता है।

मरवण ने जब कलिंजड़ी से अपने परण्ये का ऐसा शौर्यवान वर्णन सुना, तब वह आश्चर्यचकित हो उठी। उसे अपने तन का भी भान नहीं रह गया। उसके नयनों से अश्रुधार बहने लगी। उसका अहंकर आँसुओं में बह गया। वह अपने पति से कैसे मिले? ऐसा सोच–सोचकर वह व्याकुल हो उठी। वह कूँज की भाँति कुरलाने लगी। सखियाँ उसे धैर्य बंधाने लगी। उसने थोड़ा धैर्य रखकर कहा– यदि मेरे पंख होते, तब मैं तत्काल उड़कर नरवर देश पहुँच जाती और अपने परण्ये को भेंट लेती। मेरे मन की सारी व्याकुलता मिट जाती।

मरवण ने हाथ जोड़कर कलिंजड़ी से आर्त स्वर में कहा– हे बहन! तेरे बिना मेरा कारज नहीं संवर सकता। अरे बहन कलिंजड़ी! तू तुरंत उड़ जा और मेरे पति ढोला कुँवर के देश जाकर उन्हें मेरा संदेश पहुँचा दे। तू जाकर मेरे परण्ये को मेरी स्मृति दिलवाना। हे बहन! मैं सात जन्मों तक भी तेरा उपकार नहीं भूलँगी। उनसे कहना, वे तुरंत शस्त्र सज्जित होकर आयें और अपनी परणी को ले जाए। मेरी विरह अग्नि तभी बुझ पाएगी, जब मेरा परण्या ढोला कुँवर मुझे मिलेगा और मुझे अपने कंठ लगा लेगा। उन्हें समझाकर कहना कि मरवण आपकी पत्नी है और आप उसके भर्तार हो। मेरे (मरवण के) मन–तन और चित्त पर आपका ही अधिकार है। हे स्वामी! आप शीघ्र आओ और अपनी ब्याहता को लिवा ले जाओ। हे नरवरगढ़ के राव! आप तुरंत पिंगलगढ़ आ पहुँचो।

खेल का आरम्भ

मरवण हाथ जोड़कर कलिंजड़ी से प्रार्थना करती है– हे बहन! तू मेरा संदेशा पहुँचा दे। तू मुझ पर यह एहसान कर दे। जब तक जीवित रहूँगी, तब तक तेरा यह अहसान याद रखूँगी।

मरवण की आर्त प्रार्थना सुनकर कलिंजड़ी बोली– अरे कुँवरी सुनो, रेमा मालन बहुत चतुर है। वह कोई भी दाँव नहीं लगने देगी। हे मरवण! उसने तेरे भर्तार को इस प्रकार मोहित कर रखा है कि वह अपनी ब्याहता का नाम तक भूल गया है।

वह रेमा बहुत जानकार है। वह भूत–भविष्य तक की बातें जान लेती है। वह मेरा काम तमाम करे देगी। मेरे प्राण हर लेगी। हे मरवण कँवरी! मैं तेरा संदेश कैसे ले जाऊँ और किस प्रकार तेरा काम सफल करुँगी ?

कलिंजड़ी आगे कहती है– विरहण की वेदना विरहण ही जानती है। मैं तेरे लिए अपने प्राण न्यौछावर करके भी तेरा कार्य सिद्ध करुँगी। मैं प्रेमियों के बिछड़ने की पीड़ा समझती हूँ। इसलिए– हे कँवरी! मैं संदेशा लेकर अवश्य जाऊँगी, श्रीराम मेरी लाज रखेंगे।

हे मरवण! तू अपने हृदय का कागज बना, सुरति की प्रार्थना तैयार कर, नयनों के काजल की स्याही बना ले और आँसुओं की कलम–दवात बना ले। इस प्रकार– हे मरवण कँवरी! तू अपना संदेशा लिख दे। मैं एक विरहन के हितार्थ रेमा मालन की घात सह लूँगी।

हे मरवण कुँवरी! मैं तेरा संदेशा अवश्य ले जाऊँगी। इसे मैं एहसान नहीं जानूँगी। यदि मेरे प्राण न्यौछावर करने से विरहन का जोड़ा जुड़ गया, तो मैं स्वयं को धन्य मानूँगी।

कलिंजड़ी के कहे अनुसार मरवण ने पत्र लिख दिया। पत्र में क्या लिखा वह सुनो– 'हे मेरे भर्तार कुँवर ढोला! आपका और मेरा विवाह बालपन में हो गया था। पोतणों में ही हथलेवा छुड़वाया गया था। मेरा नाम मरवण है। हे मेरे भर्तार! आप मुझे लिवाने पिंगलगढ़ पधारना।

हे ढोला कुँवर! पत्र तो पढ़ा भी जा सकता है, किन्तु भाग्य नहीं पढ़ा जा सकता। हे भर्तार! बालक होता तो मैं अपने आँचल में छुपा लेती, किन्तु यौवन नहीं छुपाया जा सकता।

हे कुँवर ढोला! बालपन में मेरा विवाह माँ–बाप ने कर दिया था। मैं मरवण आपकी पत्नी हूँ। मैं गोखाड़े (महल की छोटी खिड़की) में देख–देखकर आपकी वाट निहार और जार–जार रो रही हूँ।

हे ढोला! मेरी वय की सखियाँ तो अपने ससुराल चली भी गई हैं। वे श्रावण तीज

पूजने भी आ गई हैं। मेरे भी मन में ऐसी उमंग उठती है कि मुझे भी मेरा पति विदा करवाकर ले जाए और मैं भी अपनी ससुराल से अपने मायके श्रावण में तीज पूजने आऊँ। श्रावण में बाग में झूले–झूलें, अपनी सखियों के साथ गीत गायें।

हे मेरे भर्तार! आप तुरंत साँडनी (ऊँटनी) तैयार कर लो और समय रहते मुझे लिवाने आ पहुँचो।

हे नरवरगढ़ के स्वामी! हे मरवण के भर्तार! आप साँडनी पर सवार होकर शीघ्र आ जाओ। कलिंजड़ी के कहे अनुसार मरवण ने पत्र लिख दिया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और कलेजे में विरहाग्नि धधक रही थी। वह बार–बार सोचती थी– क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ? मरवण के मन की व्याकुलता कलिंजड़ी समझ गई। उसने कहा– हे मरवण! मन को पक्का कर लो। चित्त में धैर्य धारण कर लो। सुरखाब का पंख लेकर अपने परण्ये (पति) को पत्र लिख दो।

मरवण ने अपने कलेजे की कोर (टुकड़े) को आँसुओं में बहकर आने वाले काजल की स्याही में डूबोकर अपने प्रियतम ढोला कुँवर को पत्र लिख दिया। कलिंजड़ी पत्र लेकर हवा के वेग से उड़ चली। नरवरगढ़ की सीमा में पहुँचते–पहुँचते दिन ढलने को आ गया। रेमा तो बहुत ही चतुर मायावी थी। वह बारह कोस तक के पक्षियों को पहचान लेती थी। कलिंजड़ी को देखते ही उसने अपनी माया से उसकी मंशा जान ली। उसने कहा– अरे! यह तो मरवण की दूती है। पिंगलगढ़ से आई है। रेमा सावधान हो गई। इधर तो कलिंजड़ी ढोला के महल के कंगूरे पर आकर बैठी, उधर रेमा मालन ने जादू का बहुत बड़ा बाज उड़ाया। बाज गया और असावधान बैठी कलिंजड़ी पर झपट पड़ा। कलिंजड़ी धरती पर आ गिरी। रेमा ने तुरंत अपनी कटार से उसका गला काट दिया। उसके गले में बंधी चिट्ठी खोलकर जला दी। कलिंजड़ी नरवरगढ़ में चीखी उसकी चीख पिंगलगढ़ के बाग में कलिंजड़ी की वाट तकते उसके कलिंजड़े के कलेजे में जा लगी। कलिंजड़ा कराह उठा। वह समझ गया उसकी कलिंजड़ी मारी जा चुकी है। सारी व्यथा कथा उसने मरवण को जा सुनाई। मरवण उसकी दशा देखकर बिलख उठी। अरे कलिंजड़ा! मैं तेरी अपराधिनी हूँ। मेरे कारण तुझे बिछोड हुआ। तू मुझे क्षमा कर दे। मरवण की बात सुनकर कलिंजड़ा ने कहा– हे मरवण कुँवरी! माफी माँगने से क्या होगा? मेरी कलिंजड़ी तो मर गई। मेरा बिछोह तो हो गया। अब मेरे जीवित रहने का भी क्या अर्थ है? मैं तो जीवित ही मरे समान हूँ। हे कुँवरी! यह सच है कि तेरे कारण मेरी कलिंजड़ी मरी और उसका बिछोह भोगना पड़ रहा है, किन्तु मैं तुझे श्राप नहीं दूँगा। मेरी कलिंजड़ी दो बिछड़ों के मिलाने के प्रयास में मरी है। यह उसका पुण्य कार्य था।

कलिंजड़े की ऐसी भावपूर्ण बात सुनकर मरवण भाव–विभोर हो उठी। उसकी आँखों की तराइयाँ भर आईं। कंठ रुंध गया। उसने साहस बटोरकर कलिंजड़ा से कहा– अरे कलिंजड़ा! तेरा दुःख मैं जानती हूँ। तू मुझे अवश्य श्राप दे। ऐसा श्राप दे कि मैं जलकर राख बन जाऊँ। इससे मेरा विरह दुःख भी मिट जाएगा। बिरही/विरहन का श्राप अकारथ नहीं जा सकता।

मरवण की बात सुनकर कलिंजड़ा बिना कुछ बोले वहाँ से चला गया। कलिंजड़े के जाने के पश्चात् मरवण कुछ देर वहाँ सुन्न–मुन्न खड़ी रही, फिर वह दूसरी कलिंजड़ी के पास गई। उसने कलिंजड़ी से कहा– हे कलिंजड़ी! तू मेरे उस जन्म की बहन है, तू मुझ पर उपकार कर दे। मेरा संदेशा मेरे प्रिय के पास पहुँचा दे, मेरे झर–झर बहते नयनों पर दया कर दे। कुँवरी की बात सुनकर कलिंजड़ी बोली– हे मरवण! सुनो,

कलिंजड़ी मालण रेमा बहुत मायावी और शक्तिशाली है। उसकी माया को समझना और तोड़ना बहुत कठिन है। हे मरवण! तूने एक बिछोह तो पहले ही करवा दिया। एक और क्यों करवाना चाहती हो?

मरवण कहती है– हे कलिंजड़ी! तू बहुत चतुराई से जाना और रेमा मालन से सावधान रहना। तू नरवरगढ़ ढोला के पास मेरा संदेशा ले जा। मेरा यह संदेश मेरे प्रिय के पास पहुँचा कर हमारा मिलाप करवा दे।

कलिंजड़ी ने कहा– हे मरवण! पहली वाली कलिंजड़ी ने अपना बलिदान दे दिया है। अब तू मुझे क्यों मरवाना चाहती है? रेमा ने बहुत बड़े पिंजरे बनवा रखे हैं। उसने जबरदस्त बाज भी पाल रखे हैं। हे मरवण! मुझसे तेरा दुःख देखा नहीं जा सकता। मैं तेरे लिए अपने प्राण न्यौछावर करने को तत्पर हूँ। मैं तेरा संदेशा पहुँचाऊँगा और ढोला से मिलाप करवाऊँगा। हे मरवण! तू झटपट अपना संदेश लिख दे। मैं तुरंत उड़ जाऊँगी। तू मेरे गले में अपना पत्र बाँध दे। मैं तेरे प्रिय को पहुँचाकर तेरा उससे मिलाप करवा दूँगी।

हे मरवण! विरह बिछोह शूल की भाँति कलेजे में चुभा रहता है। तू तत्काल पत्र लिख दे। इसमें विलंब करना उचित नहीं है। कलिंजड़ी की बात सुनकर मरवण के मन में आशा की किरण जाग गई। उसने पत्र लिखा। पत्र में लिखा– हे ढोला कुँवर! न तो मैं काणी हूँ और न कूबड़ी, न तो मैं लूली हूँ और न लंगड़ी। बालपन में तेरे संग में विवाह करवाया गया था। इस कारण मैं आपकी पत्नी हूँ। मैंने एक कलिंजड़ी के साथ अपना संदेशा भिजवाया था। रेमा ने उसके प्राण ले लिए। हे ढोला कुँवरजी! संदेशा

मिलते ही तेजगति साँडनी पर सवार होकर मुझे लिवाने आ पहुँचो। हे कुँवर! मेरे साथ आप न्याय करो। हे बना जी! मेरी आर्त अर्ज सुनकर अपनी परणीता को लेने आ पहुँचो। मेरे भीतर जो विरहाग्नि जल रही है उसे अपनी मिलाप द्वारा आकर शांत करो।

ऐसा संदेश लिखकर मरवण कुँवर! ने कलिंजड़ी के गले में बाँध दिया। कलिंजड़ी तत्काल नरवरगढ़ की ओर उड़ चली।

कलिंजड़ी उड़ते–उड़ते नरवरगढ़ की सीमा में जा पहुँची। रेमा मालन की निगरानी बहुत मजबूत थी। उसने कलिंजड़ी को दूर से ही ताड़ लिया। वह उसे देखते ही समझ गई कि यह अवश्य ही पिंगलगढ़ से मवरण का संदेशा लाई है। रेमा ने उस कलिंजड़ी के प्राण हर लिए। जब पूरा अठवाड़ा बीत गया और कलिंजड़ी वापिस लौटकर नहीं आई, तब मरवण समझ गई कि कलिंजड़ी अवश्य ही मारी जा चुकी है। मरवण व्याकुल होकर बाग में गई और उसने समस्त पंख पखेरुओं से आर्त प्रार्थना की। किसी ने भी उस पर दया नहीं की। आखिरकार एक सुग्गे को उस पर दया आ गई। उसने मरवण से कहा– हे कँवरी! आप रोओ मत। कागज लिखो और मेरे गले में बाँध दो। मैं अवश्य ही तुम्हारा पत्र आपके भर्तार ढोला कुँवर तक पहुँचा दूँगा। आप मेरा पूरा पक्का विश्वास रखो। सुग्गे का विश्वास पाकर मरवण को धैर्य बँध गया। उसने फिर से पत्र लिखा। पत्र में लिखा–

हे ढोला कुँवर! मैंने इससे पहले दो बार कलिंजड़ियों द्वारा समाचार भेजे थे। उन दोनों के प्राण रेमा मालन ने हर लिए। तीसरा यह मेरा भाई सुग्गा मेरा संदेशा लेकर आ रहा है। आप संदेशा पढ़ते ही अपने धर्म का निर्वाह और अपनी मुझ ब्याहता का मान अवश्य रखना। यदि इस बार आप नहीं आए, तब मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी।

हे साहेब–स्वामी! मैं पत्र लिख–लिखकर हार गई हूँ। रस पूरित फसल पकने पर (देह में यौवन पूरी तरह छा गया है) है। नीम्बू पक गए हैं, उनमें रस भर चुका है। यौवन गदरा गया है। हे ढोला कुँवर! यौवन रूपी रसीला फल इतना रसपूर्ण है कि नख लगते ही रस चू पड़ता है। मेरे भाग्य खोटे हैं। यौवन रूपी फल का चाखणहार नहीं आ पा रहा। हे मेरे परण्ये (भर्तार)! शीघ्र आ पहुँचो। रस चू पड़ना चाहता है। इस यौवन रूपी रसीले फल को चखने और खाने का स्वाद बहुत मीठा है। आप तुरंत आ जाओ।

हे मेरे भर्तार! मुझे रह–रहकर आपकी याद आ रही है और हृदय में मधुर नाद संगीत बज रहा है।

मेरा संदेश लेकर आने वाली कूँजों को रेमा ने मार डाला। इस बार मेरा यह धर्म भाई सुग्गा आ रहा है। इसकी रक्षा और मान आप रखना। मेरे पत्र का भी मान रखते

हुए आप तत्काल पिंगलगढ़ रवाना हो जाना। बाग में दाखें पक (यौवन रसीला हो गया है) गई हैं। उन रसीली दाखों को चखने वाले आप ही हैं। हे भँवर जी! आप रस पीकर तृप्त होने के लिए तुरंत आ जाओ।

मरवण ने चिट्ठी लिखकर सुग्गे के कंठ में बाँध दी। मरवण ने सुग्गे से कहा–हे मेरे भाई! तेरा रक्षक देव है। तू मेरे पूर्व जन्म का भाई है। आ, मैं तेरे पैर में रक्षा का डोरा बाँध दूँ। यह डोरा तेरी रक्षा करेगा। ऐसा कहकर मरवण ने सुग्गे के पाँव में रक्षा का डोरा बाँध दिया। सुग्गा वहाँ से उड़कर नरवरगढ़ की ओर उड़ चला।

सुग्गा अगले दिन संध्या होते–होते नरवरगढ़ पहुँच गया। रेमा मालन पूरी तरह सावधान थी। उसकी चौकसी चाक–चौबंद थी। उसने बारह कोस से ही सुग्गे को आते हुए देख लिया था। उसने अपनी माया दृष्टि से जान लिया था कि यह सुग्गा पिंगलगढ़ से आ रहा है। निश्चित रूप से मरवण का संदेशा ढोला के नाम लाया है। जितनी सावधान मरवण थी, उतना ही सावधान सुग्गा भी था। उसने रेमा का भाव समझ लिया। वह जाकर महल के कंगूरों पर बैठ गया। रेमा मालन बाज बनकर सुग्गे पर झपट पड़ी। सुग्गा सावचेत था। वह फुर्र से उड़ा और महल के भीतर प्रवेश कर ढोला के पलंग पर जा बैठा और टें–टें करने लगा। बाज बनी रेमा सुग्गे को खोजती–खोजती महलों में आ पहुँची। तब तक ढोला जाग चुका था। उसका मदिरा का नशा उतर गया था। रेमा उस सुग्गे पर झपट्टा लगाए, तब तक सुग्गा उड़कर ढोला की गोद में जा बैठा।

ढोला ने डंडा उठाकर बाज पर ऐसा जोर का वार किया कि वह घींऽ–घींऽ करती हुई बाहर उड़ गयी। थोड़ी देर में रेमा असल रूप धर दौड़ी–दौड़ी आई। उसने देखा, सुग्गा ढोला की गोदी में बैठा हुआ है। ढोला कुँवर ने रेमा से कहा– रेमा देखो, कितना सुन्दर सुग्गा है। ढोला ने जैसे ही रेमा की ओर सुग्गे सहित हाथ बढ़ाया कि सुग्गा घबरा उठा। रेमा सुग्गा पकड़ने के लिए जैसे ही लपकी। सुग्गा सावचेत हो गया। रेमा ने सोचा था कि, मौका अच्छा है। मैं सुग्गे को अपने कब्जे में लेकर इसकी गर्दन मरोड़ दूँगी, किन्तु सुग्गा भी बहुत चतुर था। वह फुर्र करता हुआ फिर से ढोला कुँवर की गोदी में जा बैठा। सुग्गे की चतुराई और फुर्ती देखकर रेमा मालिन गुस्से में पैर पटकती हुई कक्ष से बाहर निकल गई। ढोला ने सुग्गे की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। हाथ फेरते समय उसे पता चल गया कि उसके गले में सोने का तार है और तार में बँधी चिट्ठी ढोला ने झट खोली और उसे पढ़ने लगा। चिट्ठी में मरवण का संदेशा लिखा था– 'राजा नल मेरे ससुर लगते हैं और पिंगल जी मेरे पिता। यह सुग्गा मेरा धर्म का भाई है और आप मेरे भर्तार है'। मुसीबत पड़ने पर आपके पिता राजा नल नरवर छोड़कर हमारे राज्य पिंगल में आए थे। रानी दमयंती जी भी उनके साथ आई थीं। वे आपकी माता

थीं। मैं मरवण आप की साज अर्थात् शोभा हूँ। बालपन में ही मुझे आपके साथ ब्याह दिया था। मैं आपकी वाट निहार रही हूँ। हे प्रिय ढोला जी! आप तुरंत आ पहुँचो। मैं यौवन को नहीं काट पा रही हूँ। हे कँवर जी! आपको किस कामिनी ने अपने वश में कर रखा है? किसके मोहपाश में आप बँधे हैं? मैंने लिख–लिख कर परवाने भेजे हैं, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। जिन कलिंजड़ियों को मैंने संदेशा लेकर भेजा था। वे वापिस पलटकर नहीं आई या तो मेरा भाग खोटा है या फिर– हे ढोल कुँवर! आपके हृदय में खोट आ गया है। यह सुआ मेरा बहुत लाड़ला है। यह मेरा पूर्वजन्म का भाई है। आप संदेशा मिलते ही तीन दिनों के भीतर मेरे देश पिंगलगढ़ आ जाओ और मुझे धैर्य बंधाओ।

हे ढोला कुँवर! आप तुरंत आ जाओ। मेरा धैर्य अब टूटने लगा है। मेरे इस सुवटे भाई की रक्षा का ध्यान रखना। यह मेरा भाई है। मेरे हृदय में बार–बार कई प्रकार के विचार आते हैं। मन में व्याकुलता हो रही है। रामजी ने मुझे पंख नहीं दिए हैं, मैं उड़कर भी कैसे आऊँ? मेरा यौवन विरहाग्नि में जलकर राख होने को है। हे ढोला बनाजी! आपके बिना कोई भी मेरे भीतर की अग्नि लपटों को नहीं बुझा सकता।

हे प्रियतम! सावन लग गया है। मेह सरसाने लगा है। वाट निहारते–निहारते आँखें दुखने लगी हैं। आपके प्रति स्नेह सरसने लगा है। चैत्र मास चैतन्यता का महीना होता है। वृक्ष लताएँ आदि भी चेत जाती हैं। वैशाख शुभ–पावन मास है। जेठ ने तो खूब तपा दिया। आषाढ़ मास में आशा बँधी कि आप अवश्य आ जाएँगे और अपनी परणी को लिवा ले जाएँगे। जैसी स्थिति मेरी है, आपकी भी वैसी ही होगी। मैं आपको पत्र लिखना चाहती थी, किन्तु कैसे लिख भेजती? कोई खास पत्रवाहक भी नहीं था। अब कूँज के विश्वास पर यह पत्र लिखकर भेज रही हूँ।

हे गोरी के सायब! यह देह आपके विरह में सूखने लगी है। यह छप्पर (देह) विरह में तपकर पुरानी होने लगी है। इसका देह ढाँचा तड़कने लगा है। हे ढोला! मेरा हृदय धड़क रहा है। साँस रुक–रुककर चलने लगी है। हे मेरे ढोला कुँवरजी! आप शीघ्र आ जाओ मेरा विश्वास डगमगाने लगा है। आशा–निराशा में बदलने लगी है।

बादलों में बिजली चमक रही है। आपकी परणी मरवण भयभीत हो रही है। हे मेरे स्वामी भर्तार! शीघ्र आ पहुँचो। यह प्राण रूपी तोता देह रूपी पिंजरे से बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगा है।

वर्ष के महीने बीत गए हैं, यह सावन भी अब बीतने लगा है। हे मरवण के सायब!

शीघ्र आ जाओ। मेरा जीव अब बहुत व्याकुल हो रहा है। हे ढोला कुँवरजी! कुआँ हो तो उसे पार भी कर लेती। समुद्र पार कैसे करुँ, अर्थात् आपका नगर निकट होता तो मैं खुद ही पहुँच जाती। सफर लम्बा है। कैसे पहुँचू ?

हे मरवण के भर्तार ढोला कुँवर! शीघ्र आ जाओ। आपकी परणी को विरहाग्नि जला रही है। हे नरवरगढ़ के राजा ढोलाकुँवर! मेरा पत्र पढ़ते ही तत्काल पिंगल आ पहुँचो। शीघ्र चढ़ आना। विलंब मत करना।

हे ढोला कुँवरजी! पत्र तो पढ़ा भी जा सकता है, भाग्य कैसे पढूँ? हे ढोला कुँवर! तुरंत आ पहुँचो। जोबन कसमसा रहा है। यह तन तो काँच की तरह कच्चा है। इसे विरहाग्नि की मार लग रही है। हे ढोला कुँवर! आकर अपनी मरवण को कंठ से लगा लो। यह जन्म और यह यौवन दुबारा नहीं मिलेगा। आप साँडनी भीड़कर तुरंत पहुँच जाओ। इस जन्म और यौवन की हानि को रोक लो। आपकी परणी महल पर सो रही है। आकाश में तारे झलमिला रहे हैं। जब भी नींद खुलती है, स्वयं को अकेला ही पाती हूँ। तन मन थर–थर काँपने लगता है। जिस प्रकार जल के बिना मछली तड़पती है, वैसे ही मैं आपके बिना कलप रही हूँ। हे ढोला कुँवर! तुरंत आकर विरहाग्नि को बुझा दो। सावन की बौछारें ऐसी लग रही हैं मानो कामदेव के बाण हों। हे मेरे प्राणाधार ढोला कुँवरजी! झट–पट आ जाओ।

बादल गरज रहे हैं। बिजली जल रही है। मूसलाधार वर्षा हो रही है। ये वर्षा मुझ विरहन के तन पर अंगारों की तरह लग रही है।

हे कुँवर! ऋतुएँ तो आती–जाती रहती हैं। दिन और रात भी पलटते रहते हैं। मरवण के लिए तो रोज सावन ही है। नयन दिन रात बरसते हैं।

बागों में झूले पड़ गए हैं। तीजों का त्योहार मनाया जाने लगा है। सखियाँ गीत गाती हुई तीजें मना रही हैं। झूले झूल रही हैं। यदि मरवण के हृदय में ठंडक होती, तब वह भी तीजें खेलती। बागों में झूले झूलती और सखियों के साथ गीत गाती है। काश! ढोला कुँवर आप सांडनी पर सवार होकर पहुँच जाते, तब मेरे लिये भी तीज–त्योहार सार्थक हो जाता।

हे ढोला कुँवर! वर्ष के सभी महीने बीत गए हैं। फाल्गुन की सुगंध फैलने लगी है। आपकी राह तकते–तकते यौवन और यौवन की मादक सुवास बीतने लगी है। हे मेरे सायब! आप शीघ्र आ जाओ। आपकी मरवण बहुत उदास है। हे ढोला कुँवरजी! अब मत तरसाओ यह फाल्गुन महीना खास महीना है। हे ढोला कुँवर! शीघ्र आ जाओ।

सेज को फूलों से सजा रखा है। आपकी मरवण पर यौवन की मादकता और सरसता भरपूर है। कांधली पर कौआ बोल रहा है। यह प्रियतम के आने का संकेत है। शीघ्र आ पहुँचो, ऐसा न हो कि आपके आते–आते यौवन रसहीन हो जाये और सेज के फूल मुरझा जायें।

हे कँवरजी! फाल्गुन हरस उठा है। आकाश में गुलाल उड़ रही है। आप आ जाओ। हिलमिलाकर रंग–रस खेलेंगे। मरवण को धन्य कर दो।

हे ढोला कुँवरजी! झट आ जाओ, बागों में बहार छा रही है। आप पूरी तरह सज–धजकर आना। यही आपकी ब्याहता की मनवार जानना।

हे ढोला कुँवरजी! यदि यह फाल्गुन भी चूक गया, तब तो मैं जोगिया वेश धारण कर लूँगी। आप शस्त्र साज कर आ जाओ। सदा सावधान रहना।

चिट्ठी पढ़ते ही ढोला को क्रोध आ गया। ढोला ने कहा– इस रेमा राँड ने कैसा गजब किया? चिट्ठियाँ फाड़ी सो तो फाड़ी, बेचारी कलिंजड़ियों के प्राण हरण कर लिए। दुखियारी मरवण मेरी राह तक रही है। यह मालन रेमा मेरे ऊपर वशीकरण मंत्रों द्वारा मोह जाल डाल रही है। इसने मोहन और उच्चाटन मंत्रों का प्रहार तो मुझ पर कर ही रखा है, अब यह मारन मंत्र का प्रहार भी कर सकती है। इन मंत्रों का प्रयोग कर यह मरवण को मेरे से दूर कर सकती है। उसका मन उच्चाट सकती है। उसे मार भी सकती है। हे भगवान! तीन दिन में सात सौ कोस का सफर किस प्रकार तय हो पाएगा? ऐसा विचार कर ढोला अपनी सांडनी के पास गया। उसने सांडनी से कहा– तू इस भव की तो मेरी सांडनी है, किन्तु पूर्वजन्म की तू मेरी माता है। मेरा कारज तू सार दे। मेरी परणी मेरी राह तक रही है। सात सौ कोस का तो फासला है और तीन दिन की मियाद। ढोला की बात सुनकर भूरी सांडनी बोली– हे ढोला! तू मेरी राय सुन ले। मेरी क्षमता एक दिन में एक सौ कोस चलने की है और कबरी की पच्चास कोस किन्तु काली ने जो बोतड़ा पैदा किया है, वह तो प्रतिदिन पिंगलगढ़ की बाड़यों में चरने जाता है। वहाँ से संध्या समय चलकर आधी रात को वापिस अपने मुकाम पर लौट आता है। वह तीन दिन में अवश्य ही सात सौ कोस की मंजिल तय कर सकता है। वह जवान करेला प्रतिदिन वहाँ चरने जाता है।

ढोला अपनी भूरी सांडनी के नेहरे (बाड़े) से चलकर करेला के बाड़े में पहुँचा। उसने देखा करेला आराम से बैठा हुआ जुगाली कर रहा था। चारों ओर मरवा, मोगरा, चम्पा, चमेली की मनभावन सुगंध फैल रही थी। ढोला ने करेला के पास जाकर प्रार्थना

की– हे करेला! तू इस जन्म में बोतड़ा (युवा ऊँट) है, किन्तु पूर्व जन्म का तू मेरा भाई है। हे वीर! मुझ पर बहुत बड़ी मुसीबत आन पड़ी है। तू ही मेरी इस पीड़ा को मिटा सकता है।

पिंगलगढ़ में मेरी बींदणी (पत्नी) है। वह वहाँ खड़ी मेरी राह तक रही है। बालपन में माँ–बाप ने हमारा विवाह करवा दिया था। मैंने अपनी बींदणी मरवण से वचन किया है कि सात सौ कोस की मंजिल तय कर मैं उसे लेने अवश्य पिंगलगढ़ पहुँच जाऊँगा। ढोला के वचन सुनकर करेला बातड़ा बोला– हे ढोला कुँवर! मैं तेरे वचनों की रक्षा करुँगा। हवा से बातें करता मैं वायुवेग से दौड़ते हुए। सात सौ कोस चलना मेरे लिए पक्की बात है। मैं आपको रातों रात पहुँचा दूँगा और ढोला कुँवर आप मन में किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो।

हम (हमारा खानदान) राजा नल के चाकर है। ये सात सौ कोस मेरे लिए कुछ खास नहीं है। राजा नल के समय की काठियाँ (ऊँट पर कसने की बैठक) पड़ी है और दमयंती रानी के समय की बक्शी झूल (काठी पर बिछाने की झूलदा सुन्दर एक प्रकार की बिछावन।) सोने–चाँदी के काम की सुन्दर नकेल और मोतियों से जड़ी बूल (गले की लटकन) पड़ी है। हे ढोला! आप तो अपने बदन पर वस्त्रों को अच्छी तरह कस लें। (एक मुहावरा–अच्छी तरह तैयार हो जाना) यही बात करेला बोतड़ा के लिए भी है। मैं वायुवेग से उड़ता हुआ तुझे तेरी परणी से मिलवा दूँगा।

हे ढोला कुँवर! आप मन में धैर्य धारण करो। मन में किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो। मैं एक रात और एक दिन में सात–कोस की मंजिल तय कर लूँगा। आप तो मुझ पर काठी अच्छी तरह कस दो। तुरंत सवार हो जाओ। मैं तुरंत मार्ग तय करुँगा।

करेला की यह बात सुनकर ढोला आश्वस्त हो गया। वह तुरंत भंडार में गया और वहाँ से काठी लाकर स्वयं ही करेला पर कस दी। उस पर झूल आदि सजा दी। वह करेला की पीठ पर सवार हो तब तक वहाँ रेमा आ पहुँची। वह ढोला के प्रति लाड़ लड़ाती हुई बोली– अरे ढोला कुँवरजी! आप जहाँ भी जाना चाह रहे हैं, वहाँ अवश्य पधारें किन्तु अणजीम्याँ (बिना भोजन किए) मत जाओ? भोजन तैयार है। झटपट जीम लो और् समय से अपनी अभीष्ट यात्रा पर निकल जाओ। मैं आपको नहीं रोकूँगी। ढोला रेमा की मीठी बातों में फँस गया। रेमा ने भोजन परोस दिया। ढोला भोजन करने बैठ गया। मौका देखकर रेमा लोहार के यहाँ पहुँची और लोहार से बोली– हे लोहार भाई! तू इस जन्म का तो लोहार है और पूर्वजन्म का तू मेरा भाई है। मेरा कारज सार दे।

ऐसा उपाय कर, चार तीखे भाले जैसे कील घड़ दे। कील पक्के लोहे के घड़ना। मैं तुझे मनवांच्छित मूल्य दूँगी। इस दुखिया नारी का दुःख मिटा दे।

लोहार ने तत्काल चार कीलें घड़ दी। वह उन्हें लेकर बाड़े में पहुँची और करेला के चारों पैरों में ठोक दी। वहाँ से वह ढोला के पास पहुँची और हाथ जोड़कर अर्ज करने लगी–

हे ढोला कुँवर! शीघ्र प्रस्थान करो। आपकी परणी वाट ताक रही है। करेला एकदम तैयार बैठा है। आप समय रहते पिंगलगढ़ की घाट (सीमा) जा पहुँचो।

ढोला मालण रेमा से विदा लेकर करेला के पास गया, भगवान का स्मरण किया, धरती माता को धोक लगाई। करेला का भी वंदन किया और उस पर सवार हो गया। करेला के पैरों में तो कीलें ठुकी थी। वह जैसे–तैसे संध्या तक पच्चास कोस ही पार कर पाया। यूँ करते–करते एक दिन–एक रात बीत गई। करेला की यह दशा देखकर ढोला के मन में चिन्ता उठने लगी। उसने करेला से कहा – 'अरे करेला! तेरी प्रशंसा तो खूब सुनी थी । तूने भी खूब बढ़–चढ़कर बातें की थीं। तुझे एक सौ कोस पार करने में एक दिन और एक रात लग गई। अरे! बता मेरे कोल–करार की पूर्ति कैसे होगी? अरे! तुझे अचानक क्या हो गया है? तेरे घुटने टूट गए हैं अथवा तीजरा बुखार चढ़ गया है?

ढोला की बात सुनकर करेला बोला– 'हे ढोला कुँवरजी! मेरी पीठ पर से नीचे उतरो और मेरा हाल–चाल जान लो। मेरे चारों पैरों में रेमा ने कीलें ठीक दी हैं। मैं चलता हूँ तो मेरे कलेजे में पीड़ा की झाल उठती है। आप तुरंत मेरे पैरों में से कीलें बाहर निकालो और मेरे पैरों में पट्टियाँ बाँध दो। फिर मुझ पर सवारी करो। हे ढोला! मैं हवा को भी अपने कंधे पर बैठाकर ले चलूँगा।

करेला की बात सुनकर ढोला उसकी पीठ से नीचे उतरा। देखा तो सचमुच उसके पैरों में कीलें ठुकी थीं। ढोला ने कहा– अरे रांड रेमा! तूने मेरे साथ छल किया है। अरी दुष्टा! मैं तेरी खोज तो अवश्य करुँगा। पहले मैं अपनी ब्याहता मरवण के पास पिंगलगढ़ पहुँच जाऊँ। उसने करेला के पैरों में गड़ी कीलें निकाल फेंकी। चारों पैरों पर मजबूत पट्टियाँ बाँध दी। वह उसकी पीठ पर सवार हो गया। करेला हवा से बातें करता हुआ दौड़ चला। हवा पीछे और् करेला आगे। तीसरे दिन वह दोपहर होते–होते पिंगलगढ़ की सीमा में प्रवेश कर गया। ढोला ने एक बाग में मुकाम लगा दिया। बाहर बावड़ी पर पनिहारिनें पानी भर रही थीं। करेला ने ढोला से कहा– कुँवरजी आप भी

थोड़ा विश्राम कर लो। मुझे भी भूख लग आई है। आप मेरी काठी खोल दो मैं थोड़ा चर लूँ। पिंगल की झाड़ियाँ बहुत मीठी है। ढोला ने उसकी काठी खोल दी और पीठ थपथपा कर उसने चरने भेज दिया। ढोला ने सोचा– मरवण को संदेश कैसे भेजूँ? तभी पनघट पर पाँच स्त्रियाँ पानी भरने आईं। उसने उनसे कहा– मरवण कुँवरी को मेरा संदेशा पहुँचा दो कि ढोला कुँवर पनघट पर आ पहुँचा है। उसे प्यास लगी है। बाग में मुकाम है। तत्काल आकर उसकी प्यास बुझाओ।

ढोला कुँवर के आगमन का समाचार सुनकर मरवण का मन हर्षित हो उठा। उसके मुख पर आभा आ गई। उसने अपने हृदय में विचार किया– ढोला कुँवर की परीक्षा लेना चाहिए। देखें, उनको सत्त कितना है? मरवण ने अपनी खास दासी को बुलवाया और् कहा– गाँव सीमा में बागवाली बावड़ी पर मेरा भर्तार आ पहुँचा है? उसका नाम ढोला कुँवर है। वह मुझे नहीं पहचानता। तू मेरी वेशभूषा धारण कर बावड़ी पर जा। देख–परख कि मेरे भर्तार का सत्त कितना पक्का है।

दासी हीरां सोलह श्रृँगार साज, बण–ठण, काजल्या, झांझर पहन, टीकी, मेहंदी–महावर रचा, केश में मोती माला गूँथ हाथों में झिंगार झारी ले, अटकती–मटकती सात सहेलियाँ संग ले रुनक–झुनक करती, लम्बा घूँघट निकालकर बाग बावड़ी जा पहुँची। बावड़ी पर चम्पा के पेड़ पर सुग्गा बैठा था। दासी को आता देख सुग्गा बोला– ढोला कुँवर! सावचेत हो जाओ। मरवण का वेश धरकर उसकी दासी हीरां रनक–झनक करती आ रही है। उसे मरवण ने तुम्हारी परीक्षा के लिए भेजा है। जैसे ही हीरा ढोला के निकट पहुँची, वैसे ही ढोला ने कहा– हे हीरां! तू जहाँ है वहीं रुक जा और अपने मान–सम्मान को सुरक्षित रख वापिस लौट जा और तेरी कँवरानी को भेज। यह छला–छली का खेल खेलना बंद करो।

हीरां दासी ढोला कुँवर की डाँट खाकर वापिस महलों में लौट गई। उसने मरवण को सारी बात बता दी। हीरां की बात सुनकर नाथी नाइन बोली– मरवण कँवरी यह हीरां तो बहुत भोली है। इस बार मुझे जाने दो। मैं ढोला को मोह लूँगी। ऐसा कैसा सत्तवंत कुँवर है ढोला। मैंने अच्छे–अच्छों के सत्त भंग कर दिए हैं। ढोला की क्या बिसात।

नाथी नाइन की बात सुनकर मरवण ने कहा– ठीक है नाथी। तू भी मेरे ढोला का सत्त परख ले। ढोला सत्त पर कायम है और कायम रहेगा।

नाथी नाइन ने खूब श्रृँगार सजाया। मोतियों से मांग सजाई। केस–केस में मोती पिरोए, अणवट और बिछिया पहने। काजल्या झांझर पहनी, आँखों में सुरमा सारा, माथे

पर रखड़ी बंधवाई, गले में नौसर हार पहना,तारों जड़ी चूनरी, टुकियों वाली कंचुकी और साठकली का लहंगा पहना। हाथों में हाथी दाँत की चूड़ियाँ पहनी। सात प्रकार का इत्र लगाया। नाथी, मरवण का रूप धरकर चौदह सहेलियाँ साथ ले बावड़ी बाग की ओर चल पड़ी। सात सहेलियाँ गीताचार करती आगे और सात पीछे चलीं। सोने की झारी में सुगंधित गुलाब जल से सुवासित शीतल जल भरकर नाथी लटकती–मटकती बाग बावड़ी की ओर चल पड़ी। जैसे ही उसने बाग में प्रवेश किया, सुग्गा बोल उठा–ढोला कुँवर फिर से सावचेत हो जाओ। इस बार नाथी नाइन छल करने आई है। इसको तो पूरा पक्का पाठ पढ़ा दो। ढोला कुँवर सावधान हो गए और हाथ में कीमड़ी (बाँस की लम्बी–पतली लकड़ी) लेकर नाथी की पीठ पर ठोक दी। कीमड़ी की मार खा नाथी एकदम पीठ दिखाकर बाग से भागकर महल की ओर भाग खड़ी हुई। वह रोती झींकती मरवण के सामने पहुँची और सारी घटना कह सुनाई।

नाथी की बेगत हुई सो तो हुई, किन्तु उसके बाद काणी करकसा को भी रुआब आया। वह भी श्रृंगार कर सजधज कर तथा लम्बा घूँघट निकालकर बावड़ी पर जा पहुँची। उसकी तो और भी बुरी गत बनी। इसके बाद मरवण को पूरा–पक्का विश्वास हो गया कि मेरा परण्या सत्तवंत है। उसके मन में ढोला कुँवर के प्रति प्रेम के साथ सम्मान का भाव भी जुड़ गया। वह बोली– मेरा ढोला सतवंत है। हे सहेलियाँ! आओ और मेरा श्रृँगार करो। मेरा परण्या प्यासा है। मैं उसकी प्यास बुझाने स्वयं जाऊँगी।

सहेलियों ने कुँवराणी मरवण का श्रृँगार करना शुरू कर दिया।

मरवण महल में गई और जल में इत्र डालकर उसने स्नान किया। स्नान करने के पश्चात् उसने सूर्य को अर्घ्य देकर वन्दन किया। शारदा, भवानी माता के मंदिर जाकर बार–बार शीश नवाकर प्रार्थना करते हुए कहा– हे माता! आप मेरे साथ रहना। हे सिद्ध– रिद्ध के दायक गणेशजी! मैं अपने भर्तार से भेंटने जा रही हूँ, आप सिद्ध करना। हे देवताओं! आप मेरे सत्त की साक्षी देना, मेरी रक्षा करना। मेरे परण्ये से मेरा मिलाप करवा देना। हे देवों! ढोला कुँवर मुझे स्वीकार कर ले, ऐसा शुभ संयोग करना।

मरवण ने सोलह श्रृंगारों से स्वयं को सज्जित किया और अपने भरतार ढोला कुँवर से मिलने चली। वह सोलह श्रृँगारों में सजी–संवरी नई नवेली रतनार लग रही थी। उसने इन्द्रधनुष जैसी टुकियों वाली कंचुकी पहनी थी और उस पर तारों जड़ी चूनर ओढ़ी थी। उसने कुंचकी को कसने और अपने यौवन को कब्जे में रखने के लिए कसकर बांध ली थी। उसने जो लहंगा पहना था, वह कलियोंदार था और चलते समय ऐसा लगता था, मानो नृत्य कर रहा हो।

पैरों में झंकृत होने वाले काजल्ये (पायजेब) व रुनक–झुनक बिछियाँ पहन रखी

थी। जिनकी मधुर ध्वनि कानों में अमृत घोल रही थी। पैरों के झांझर की झणकार उसकी चाल को संगीत जैसी मधुरता दे रही थी। उसने गले में हीरों से जड़ा नौसरहार पहना था। नाक में सूरज–चाँद जड़ी नथी पहनी थी। शीश पर रखड़ी (शीश फूल) ऐसी गूँथी गई थी कि मानो कोई मणिधर नागिन रूप की रक्षा हेतु सन्नद्ध हो।

मरवण के कानों के सजे झुमके उसकी चाल के साथ ऐसे झूमते थे, मानो नृत्य कर रहे हों। कमर कंदोरा की लूम ताल देकर कानों के झुमके के नृत्य की संगत कर रही थी। आँखों में काजल और सुरमें की ऐसी रेखा खींची गई थी, मानो मुख पर दो मछलियाँ तैर रही हों।

मरवण की भौंहे कमाण की तरह तनी थीं तथा नयन बाण उस पर सज्जित थे। वह भौंहों की कमान पर नयनों के तीखें बाण छोड़ती बावड़ी बाग की ओर बढ़ रही थी। उसने मोतियों से मांग सजा रखी थी और भाल पर 'सत्त' की टीकी लगा रखी थी। कम्मर से भी नीचे काली भँवर नागिन जैसी चोटी झूल रही थी। मरवण मन मोहनी कामिनी की तरह सजी–संवरी निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी।

उसके हाथों में सौभाग्य चूड़ला तथा बाँहों में बाजूबंद सज रहा था। सखियों ने उसे फूल गजरों से ऐसा सजा दिया था कि श्रृँगारित मरवण सूरज–चन्द्रमा जैसी आभा से विभूषित हो उठी थी। जहाँ उसमें यौवन की सूर्य जैसी तपन थी, वहीं चाँद जैसी रूप माधुरी की शीतलता भी थी। इस प्रकार वह सोलह श्रृँगारों से सज–धजकर अपने परण्ये से मिलने बाग बावड़ी की ओर चली जा रही थी। उसने थोड़ा नमता हुआ घूँघट निकाल रखा था। मरवण अपने रूप सौंदर्य और यौवन के कौमार्य की सुगंध की सहेजे तन–मन से अपने प्रियतम भर्तार को मोहित करने जा रही थी।

उसके साथ सहेलियाँ हाथों में मोतियों के थाल लिए चल रही थीं। मरवण के हाथ में सोने–रूपे की जलझारी थी, जिसमें शीतल जल भरा हुआ था। उसके देह से सुवासित गंध सर्वत्र फैल रही थी। गहनों की झणकार से सारा वातावरण संगीतमय हो रहा था। सोने में सुगंध इसी को कहा जाता है।

मरवण उतावली के साथ आगे बढ़ रही थी। उसके मन में पीव मिलन की उत्कंठा जो थी। वह जितनी तीव्र गति से चलती थी। उतनी ही तीव्र गति से उसका कमर कंदौरा और गले का नौसर हार झूल–झूमकर नृत्य करते थे।

बाग में चमचमाती संगमरमर से बनी बावड़ी और आसपास चम्पा के पेड़ों का बगीचा। बावड़ी पर ढोला कुँवर विराजमान थे, उसी प्रियतम परण्ये से राजुल–मरवण गीताचार की राग–रागनियों के मध्य मिलने आई थी। संग–सहेलियाँ मधुर कंठों से

गीत गा रही थीं। उनकी मधुरता मन को हर्षित कर रही थी। मरवण जब कमर लचकाती हुई चलती थी, तो लगता है वह सारे संसार को मोह लेगी।

रणक–झणक करती गोरी मरवण ऐसी लग रही थी, मानो सहस्त्रबाहु की पुत्री जगत मोहनी ऊषा ने अवतार धारण कर लिया हो। वह सोलह श्रृँगार से सजी–धजी बाग में पहुँच गई। उसका हृदय धक–धक कर रहा था। पीव मिलन की आशा उद्दीप्त थी। वह बार–बार सोचती, न तो मैंने ढोला प्रियतम भर्तार को कभी देखा है न परखा है, उसकी साँसें रुक–रुककर चल रही थीं।

वह मन ही मन माता गौरी से प्रार्थना कर रही थी कि हे माता! मेरी लाज रखना। समस्त अला–बला से रक्षा करना। मेरे प्रियतम में सद्मति बनी रहे। वे मुझे तत्काल अपना कर कंठ से लगा लें।

आम के वृक्ष पर सुवटा बैठा था। उसने ढोला कुँवर को सावधान कर दिया। अरे ढोला कुँवर! सावेचत हो जाओ। स्वयं राजली मरवण कुँवरी आपसे भेंट करने आई हैं। ढोला कुँवर सावचेत हो गया। मरवण उसके सामने जा खड़ी हुई। दोनों के नयन आपस में मिल गए। साँसों और साँसों का मिलाप हो गया। दोनों ने एक दूसरे को मोह लिया। दोनों लम्बी–लम्बी साँस–उसाँस ले रहे थे। उनके पास शब्द ही नहीं बचे कि उनका उपयोग कर सकें। वाणी गूंगी हो गई। दोनों कुछ कहना चाहते थे, किन्तु मुँह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। अन्ततः मरवण ने स्वयं को संयमित किया और हाथ जोड़कर बार–बार विनय करने लगी। उसने कहा– आपके साथ मेरे माँ–बाप ने (पोतड़ों में) बालपन में मेरा विवाह कर दिया था। मैं आपकी ब्याहता हूँ और आप मेरे भर्तार हैं।

नमता घूँघट रखते हुए मरवण ने कहा– हे सायब जी! आप शीतल जलपान कीजिए। मैं झारी में ठंडा जल भरकर लाई हूँ। पहले आप जल पी लीजिए, फिर मेरे साथ महल चलिए।

मरवण की बात सुनकर ढोला ने कहा– 'मरवण! मैं जल तो पीऊँगा। मुझे प्यास भी बहुत लगी है, किन्तु मैं इस झारी का जल नहीं पिऊँगा। तुम कच्चे घड़े में कच्चे धागे के तार बाँध कर बावड़ी से पानी खींचकर मुझे पिला सको, तो पिला दो। मेरी प्यास उसी जल से बुझेगी।

मरवण ने सूर्य भगवान से हाथ जोड़कर कहा– हे सूर्य देव! आप सारे जगत के साक्षी हैं। आप मेरी लाज के रखवाले हैं। मेरी लाज की रक्षा करना। आप मेरी

साँस–साँस की साक्षी देना। मैं कच्चे तार में कच्चा घड़ा बाँधकर पानी भर लाऊँ, ऐसी सत्यशक्ति देना।

मरवण ने कुम्हार काका से घड़ोल्या मोलाया और चरखे से कच्चा सूत लाई। उसने माता गोरज से विनय की– हे माता! आप साक्षी हैं। मैंने या तो अपने माँ–बाप का मुँह देखा है या फिर साँडनी असवार ढोला कुँवर का। हे सूरज देवता! आप मेरी लाज रखना, आप मेरे 'सत्त' के आधार हैं। सब देवी–देवताओं को साक्षी बना मरवण कच्चा गड़ोलिया और कच्चा सूत लेकर बावड़ी की तरफ चली। मेरा सत्त माता गोरजा और मेरा भर्तार (ढोला कुँवर) रखेंगे। सूरज देवता मेरे सत्त के साक्षी हैं। वे मेरे सत्त की रक्षा करेंगे। हे माता गोरजा! मेरी लाज की रक्षा करना। आप ही मेरी लज्जा की रक्षक हैं। मेरा तन–मन और चित्त शुद्ध हैं। मुझे मेरे सत्त का ही विश्वास है। वह बार–बार ऐसी प्रार्थना करती जल भरने बावड़ी के निकट पनघट पर जा पहुँची। उसके सत्त की आज परीक्षा थी।

वह अपने पति ढोला को अपने सत्त का रक्षक कहकर आश्वत थी। मेरे सत्त के रक्षक मेरे सायब ही हैं। मेरे मन और चित्त में ऐसा विश्वास है। जो सतवंती होती है, उसका सत्त कभी डिगता नहीं। उसके मुँह पर सूर्य के समान आभा होती है और चन्द्रमा के समान ज्योत्सना होती है। सतवंती को यदि अग्नि के लपटों में बैठा दो, तब भी वह सत्त पर दृढ़ रहती है। मरवण ने हृदय में सत्त को धारण किया और कच्चा घड़ा–कच्चा सूत लेकर वह पानी भरने लगी। उसका मन पक्का था। सत्त की दृढ़ता कायम थी।

उसका सत्त मुँह बोल गया। सफल हो गया। मरवण सुरखरु हो गई। उसके परण्ये ढोला कुँवर ने उसका मान रखते हुए उसके द्वारा कच्चे घड़ोल्ये में लाया हुआ जल पूरे स्नेह से पी लिया। ढोला तृप्त हो गया। सत्त के घड़ोल्ये में सत्त का जल भरा था। मरवण ने सत्त के घड़ोल्ये में सत्त की नेवज (डोरी) बाँधकर जल भरा था। वह जल भी उसके सत्त का शीतल अमृत सार था। दोनों धन्य एवं प्रेम विव्हल थे। सत्य की परख भी धन्य हो गई थी।

ढोला कुँवर को जल पिलाकर मरवण उसे अपने साथ अपने महल में ले आई। महल में उसने ढोला की खूब सार मनुहार की।

महल में सेज सजी। सेज पर भाँति–भाँति के सुन्दर सुगंधित फूल बिछाए गए। मवरण ने वेश पलटा। सुवासती सुन्दर फूलों वाली हाड़ी (साड़ी) पहनी। इस प्रकार सजकर वह सेज को सुहागिन बनाने के लिए महल में आई। इसी महल में ढोला का वास था। वह अपनी सेज पर बैठा मरवण की प्रतीक्षा कर रहा था। मरवण को देखते

ही ढोला के मन में विचार उठा। मरवण के तन पर तो हाड़ी (मालवी में 'स' को 'ह' उच्चारित किया जाता है– हाड़ी–साड़ी) शोभित है। हाड़ी तो मेरे मामा की गौत्र है। इस प्रकार यह तो मेरी मामेरी बहन जैसी लग रही है। इसी प्रकार मेरी धाय माँ भी ऐसी ही भाँत की हाड़ी पहनती है। इसे देखकर मुझे अपने धाय माँ का आभास हो रहा है। मैं इसे अपनी पत्नी रूप में तो अनुभव कर ही नहीं पा रहा, फिर इसे अपने सेज पर कैसे स्वीकारूँ ?

ढोला ने मरवण के साथ प्रेमालाप तो किया, किन्तु सेज सकारथ नहीं की। ढोला के ऐसे उपेक्षित व्यवहार से मरवण दुःखी हो गई। उसने सोचा– ढोला कुँवर ने मेरे सत्त की परीक्षा भी ले ली। फिर ऐसा व्यवहार क्यों किया? मुझमें ऐसी क्या कमी दिखी अथवा क्या दोष दिखा कि ढोला ने रुखा और उपेक्षा का व्यवहार किया? ऐसा होते–होते सात रातें बीत गईं। अंततः विवश होकर उसने अपनी व्यथा अपनी भाभी से कही। भाभी ने मरवण के भाई से कही।

सबने मिल बैठकर विचार किया कि यदि ढोला कुँवर मरवण को नहीं चाहता, तब हमें उसका अन्यत्र किसी के साथ विवाह करवा देना चाहिए। सबने मरवण के नातरे (पुनर्विवाह) का विचार तय करते हुए सोढ़ा–सूमरा को पत्र लिख दिया। सोढ़ा सूमरा ने जब मरवण के साथ अपने विवाह का पत्र पढ़ा, तब वह तुरंत ही पिंगलगढ़ के लिए रवाना हो गया। कुछ लोग सोढ़ा और् सूमरा को दो व्यक्ति मानते हैं। मान्यता है कि दोनों भाई थे। दोनों में से किसी एक के साथ विवाह का प्रस्ताव होना था। यह ठीक नहीं है। सोढ़ा उसका नाम था और सूमरा उसकी गौत्र थी। गाथा में आगे चलकर यह स्पष्ट भी हो जाता है कि सोढ़ा सूमरा दो व्यक्ति नहीं, अपितु एक ही व्यक्ति थे।

जब सोढ़ा सूमरा का समाचार पिंगलगढ़ आ पहुँचा कि वह शीघ्र ही बारात सजाकर आने वाला है, तब मरवण के भाइयों ने ढोला से कहा– कुँवर ढोला जी, आपको महलों के भीतर रहते–रहते कई दिन बीत गए। आपका मन ऊबने लगा होगा। नगर से बाहर हमारे खेत हैं, वहाँ पर सुन्दर कक्ष भी बने हैं। खेतो पर सुन्दर डागरे (रखवाली मंच) भी बने हैं। जहाँ बैठकर आप दूर–दूर के सुन्दर दृश्य देख सकोगे। आप कुछ दिन वहाँ बिताओ, आपका मन बहल जाएगा। आपके लिए भोजनादि की व्यवस्था हम वहीं करा देंगे।

ढोला महल छोड़कर खेतों पर बने डागरे पर चला गया। वहीं उसने अपना मुकाम लगा लिया। उसे सचमुच वहाँ सुहा गया। ढोला को महलों में चल रहे छल का पता नहीं था।

सोढ़ा सूमरा अपनी बारात लेकर महल में आ गया। उसकी खूब मनवारें की जाने

लगी। मरवण ने मौका देखकर महल से निकल ढोला से मिलने की योजना बनाई। उसने ढोला के लिए भोजन बाँधा और छुपती–छुपाती खेत पर जा पहुँची। उस दिन उसने घुम्मर घेर घाघरा और मोत्याँ जड़ी चूनर ओढ़ रखी थी। वह रलक–दलक सज–स।वर जब ढोला के पास उसके मचान पर पहुँची, तब ढोला अपने निकट पाकर बहुत प्रसन्न हो उठा। उसने उमंगित होकर उसे अपनी बाहों में भरकर खूब प्यार किया। मरवण को तो मनचाहा फल मिल गया। मरवण और ढोला को 'संजोग' हुआ। डागरे पे ओटा लगाकर डागरे को कक्ष की तरह ढँक दिया गया। दोनों का मिलाप हो गया। भले ही महल की सेज सकारथ न हुई हो, किन्तु प्रकृति की गोद सकारथ हो गई।

दोनों आधी रात होने तक डागरे पर प्रेमालाप करते रहे, समय बीतने का भान दोनों को नहीं रहा।

मरवण ने उलाहना देते हुए ढोला कुँवर से पूछा–कँवर जी आप मुझ पर इतने आसक्त थे, तब पहले इतने दिनों तक आपने वैराग्य क्यों जताया? ढोला ने कहा– मरवण सुनो– मेरी ननिहाल की गोत्र 'हाड़ी' है। तू हर बार हाड़ी (साड़ी) पहनकर सेज पर आती थीं, तब तुम मुझे ननिहाल पक्ष की लगने लगती थीं। आज तू रजपूतानी वेशभूषा में आई है। मेरा सारा संकोच टूट गया है। आज के बाद तू सदा यही वेश धारण करना। साड़ी मत पहनना।

तुम साड़ी पहनकर मेरी धाय माँ जैसी लगती हो। मैंने उसका खूब दूध पिया है। मैं उसे सग्गी माँ ही मानता हूँ। साड़ी तो बनियों और ब्राह्मणों की औरतें पहनती हैं। राजपूतानियों की वेशभूषा तो चूनर–लहंगा है। इसी में वे सुहाती हैं। आज तुम लहंगा और चूनर ओढ़कर आई हो, इस कारण तुम मेरे लिए प्राणप्रिय हो। आओ, एक बार फिर मेरे हृदय से लग जाओ। मन में कोई भी संकोच मत रखो। मरवण सदा ढोला की ही रहेगी। मन में तनिक भी चिंता मत करना।

मरवण ने जब ढोला से ऐसी प्रेम पगी बातें सुनी, तो वह मन ही मन प्रफुल्लित हो उठी। उसने सोचा– मेरा जीवन धन्य हो गया, मेरा यौवन सकारथ हुआ।

उसे तत्काल सोढ़ा सूमरा और उसके विवाह का संदर्भ याद हो आया। वह एक बड़ी चिन्ता में डूब गई। उसने ढोला से कहा– हे ढोला कुँवर! ये सब बातें छोड़ों और सावधान हो जाओ। मेरे भाई मेरा पुनर्विवाह करने की योजना बना चुके हैं। सोड़ा सूमरा बारात लेकर महल में पहुँच गया है। आज रविवार है। आज की रात वह मुझे ले जाएगा। (लोक में परम्परा है कि यदि कोई ब्याहता है तो उसका पुनर्विवाह या नातरा रविवार को किया जाता है।)

हे ढोला! मेरा सत्त रख लो। मैं आपकी और केवल आपकी हूँ। मरवण की बात सुनकर ढोला कुँवर ने कहा 'मरवण घबराओ मत।' तेरे सत्त की मैं रक्षा करूँगा। तू केवल मेरी है और मेरी ही रहेगी। तू वापिस घर लौट जा। मैं सबके सामने तुझे अपने करेला पर बैठाकर ले जाऊँगा। आज की रात तो टल गई है।

मेरी मरवण को एक सूमरा तो क्या हजार सूमरे भी नहीं ले जा सकते। मेरी परणी को कौन ले जाता है, मैं देखूँगा। तू मेरा विश्वास रख।

मरवण महलों में लौट आई। महलों में उसकी खोज हो रही थी। उसे आया देख सबने उससे पूछताछ शुरू कर दी। मरवण बार–बार उनके उत्तर टालती रही और अपने महल में जाकर बैठ गई। वह रात भर अंधेरे कक्ष में रोती–सुबकती पड़ी रही। सबेरा होने पर मरवण को भाई–भतीजों ने जबरदस्ती सूमरा के साथ विदा कर दिया। इतने में तो ढोला कुँवर करेला पर सवार होकर आ पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर ढोला ने कहा– 'इस धरती पर ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ जो मरवण को ले जा सके। किसके दस सिर उग आए हैं? अर्थात् किसमें रावणत्व जैसा आतंकी अहंकार पैदा हो गया है, जो राम की सीता का अपहरण करना चाहता है? कौन है जो ढोला से टकराना चाहता है? मरवणी ढोला की ब्याहता है। इसे ढोला ही ले जाएगा। जिसके दिन खुट गए हों, वह शस्त्र सज्ज कर सामने आ जाय। जिसकी माँ ने प्रसवकाल में सवासेर सूँठ खाया होगा वही हाथों में तलवार उठाकर सामने आ पाएगा। (सवा सेर झूठ खाना–मुहावरा है) ऐसा कहकर ढोला सब को डाँट–डपट कर तुरंत साँडनी (करेला) पर सवार हो गया। मरवण ने भी फुर्ती दिखाई। वह भी सोलह श्रृँगारों में सजी–स।वरी दौड़कर करेला की पीठ पर बैठ गई। करेल तुरंत दौड़ पड़ा। वह हवा को भी पीछे छोड़कर दौड़ रहा था। सूमरे को तो सम्पट ही नहीं बंधी, वह क्या करे और क्या न करे। सब स्तब्ध होकर खड़े के खड़े रह गए। सूमरा चेते, तब तक तो करेला हवा हो चुका था। आँखों से भी ओझल हो गया था।

सोड़ा सूमरा अपने बारातियों को साथ लेकर ढोला कुँवर के पीछे दौड़ा। उसके घोड़े ढोला का पीछा करते हुए सरपट दौड़ रहे थे, किन्तु ढोला का करेला तो हवा का बेटा था। वह क्या हाथ आ पाता? सोढ़ा के घोड़े बहुत पीछे छूटते जा रहे थे।

ढोला और मरवण को लेकर करेला अत्यंत तीव्र गति से दौड़ा था। वह कुछ थका भी था। मरवण भी थक गई होगी, ऐसा विचार कर कुँवर ढोला ने करेला को रोक दिया। तभी ढोला ने मार्ग में जाते एक ब्राह्मण को देखा। उसने करेला को बैठा दिया और

उसकी पीठ से नीचे उतरा। मरवण भी नीचे उतर गई। ढोला कुँवर और मरवण ने ब्राह्मण के चरणों में वन्दन किया। मरवण ने अपने गले की खुंगाली (चाँदी या सोना का एक ठोस गोल आभूषण) निकालकर ब्राह्मण को भेंट कर दी। ब्राह्मण ने उन्हें खूब आशीर्वाद दिए। वहीं पर गन्ने का खेत था। ढोला खेत में गया और मजबूत गन्ना काटकर लाया, उसका मुँह तीखा काटकर ढोला ने उसे शक्ति लगाकर एक झटके से धरती में गाढ़ दिया। उसने ब्राह्मण महाराज से कहा– पंडितजी मेरे पीछे कुछ घुड़सवार यहाँ पहुँचेंगे। उनके नायक का नाम 'सोड़ा सूमरा' है। वह आपसे मेरे बारे में अवश्य पूछेगा। आप सच–सच बता देना। उससे कहना कि ढोला ने एक झटके से यह गन्ना धरती में गाढ़ा है। उसने चुनौती दी है कि यदि तुम एक ही झटके से यह गन्ना धरती से बाहर निकाल सको, तभी पीछा करना वर्ना मान और जान बचाकर वापिस लौट जाना। वैसे भी तुम हवा के पुत्र करेला को नहीं पहुँच सकते। उसके यहाँ आने तक आप यहीं विश्राम करो।

इतना कहकर ढोला मरवण सहित करेला पर सवार हो गया। करेला रपट गया। हवा से बातें करता मंजिल पार करने लगा। ढोला के जाने के कुछ समय बाद सोड़ा सूमरा भी वहाँ आ पहुँचा। उसने ब्राह्मण से पूछा– 'क्या कोई सांडनी सवार यहाँ से निकला, जिसके पीछे एक दुल्हन भी बैठी थी। ब्राह्मण ने कहा– हाँ! उसका नाम ढोला था। उन्होंने यहाँ थोड़ी देर विश्राम किया और फिर आगे की मंजिल की ओर बढ़ गए। ढोला यह गन्ना यहाँ गाड़ गया है। उसने यह गन्ना एक ही झटके में गाड़ा है। वह कह गया है कि यदि आप इसे एक ही झटके में धरती से निकाल सको, तभी पीछे आना वर्ना अपना मान और जान बचाकर वापिस लौट जाना। वैसे भी आप हवा के पुत्र करेला को नहीं पहुँच पाओगे। ब्राह्मण की बात सुनकर सोढ़ा सूमरा क्रोध से भर उठा। उसने गन्ने को पकड़कर उसे झटके से खींचना चाहा, किन्तु गन्ना बाहर नहीं निकाल पाया। उसने खूब कोशिश की, किन्तु वह गन्ना नहीं निकाल पाया। उसे ढोला की शक्ति का आभास हो गया। वह वहीं से वापिस लौट गया।

सोढ़ा सूमरा तो वापिस लौट गया, किन्तु राह में ढोला पर एक बहुत बड़ी आफत आ गई। उसका एक साढू भाई था। उसका नगर उसी मार्ग पर था। उसका नाम था दानमल। उसकी भी निगाह बहुत दिनों से मरवण पर लगी थी। उसे उसके आदमियों ने सूचना दी कि ढोला अपनी परणी मरवण को लेकर साँडनी सवार हो बढ़ा चला आ रहा है।

दानमल ने कहा– मेरा घोड़ा करेला से भी तेज दौड़ता है। मैं अभी जाकर उसे रोकता हूँ। उसका सिर काटकर लाऊँगा और मरवण को अपने घोड़े पर बाँध लाऊँगा। ऐसा कहकर उसने अपना घोड़ा रपटा दिया।

उसने मन ही मन निर्णय लिया कि बल द्वारा ढोला से जीत पाना कठिन है। मैं उसे छल द्वारा मारूँगा। दानमल ने घोड़ा दौड़ाया और वह अमर कोट जा पहुँचा। अरे ढोला! रुक जाओ। आज यहाँ गोट (भोज) करेंगे। अरे साढू जी! रुक जाओ। हमारी तकरार यहीं समाप्त हो जाय तो ही ठीक है। अपने करेले को तुरंत रोक दो। ढोला कुँवर दानमल की चिकनी–चुपड़ी बातों में आ गया। उसने करेला को रोक लिया। दानमल ने ढोला को रोककर उन्हें विश्राम हेतु कहा और स्वयं कलालण के घर जा पहुँचा। उसने उससे कहा– कलालण! तू अच्छी नशीली मदिरा लेकर आ जाना। मेरे यहाँ खास मेहमान आए हैं।

कलालण ने बहुत ही मदीली मदिरा परोसी। उसे पीकर ढोला कुँवर बेहोश हो गया। मरवण व्याकुल हो गई। उसे छल का आभास हो गया। उसे भय लगने लगा। वह दानमल की बुरी नीयत जान गई।

उसने विचार किया कि ढोला बेहोश पड़ा है। इसे किस प्रकार होश आ पाएगा? वह जार–जार रोने लगी। उसे कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ रहा था। उसने हाथ जोड़ कर कलालण से विनय की– 'हे कलालण बहन! मैं तेरे आगे हाथ जोड़ती हूँ। मैं तेरे चरणों में धोक लगाकर अपनी आर्त प्रार्थना कहती हूँ। यह दानमल मेरा जीजा है। इसने हमारे साथ छल किया है। उसके मन में कपट है। हे बहन! तू कैसे भी कुँवर के प्राण और मेरी लाज की रक्षा कर। मेरा परण्या मदिरा पीकर गाफिल हो गया है। मेरे भाग फूट गए हैं। हे बहन! आप कैसे भी मेरे परण्ये को चेतमान कर दो। आप बदले में मेरे कानों के ये झुमके ले लो। यह नौसरहार भी ले लो। आप तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मेरे भर्तार के प्राण बच जायें। मैं तेरा यह उपकार जन्म–जन्मातर तक याद रखूँगी। हे बहन! मेरे भर्तार की रक्षा का कोई उपाय कर दो।

मरवण की आर्त प्रार्थना सुनकर कलालण को उस पर दया आ गई। वह दानमल के छल को जान गई। उसे आभास हो गया कि दुष्ट दानमल कुँवर को मारकर मरवण को अपने वश में कर लेगा। इसकी इज्जत लूटेगा। उसे अपने कार्य पर पछतावा हो उठा। उसने मरवण को धैर्य बँधाते हुए कहा– मरवण! तू धैर्य रख। तेरी लाज की रक्षा भगवान अवश्य करेगा। मुझे न तो तेरा झुमका चाहिए और न तेरा नौसरहार। मैं तेरे परण्ये को तुरन्त चेतमान कर दूँगी। मेरे होते हुए कुँवर ढोला को कोई नहीं मार पाएगा। यह दानमल बहुत बड़ा कपटी है। यह छल और बल दोनों में प्रवीण है। इसके साथ बहुत से योद्धा भी हैं। इसका प्रभाव और रोब–रुतबा भी खूब है। यह बड़ा ठिकानेदार है। चारों ओर इसने हथियार बंद चाकर लगा रखे हैं। तू अच्छी तरह सावधान रहना

और निर्भीक और धैर्यमयी बनी रहना। हमारा भय ही दूसरे की शक्ति बन जाता है। तू कुँवर के हाथ में तलवार थमा दे। तू मुझ पर विश्वास रख। मैंने ही कुँवर का बुरा किया है, मैं ही भला भी करूँगी। उल्टे का सुल्टा मैं अभी करुँगी। मैं तेरे परण्ये को अभी चेतमान करती हूँ। मुझसे भूल हो गई है, मैं उसका सुधार करुँगी। कलालण अपने हृदय में पछताने लगी। वह सोचने लगी– मेरे खोटे कर्म से यह बेचारा ढोला राव मारा जाएगा। हे कुलदाती! मेरी रक्षा करो। मुझे इसकी रक्षा का कोई उपाय सुझाओ। मैं इस दुष्ट दानमल का यह दांव कैसे व्यर्थ करुँ?

मैं ढोला कुँवर के प्राणों की रक्षा तथा मरवण कुँवरी की लाज की रक्षा करने में अपने प्राण न्योछावर करने को भी तत्पर हूँ। उसने अपने साड़ी की लीर फाड़कर ढोला कुँवर के हाथ में बाँध दी। मैं अपने इस भाई के प्राणों की रक्षा करने हेतु अपने सिर की भी बली दे दूँगी। हे मरवण! तू रोना बंद कर दे। मैं तुम्हारे परण्ये की रक्षा अवश्य करूँगी। मरवण को धैर्य बंधवाकर कलालण ने ढोला को अमृत प्याला पिला दिया। वह तुरंत होश में आ गया। ढोला के होश में आते ही कलालण ने कहा– मरवन! दानमल ने छल किया है। वह पूरा दगाबाज है। अवश्य वह ढोला पर शस्त्र प्रहार करेगा, तुम तत्काल ढोला को बीजल तवार दे दो, जिससे वह अपनी और तुम्हारी रक्षा कर सके। जैसे ही ढोला के हाथ में बीजल तलवार (बिजली के जैसी चमचमाती तीखी तलवार) आई और नशा उतर गया। उसने जोर की ललकार लगा दी।

अरे गोला (दास) दानमल! कहाँ छुप रहा है? सामने आ। अरे! तूने नीचे दर्जे की घात की है। अरे नीच! कहाँ है तू? अरे! तूने अगर माँ का दूध पिया हो तो सामने आकर दो–दो हाथ कर लो। अरे सियार दानमल! मैंने सिंहनी का दूध पिया है। हिम्मत हो तो आकर मेरे समक्ष डटो। म्यान से तलवार निकालकर युद्ध करो।

इस प्रकार की ललकार सुनकर भी दानमल स्वयं तो नहीं आया, किन्तु सात लोगों ने ढोला को घेर लिए। थोड़ी ही देर में बीस और आ गए। शौर्यवान ढोलाकुँवर जूझ पड़ा और सबके सिर काट दिए। उनके मरते ही शस्त्र साज और भी योद्धा आ पहुँचे। उन्होंने ढोला को चारों ओर से घेर लिया। नरवरगढ़ का राजा ढोला चारों ओर से घिर चुका था। बलशाली शूरवीर ढोला अभिमन्यु की तरह चक्रव्यहू में फँस गया था। उसने हिम्मत के साथ आक्रमणकारियों पर वार करना शुरू किया। उसकी तलवार चक्करघिन्नी और सुदर्शन की तरह चल रही थी। जैसे कोई अपने कृषि हथियार के दाँव से कटीली झाड़ियों को काटकर मार्ग बना लेता है। उसी प्रकार ढोला ने उस चक्रव्यूह की तरह घेरा बनाकर आक्रमण करने वालों को अपनी तलवार से काट डाला।

मरवण थर–थर काँपती हुई आँसू बहा रही थी। कलालण सत्त को धारण किए थी और बार–बार उसे धैर्य बंधा रही थी। उसने उसे हिम्मत बंधाते हुए कहा– 'हे मरवण! तू रोना–धोना छोड़ और हाथों में तलवार उठा। दुर्गा बनकर शत्रुओं पर टूट पड़। अरे! राजपूत की बेटी हो, दुश्मन पर वार करो। मरवण को सत्त चढ़ गया। उसने तलवार उठाई और कालिका की तरह किलकारी मारकर एक भयंकर हुँकार भरकर वह शत्रुओं पर टूट पड़ी। मरवण वार पर वार कर रही थी। जो भी उसके सामने आ रहा था, वह सीधा यमपुरी पहुँच रहा था।

युद्धरत दुर्गा बन मरवण हाँक लगाकर कह रही थी– हे ढोला कुँवरजी! 'गाठा रइजो' (हिम्मत रखना)। दोनों ने ऐसी मारकाट मचाई कि सब तरफ हा–हाकर मच गया। किसी का सिर कट रहा था तो किसी की छाती फट रही थी। रक्त की धाराएँ बह रही थी। दानमल के बहुत सारे योद्धा सैनिक मारे जा चुके थे। वह भयभीत और अचम्भित था। उसे अब अपने प्राणों की चिंता सताने लगी थी। दुश्मनों को धराशायी करते–करते ढोला के नयन मरवण और कलालण से मिल गए। ढोला कुँवर ने मुस्कराकर कहा– 'वाह! मरवण वाह! तूने खूब वीरता दिखाई, तू तो सचमुच शौर्यवान निकली। उसने कलालण से कहा– हे कलालण बहन! तू धन्य है। तूने हम दोनों की रक्षा करते हुए हम पर बहुत उपकार तो किया ही है, अपनी भूल भी सुधार ली। जो प्रभात में मार्ग भटक जाए और संध्या समय वापिस घर लौट आए, उसे भटका हुआ नहीं माना जा सकता।

ढोलाकुँवर बहुत घायल हो गया था। मवरण को भी घाव लग चुके थे। इतने पर भी उन्होंने दानमल का दाँव नहीं लगने दिया। दानमल ने देखा, ढोला बहुत घायल हो चुका है। यह मौका उस पर वार करने का ठीक है। अब यह मेरे हाथ से नहीं बच पाएगा। उसने ढोला को ललकारा और तलवार लेकर उस पर टूट पड़ा। ढोला कुँवर ने उड़ीकड़ी (गुलाट) लगाकर उसका वार खाली कर दिया। कुँवर ने फुर्ती के साथ उस पर पलटवार ऐसा किया कि उसका सिर कटकर दूर जा गिरा और लोथ वहीं झाड़ियों में गिर पड़ी।

ढोला की वीरता और शौर्य देखकर कलालण वाह! वाह! कह उठी। अरे शूरवीर ढोला! तू धन्य है। दानमल के मरते ही पाप का नाश हो गया। अरे सिंहनी मरवण! तू भी धन्य है, तूने भी तलवार चलाने की हद कर दी। जोरदार वार करते हुए तूने शत्रुओं को धराशायी कर दिया।

हे मरवण! जितनी तुम रक्तकमल जैसी रतनार और कोमल लगती हो, उतनी ही

वीरांगना भी हो, तुम रणचण्डी जैसी हो और ढोलाकुँवर रणधीर और शौर्यवान रणकुशल योद्धा है। इसने तो थूहर की तरह बड़े रणवीरों को काट दिया। (थूहर–एक काँटेदार झाड़ी एक प्रकार का केक्टस यह मारवाड़ में बागड़ पर लगाया जाता है।)

हे ढोला! अब आप तलवार को म्यान कर लो और अपने मार्ग का निर्धारण करो। झटपट साँडनी पर सवार होकर यहाँ से निकल पड़ो। खतरा अभी पूरी तरह नहीं टला है। ढोला मरवण ने कलालण को प्रणाम किया। हे बहन! यदि जीवित रहे तो फिर मिलेंगे। राम अवश्य योग मिलाएगा। जब तक जीवित रहेंगे, तब तक– हे बहन! हम तुम्हारा उपकार नहीं भूलेंगे। आपने दया और धर्म का पालन करते हुए उलटे को सुल्टा। अशुभ को शुभ में बदल दिया।

कलालण को धोक लगाकर ढोला–मरवण दोनों करेला पर सवार होकर अपने मार्ग पर रवाना हो गए। करेला सरपट दौड़कर मंजिल पार कर गया। वे नरवरगढ़ जा पहुँचे। पहुँचते ही ढोला ने सबसे पहले रेमा मालन को नकटी–बूची कर सिर मुँडवा कर देश निकाला दे दिया। ढोला सिंहासन पर बैठा। मरवण नरवरगढ़ की रानी बनी।

लोक गायक कहता है– हे माता गोरजा! जैसा मिलाप तूने मरवण का ढोला से करवाया, वैसा सब का करवाना। सब का नियम, धर्म ठिकाने रखना। देश में कभी भी अकाल नहीं पड़े। अन्न–धन्न की वृद्धि हो। रोग, शोक, महामारी नहीं हो। सब सुखी रहें।

कथा सार

ढोला और मरवण की कथा सारे संसार में ख्यात है। जो भी इस कथा को सुनता और पढ़ता है, वह हृदय में हर्षित हो जाता है। मारवाड़, गुजरात, ब्रज, सिंध, पंजाब, मेवाड़ और पूरा मालवा, हाड़ोती तथा दोआब तक यह कथा अलग–अलग भाषाओं और रूपों में प्रसिद्ध है। यह कथा राजपूताने से मध्यभारत और पूरे भारत से भी बाहर जा पहुँची। (मदभारत–मध्यभारत अर्थात् मालवा के अतिरिक्त जो भाग है। अब इसे मध्य प्रांत या मध्यप्रदेश माना जाएगा। इसका विस्तार है)।

ढोला–मरवण के अनगिनत अवतार हुए। ऐसी ही मिलती–जुलती प्रेम कथा अन्य अंचलों में भी प्रसिद्ध है। इस कथा का रथ महाराष्ट्र की सीमा तक जा पहुँचा। अनेक मिली–जुली कथाएँ रची गईं। भाषा–बोली, देश और अंचल के मान से परिवर्तन होते हुए, यह कथा किसी प्रकार विदेशों में भी जा पहुँची। थोड़े बहुत अंतर से वहाँ भी प्रेम प्रसंगों को आधार बनाकर कथाएँ रची गईं।

यह कथा किसने गायी– किसने सुनी, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। जुड़ती–घटती यह कथा मेरी जानकारी में आई। मैंने इस कथा को सुनकर खेल (नाटक) रचा। मैंने अपनी ओर से इसमें किसी भी प्रकार की घट–बढ़ नहीं की। मानवोचित कमियाँ हो सकती है। छोटी–बड़ी भूलें सम्भव हैं। मर्यादा, श्रीराम की ख्यात है। लीला, श्रीकृष्ण की तथा प्रेमरूप मरवण के भर्तार ढोला कुँवर का ख्यात है।

जिस प्रकार राधा और कृष्ण प्रकृति और पुरुष के अवतार हुए, वैसे ही ढोला और मरवण प्रेमतत्त्व का सार माने जाते हैं। जिस प्रकार दोहों में सोरठा श्रेष्ठ है उसी प्रकार प्रेम गाथाओं में मरवण की यह गाथा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार यौवन से भरपूर गौरी और तारों से अच्छादित रात भी श्रेष्ठ होती है।

ढोला के कलेजे की धड़कन, जीवंतता और प्राणतत्त्व मरवण ही थी। जिस हृदय में मरवण बस जाय, उस हृदय में कोई और नहीं बस सकता। मरवण राधा का रूप तथा ढोला कृष्ण का रूप यह (मरवण) तो चित्त चोरणी थी और वह (ढोला) चित्तचोर था। दोनों ने एक दूसरे का चित्त चुरा लिया था। दोनों प्रेम का अवतार थे।

लोक गायक कहता है– सबकी अपनी–अपनी मरवण है और अपना–अपना ढोला है। सब चुपके–चुपके मिलते है और कानों में मीठे–मीठे बोल बोलते–सुनते हैं। कालांतर में ढोला–मरवण प्रेमी और प्रेमिका के प्रतीक बन गए। ढोला विशेषण से अपने प्रेमी को सम्बोधित कर अनेक लोकगीत रचे गए, जो आज भी बड़े चाव से लोक धुनों में गाए–सुने जाते हैं।

मरवण के हृदय में सदा मधुर–मधुर सितार बजती रहती है। उसे सुनकर ढोला का मन मयूर पीऽकॉक की पुकार लगाकर अपनी मादकता प्रकट करता रहता है। मरवण धरती है और ढोला आकाश है। आकाश–धरती पर रिम–झिम प्रेम जल बरसाकर उसकी प्यास बुझाता है। उसे तृप्त कर देता है।

प्रत्येक ढोला (प्रेमी) की एक मरवण होती है और प्रत्येक मवरण (प्रेमिका) का एक ढोला होता है। ढोला और मरवण अब प्रेमी–प्रेमिका का पर्याय बन गए हैं। रूपक, उपमेय और विशेषण हो गए हैं। ये प्रेमी–प्रेमिका नयनों से बातें करते हैं, संकेतों के बोल बोलते हैं। तोता और मैना की कथा सारा जहान जानता है। दोनों अपने–अपने सत्य और सतीत्व का गुमान करते दिखते हैं। दोनों एक दूसरे को बड़े–बड़े उलाहने देते हैं, किन्तु उन उलाहनों में भी आनंद है। उनसे भी उनका परस्पर प्यार प्रकट होता है। यों ही विनोदवश वे चोंचे लड़ाते रहते हैं। दोनों के हृदय में खूब प्यार भरा रहता है।

मोमल और महेन्द्र की प्रेमकथा बहुत गहरी थी, किन्तु संयोगवश महेन्द्र के मन में शंका की फाँस चुभ गई। उसे कोई भी नहीं निकाल पाया। कई बार विनोद वियोग में बदल जाता है। मोमल–महेन्द्र के साथ भी वही हुआ। संयोग–वियोग और फिर विरह में बदल गया।

निहालदे सुलतान का प्रेमाख्यान भी अति ख्यात है। प्रेमी के विरह में दग्ध निहालदे कहती है– 'सावन की बदली बरस रही है। सावन सेरे संयोग में भले ही शीतल लगे किन्तु– हे सुलतान! तुम्हारे वियोग में ये सेरे तीखे बाणों की तरह मेरे कलेजे में चुभ रहे हैं। आप शीघ्र आ जाओ। सावन के सेरे रिमझिम बरस रहे हैं। इनसे तन और मन दोनों सरसित हो जाते हैं, किन्तु प्रिय सुलतान के बिना ये सेरे को कल्पा रहे हैं। पपीहा पिव–पिव बोल रहा है। झर–झर मेह बरस रहा है। प्रिय (सुलतान) परदेस में है, ऐसे में निहालदे की दशा कैसी हो रही होगी, इसे कौन समझ सकता है?

हे निहालदे के ढोला (प्रियतम)! आप शीघ्र घर आ जाओ। मेरा यौवन तो कंचुकी में मचल रहा है और देह में आपका प्यार मचल रहा है। प्रेम की अग्नि हृदय में लगी है। वह मरवण को व्याकुल कर रही है। हे ढोला कुँवर! शीघ्र आ जाओ। यौवन तो बीत रहा है। यह यौवन तो आया है चला भी जायगा। आने–जाने की ही प्रक्रिया है। मैं इसकी भी परवाह नहीं करती। हे ढोला! आप मेरे मरने से पहले अवश्य आ जाना। केवल यही इच्छा मेरे मन में है। मैंने हे ढोला! तुझसे व्यापार की तरह प्यार नहीं किया। आप मेरे परण्ये हैं। ताकड़ी (तराजू) में तोलकर प्यार नहीं होता। मेरा शीश भी न्यौछावर हो जाय, अर्थात् प्राणों के मूल्य में भी ढोला तेरा प्यार मरवण के लिए अनमोल है।

अनेक ढोले हुए अनेक मरवणे हुईं। उनको आधार बनाकर अनेक प्रेम कथाएँ और गाथाएँ। लिखे गए। हर घर में कोई न कोई राजल मरवण होती है। हर घर में कोई न कोई ढोला कुँवर भी होता है। हर घर में प्रेम कहानियाँ और विरह गीत भी होते हैं। ढोला मारवण की कथा बहुत ख्यात हुई। इस कथा को देश और विदेशों में खूब सराहा गया। इस आख्यान को आधार बनाकर अनेक अनोखे गीत–गान लिखे गए।

कथा का भाव

लोक गायक कहता है– ढोला–मरवण की कथा मैंने प्रकट कर दी हैं। मैंने अपनी ओर से इसमें कोई भूल–चूक नहीं रखी है। इस कथा का नायक ढोला ब्रह्म का रूप है तथा मरवण जीव है। दोनों के विछोह और मिलन की आकुलता की यह कथा है। इसमें मरवण को ढोला की ब्याहता कहा है। वास्तव में यह जीव और ब्रह्म के मिलन की गाथा है। जीव जब ब्रह्म से विलग हो जाता है, तब व्याकुल हो उठता है। मिलने पर आनंदित हो जाता है।

यह आख्यान पुरुष और प्रकृति का मर्यादित मिलन है। यही सहमति एवं मर्यादित संगम बनाता है। प्रकृति का चक्र विकासमान होता है। यह संगम ही एक से अनेक बनाता है। इस आख्यान में रेमा मालन माया है। माया अद्‌भुत खेल रचाती है। कभी मिलाती है, कभी बिलगाती है। यह ब्रह्म और जीव को अलग करने के लिए जीव को भ्रमित करती रहती है। कई बाधाएँ पैदा करती है।

कूँजा जीव की सुकृतियाँ और सत्कर्म हैं। जीव उन्हीं सत्कर्मों के सहारे ब्रह्म से मिलने का प्रयास करता है। माया की बाधा बीच में आ जाती है। जीव ब्रह्म से नहीं मिल पाता। सत्कर्म भी सफल नहीं हो पाते।

सुग्गा सद्‌गुरु है। जो जीव और ब्रह्म दोनों को चेतमान रखता है। सद्‌गुरु दोनों से मिलाप का मार्ग प्रशस्त करता है। यथा– मरवणई द्वारा प्रेषित दासी, नायन आदि भी एक प्रकार से भ्रम ही पैदा करने का उपक्रम है। सद्‌गुरु जीव की अर्जी, प्रार्थना ब्रह्म तक पहुँचाते हैं। तब दोनों का मिलाप हो पाता है।

करेला बोतड़ा भी जीव के पुण्य कर्म हैं। उन्हीं के प्रतीक रूप में करेला ब्रह्म को जीव तक पहुँचा देता है। जब जीव के पुण्य प्रबल, मन निश्छल और निर्मल हो जाता है, तब ब्रह्म स्वयं जीव के निकट पहुँचता है।

सूमरा को निगुरा मानना चाहिए। जो गुरु विमुख होता है, उसे नुगरा कहा गया है। नुगरा ब्रह्म और जीव में बाधा पैदा करता है किन्तु सत्य पर दृढ़ जीव उसके रोके नहीं रुकता। वह ब्रह्म के साथ जुड़कर उसकी रक्षा–सुरक्षा में निर्भय हो जाता है।

ब्राह्मण पुण्य कर्मों का फल है। वह जीव ब्रह्म के मिलने में तथा उसमें आने वाली हाटक को टालने का माध्यम बनता है। नियम, मर्यादा का रूप वह कलालण है, जिसने अशुभ को शुभ कर दिया। सतवंती की शक्ति को कोई भी नहीं जान सकता है। मरवण ने कलालण का दया–धर्म जागृत कर दिया। वह जीव–ब्रह्म के मिलन में आई बाधा को टालने में तथा मिलाप में सहायक बनी।

लीलाधारी की लीला को कोई नहीं जान सकता। वह अद्‌भुत लीलाएँ रचता है, अद्‌भुत खेल रचाता है। मरवण और ढोला की यह कथा जीव–ब्रह्म के मिलाप की कथा है। इसमें यदि मुझसे कहीं भूल–चूक हो गई हो तो क्षमा कर देना।

लोकदेवता पाबू धरमी

गाथा का बखाण करने से पहले लोक गायक समस्त देवी–देवताओं का स्मरण करता है। गाँव के पंचों और मुखिया से अनुमति प्राप्त करता है।

सत के पालनहार पाबू को सपना आता है कि शक्ति का अवतार घोड़ी केसर कालमी गोल्ये मथाणिये गाँव ठिकाने भवानी देवली चारणी के आँगन में बंधी है। उसे प्राप्त करना है।

अगले दिन सवेरे अपने सामंत डोमा और चाँदा को साथ लेकर पाबूजी चारणी के महल में पहुँचकर घोड़ी की मांग करते हैं। चारणी देवली कहती है– यह घोड़ी जिनराज खीची को मैंने दे दी है। इसके बदले मेरी लाखों गायें उसके मैदानों में चरती हैं। अगर आप यह घोड़ी ले जाओगे तो खीची मेरी गायें घेर लेगा। पाबूजी ने कहा मैं तुम्हारी गायों की रक्षा करुँगा। तुम अपनी गायें लीमड़ी के मैदानों में चरने भेज देना। घोड़ी मैं ले जाऊँगा। तुम चाहो तो कौड़ी के मोल में तराजू से सोना तौल दूँ। चारणी कहती हैं– मैंने सात समुद्र पार जाकर आदिभवानी की तपस्या की। उसके फलस्वरूप माता ने मुझे चार घोड़े–घोड़ियाँ सोने से लादकर दिए। इसलिए सोने की मेरे पास कमी नहीं है। एक घोड़ा सीतल्या मैंने बाबा रामदेवजी को भेंट कर दिया। दूसरा लीलड़ा घोड़ा देवनारायणजी को भेंट में दे दिया। तीसरी ढलकी घोड़ी बूड़ाजी को भेंट की और यह चौथी घोड़ी खीची की अमानत है। यह सात कोठों में बंद है। सात कोठे सात पाताल मानो। इन कोठों की चाबी घोड़ी के रखवाले उदा के पास है। उदा बाहर दूदू गया है। आप उसके आने तक रूको। अगर तुममें शक्ति हो तो सातों ताले खोलकर घोड़ी बाहर लाकर उस पर सवारी कर लो। अगर सवारी कर लोगे तो घोड़ी तुम्हारी।

तुम्हारे हाथ में नमक का डला रखती हूँ। यह हमारी जमानत है। तुम्हें मेरी गायों की रक्षा भी करना पड़ेगी। अगर आप वचन भंग करोगे तो नमक की तरह गल जाओगे। अगर मैं वचन भंग करुँगी, तो मेरे कोढ़ फूटेगा।

पाबूजी के आदेश से धरमी की आन लगाकर डोमा चंटी अंगुली से सातों ताले खोलकर कोठों के दरवाजे खोल देता है। पाबू केसर कालमी के पास जाकर उसे प्रणाम करते हैं और रास पकड़कर बाहर ले आते हैं। आँगन में लाकर वे घोड़ी पर सवार हो जाते हैं। केसर उन्हें आकाश में ले उड़ती है। डोमा–चाँदा इस प्रकार पाबूजी के आकाश मार्ग में जाकर ओझल हो जाने से चिंता में पड़ जाते हैं। देवली–चारणी उन्हें आश्वस्त करती है। कुछ देर में पाबूजी केसर कालमी पर सवार आँगन में आ उतरते हैं। भवानी केसर कालमी स्वयं भी शक्ति का अवतार है। वह जान जाती है कि पाबूजी देव पुरुष हैं और यही लक्ष्मण का अवतार हैं। वह पाबूजी को प्रणाम करती है और पुष्कर स्नान करने भेजती है।

पुष्कर में स्नान करते समय पाबूजी का पैर फिसल जाता है। वहीं पर गोगाजी स्नान कर रहे थे। उन्होंने पाबूजी को अपनी बाहों में थाम लिया। पाबूजी गोगाजी से प्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें अपनी भतीजी केलमदे ब्याहने का प्रस्ताव देते हैं। गोगाजी, पाबूजी का प्रस्ताव मान लेते हैं। दोनों अपने साथियों सहित कोलूमंड पहुँचते हैं। गोगाजी को हरियाले बाग में ठहराया जाता है। पाबूजी उन्हें राठौड़ी पोषाक भेंट करते हैं और बूड़ाजी से भेंट करने और उनसे केलम का हाथ मांगने के लिए गढ़ में भेजते हैं। बूड़ाजी राठौड़ चव्वाण गोगाजी की अगवानी कर आसन देते हैं। बात में से बात निकालकर गोगाजी उनसे केलमदे का हाथ माँगते हैं। गोगा चौहान का प्रस्ताव सुनकर बूड़ाजी क्रोध से भर जाते हैं। गोगा जी निराश होकर अपने डेरे पर लौट जाते हैं।

इसके बाद पाबूजी गोगा से मिलने बाग में आए। गोगाजी से समाचार जानकर उन्होंने माया का वासक नाग बनाया। नाग को चम्पा की डालियों में छुपा दिया। थोड़ी देर में केलमदे अपनी सहेलियों के साथ बाग में झूला झूलने आई। झूला झूलते–झूलते केलमदे चंपा के फूल तोड़ने का विचार कर चम्पा के पेड़ के पास जाकर फूल तोड़ने लगी। तभी डालियों पर बैठे वासक नाग ने उसे चंटी अंगुली पर डंस लिया। केलम की चीख सुनकर सहेलियाँ भागकर पास आ गईं। केलम धरती पर बेहोश पड़ी थी। उसके मुँह से झाग निकल रहे थे। वदन नीला–काला पड़ने लगा था। सहेलियाँ समझ गई कि केलम को नाग ने डंस लिया है। उसे उठाकर महल में लाई। खूब तंत्र–मंत्र हुए केलम का जहर नहीं उतरा। बूड़ा जी ने चाकरों को पाबूजी के पास भेजा। पाबूजी ने

चाकरों से कहा– फौरन गोगाजी को पुकार लगाओ। वे वासक के अवतार हैं। वे ही केलमदे का जहर उतार सकते हैं। चाकरों ने बाग में जाकर गोगाजी को पाबूजी का संदेश दिया। गोगाजी घोड़े पर सवार होकर महल पहुँचे और केलमदे का जहर चूस लिया। केलम उठ बैठी।

गोगाजी की जय–जयकार होने लगी। गोगाजी अपने डेरे पर चले गए। पाबूजी ने अपनी भाभी को समझाया–'केलमदे गोगाजी की अमानत है। आप केलमदे का विवाह गोगाजी से करवा दो। ये जोड़ी विधना ने बना दी है। थोड़ी बहुत बहस के बाद पाबूजी की भाभी व बूड़ा जी ने विवाह की स्वीकृति दे दी।

गोगाजी बारात लाए। तोरण वंदाकर चंवरियों में बिराजे, हथलेवा जुड़ा। सबने अपनी हैसियत के अनुसार हथलेवा चढ़ाया। पाबूजी कुछ नहीं बोले। वे समाधि में लीन हो गए। पुरोहित ने उन्हें चेतमान किया। पाबूजी ने एक सौ लंका की सांडनियां केलमदे को हथलेवे में देने का वचन दिया। पाबूजी की बात सुनकर सब आश्चर्य में पड़ गए। केलमदे ने कहा– 'काकाजी असंभव बात क्यों करते हो? जो संभव हो वह भेंट करो। आप तो मुझे केसर कालमीदे दो।' पाबूजी ने कहा केलमदे केसर में तो मेरे प्राण बसते हैं। मेरे वचनों का विश्वास रखो। तुम मेरी वचन पालन को वृत्ति की जानती हो, फिर ऐसी बात क्यों कहती हो। फेरे हुए। गोगाजी केलमदे को विदा करवाकर अपने गढ़ सामर कोटड़ी ले गए।

केलमदे ससुराल में आराम से रहने लगी। माणक चौक में ननद–भौजाई चरखा कात रही थीं। ननद ने केलमदे को ताना मारा कि तुम्हारे पीहर वालों का नाम तो बहुत सुना था, किन्तु सब झूठा निकला। तुम्हारे डींग मारने वाले काका पाबूजी की सांडनियाँ कहाँ है? नहीं हो तो उनसे कहो मिट्टी की सांडनियाँ ही बनवाकर भेज दें। वचन का पालनहार आपका काका पाबू पाल तो झूठा साबित हो गया।

ननद के वचन केलमदे के हृदय में बाण जैसे लगे। उसने चरखा उठाकर दीवार पर दे मारा। महल जाकर पलंग पर जा पड़ी और खूब रोई। फिर उसने चाकर भेजकर पटवारी को बुलवा भेजा। पटवारी उपस्थित हुआ। केलमदे ने पटवारी से अपने पिता–काका को पत्र लिखाया। काकाजी आपने एक सौ लंका की सांडनियाँ दहेज में बोली थीं। समय चूक रहा है। सांडनियाँ नहीं आई। मुझे ससुराल में अपमानित होना पड़ रहा है। इच्छा होती है मैं कटारी घोपकर मर जाऊँ। चौहानों के महलों की दीवारों में सिर पटककर फोड़ लूँ। माणक चौक में जलकर मर जाऊँ। अगर सचमुच की सांडनियाँ नहीं भेज सकते तो मिट्टी की ही बनवाकर भिजवा दो। चिट्ठी लेकर हरदाना

कोलूमंड गया। पाबूजी ने चिट्ठी पढ़कर हरदाना मींडा से कहा– तुम आज रात महलों में रुको, सवेरे रवाना हो जाना। केलमदे से कहना तुम्हारा काका पाबू समय रहते लंका की सांडनियाँ लेकर सामर कोटड़ी आएगा। विश्वास पक्का रखो।

पाबूजी की आज्ञा पाकर हरदल राइका लंका थली जाकर खोजबीन करने गया। मार्ग में उसने गुरु गोरखनाथ से दीक्षा ली। पाबूजी की शक्ति और गुरु गोरखनाथ के बल से वह दरिया किनारे जा पहुँचा। उसने पाबूजी का स्मरण किया। केसर कालमी घोड़ी आकाश से नीचे उतरी। हरदल राइका केसर पर बैठकर दरिया पार हो गया। दरिया के परले पार लंका थी। वहाँ उसने सांडनियों के झुंड देखे। हरदल राइका पुलक उठा। निशानी के बतौर उसने थैले में सांडनियों की मांगणियाँ भर ली। उसने फिर से पाबूजी का स्मरण किया। केसर फिर आई और हरदल को उड़ाकर समुद्र पार ले गई।

पाबूजी के दरबार में पहुँचकर हरदल राइका ने अपनी यात्रा का वर्णन सुनाया। पाबूजी डोमा–चाँदा और राइका के साथ लंका थली के लिए रवाना हो गए। दरिया किनारे पहुँचकर पाबूजी ने दरिया की आरती की, नौमण घूघरियाँ दरिया के जीवों को डालीं। दरिया से रास्ता मांगा। समुद्र ने रास्ता नहीं दिया। डोमा ने कहा–पाबूजी आप भाले की अग्नि से दरिया में मार्ग बनाओ। नहीं तो मुझे आज्ञा दो, मैं आपकी आन लगाकर दरिया को पीकर रास्ता बनाता हूँ। पाबूजी ने कहा– डोमा दरिया सुखाने से तो इसमें रहने वाले जीव मर जाएँगे। अगर दरिया ने रास्ता नहीं दिया तो मैं भाले के अगन ताप से रास्ता बना लूँगा। पाबूजी ने अपना भाला उठाया। दरिया ने डरकर मार्ग दे दिया। पाबूजी डोमा–चाँदा और राइका सहित दिन–रात का सफर कर लंका थली पहुँचे। सवेरा हो रहा था। साँडनियों के कई झुंड उन्होंने देखे। पाबूजी ने डोमा से कहा– साँडनियों को घेरकर राइका को रवाना कर दो। फिर उन्होंने रावण को ललकारा। रावण फौज लेकर दरिया किनारे आ डटा। रावण की फौज बड़ी थी। पाबूजी और डोमा–चाँदा को रावण ने घेर लिया। रावण पाबूजी के सामने आकर क्रोध में बोला– कौन लुटेरा मेरी सांडनियाँ ले जा रहा है। पाबूजी ने कहा– मैं लुटेरा नहीं हूँ। कोलूमंड का पाबूपाल राठौर हूँ। सरेआम तुम्हारी सांडनियाँ ले जा रहा हूँ। तुममें शक्ति हो तो मुझे रोक लो।

रावण और पाबूजी में युद्ध होने लगा। चाँदा ने दोनों हाथों में तलवारें लेकर चक्री युद्ध शुरू किया। डोमा ने माया के तरकस में से बाणों की बौछार कर दी। रावण की फौज नष्ट हो गई। पाबूजी ने रावण को परास्त कर दिया। रावण को छोड़ पाबूजी डोमा–चाँदा सहित दरिया पार पहुँचे। वहाँ सीधे सामर कोटड़ी पहुँचे। केलमदे को

सांडनियाँ पहुँचा शेष बची सांडनियाँ लेकर कोलूमंड के लिए रवाना हुए। मार्ग में दिन अस्त होता देख एक सूखे बाग में मुकाम करने का विचार किया। डोमा ने बताया– यह सोढ़ा सूरजमल का किला अम्मर कोट है।

बाग में पाबू के प्रवेश करते ही सूखा बाग हरा–भरा होकर फूलों से महक उठा। सोढ़ा कुँवरी फूलाँदे ने जब सुना कि किसी सत्पुरुष के पग फेरे से वर्षों से सूखा पड़ा हुआ बाग हरा–भरा हो गया, तब वह अगले दिन प्रातः बाग में आई। चम्पा वृक्ष की आड़ से उसने पाबूजी के दर्शन किए। फूलाँदे पाबूजी पर मोहित हो गई। मालन से पाबूजी का परिचय जाना और फूलों के हार–गजरे भेजकर अपना प्रेम संदेश भेजा। पाबूजी ने मालन से कहा– तुम लौट जाओ और राजकुमारी से कहो, पाबू का हथलेवा सत से जुड़ चुका है। मेरी आशा छोड़ दो। पाबूजी का लश्कर रवाना हुआ। सांडनियाँ कोलूमंड पहुँची। हरदल राइका को उन्होंने सांडनियों का रखवाला नियुक्त किया। तभी अम्मर कोट से शगुन का नारियल आया। पुरोहित ने नारियल हाजिर किया। दरबारियों ने पाबूजी को समझाया। आप फूलाँदे सोढ़ी और अम्मर कोट का मान रख लो। पाबूजी ने नारियल स्वीकार किया।

पाबूजी बारात लेकर अम्मर कोट पहुँचे। तोरण वंदाया। फेरे होने लगे। पहले फेरे के बाद देवली चील बनकर चँवरियों में आ पहुँची। पाबूजी ने फेरे रुकवा दिए। देवली प्रकट हुई। उसने कहा– जिनराज खीची मेरी गायें घेर ले गया है। आप वचनों का पालन करो। मेरी सुरभी गायें छुड़वाकर लाओ।

पाबूजी ने चाँदा–डोमा को तत्काल रवाना कर दिया और कहा– जाकर जिनराज खीची को रोको। मैं पीछे–पीछे आता हूँ। चाँदा–डोमा ने घोड़े दौड़ाए और जिनराज खीची को ललकारा। चाँदा और जिनराज भिड़ गए। तभी पाबूजी भी पहुँच गए। उन्होंने खीची का वार अपने खाँडे पर झेल लिया। दोनों में द्वंद होने लगा। डोमा–चाँदा ने खीची की फौज को धराशायी कर दिया। पाबूजी के वार से खीची का खाँडा टूट गया। खीची की छाती पर खाँडा अड़ाकर पाबूजी बोले–खीची तुम मेरे बहनोई हो। तुम्हें मारकर मैं पेमा को विधवा वेश नहीं पहना सकता। तुम जान बचाकर भाग जाओ। इतने में कुछ बाण पाबूजी के वदन में आ घुसे। पाबूजी ने फिर भी खीची को नहीं मारा। खीची भाग गया। पाबूजी गोल्ये मथाणिए पहुँचे और देवली को उसकी गायें सौंपकर वचन मुक्त हुए।

पाबूजी ने कहा– देवली मैं वचनों से मुक्त हुआ। स्वर्ग से विमान आ गया। मैं अपने देश जाता हूँ। देवली ने कहा– आप पाट बिराजो। पहले मेरे से अपनी यशगाथा

सुनो। फिर आप स्वर्ग पधारना। देवली ने उन्हें स्वयं द्वारा रची गई यश गाथा सुनाई। आरती उतारी। पाबूजी शक्ति भवानी केसर कालमी पर बैठकर विमान के पीछे–पीछे सशरीर स्वर्ग सिधार गए।

सुमरन

सिरिगुरु चरणा धोकताँ, सरसत नावूँ माथ।
आद भवानी बिस हत्थी, मावत जोडू हाथ।। 1।।
सदमत दीजो पूरबजाँ, सुण्यो करुँ बखाण।
थाँकी पोथी वाँच्यो, कर दीजो परमाण।। 2।।
जेसो सुण्यो सो कवूँ, दीजो सबदाँ ध्यान।
जजमाना रे चौकड़े, परगट गास्याँ गान।। 3।।
जात–पाँत केवूँ नहीं, नहीं नाम परगास।
भूल–चूक बगसावजो, जतियाँ सतियाँ आस।। 4।।
सूमो पूठा फेरसी, दाता देसी दात।
गायाँ चारूँ देव री, हे काछेली जात।। 5।।
चौक चौकड़े बैठताँ, ढाणी खेड़े गाँव।
पाबू धरमी गावताँ, दन दो राखूँ ठाँव।। 6।।
खेड़े–खेड़े कथा वखाणू, सतगुरु धोकूँ माथ।
गामधणी अन रामधणी, हगरा रेहवे साथ।। 7।।
समराँ सरगाँ देवता, धरती अन पातार।
राइका समराँ बिसनमू, सगत कछेली सार।। 8।।
सिमराँ केसर कालमी, जैमति रो आधार।
पाँडव सिमराँ सतधरा, द्रोपद सत री नार।।9।।
सिमरा सीता रामजी, सदमत बगसन हार।
किरसन सिमरा रुगमणी, जग रा पालन हार।।10।।

————

सिमरन री गायकी पूरी कर भोपो चारी चुमेर बेठ्या पंचाँ रे हाथ जोड़ हुकम माँगे। गामधणी अन रामधणी ती वखाण हुणावारो हुकम माँगे। भोपो धीरतो वै ने केवे 'हुकुम फरमाओ पंचाँ।' हगरा पंच माथो हला हामी भरे। भापो रणत्यो वजा निरत करे। फेर एक हाथ ऊँचो उठा वखाण वखाणे–

सत रो पालणाहार, पूत राठौड़ रो ।11।

कालूमंड रो राव, ठिकाणो जोधपुरो ।12।
राठौड़ाँ रे घरे लियो औतार जलम्या कालूमंड।
माता कँवला दे धन होई जामण हो ।13।
अमरत थान चुघायो, धन होई जामण हो।
अद्‌बत लीला करी, बालपण अदबूतो हो ।14।
पाट वराज्या जोधपरा, धन गादी हो।
पाल वसायो गाम, थपाणी गादी हो ।15।
डोमा चाँदा दोई, बड़ा बलधारी हो ।16।
सौ मनखाँ पे पड़े एकला भारी हो ।17।
मायाधारी घणा, गजब चमकारी हो ।18।
कणने खणाया कूड़ा बावड़ी जी रामा,
कणने बंधाया सरवर घाट जी।।19।।
रामजी खणाया कूड़ा, बावड़ी जी रामा।
लछमण बंधाया सरवर, घाट जी।।20।।
कुण तो पणियारी चाली, घाट पे जी रामा।
कुण तो छणकावे, रमजम चूड़लो।।21।।
माता लिछमी तो चाल्या माणकघाट पे जी रामा।
लिछमीजी रो वाजे रमजम चूड़लो।।22।।
माता सीता तो चाल्या, लै ने बेवड़ा जी रामा।
सीता जी रा वाजे, पाजप वाजणा।।23।।
रुकमण तो चाल्या लैने, बेवड़ा जी रामा।
माता रुकमण रा रमजोल, छम–छम वाजणा।।24।।
संग सेल्याँ तो चाली सरवर, घाट पे जी रामा।
रमजम तो वाजे, पाजप चूड़ला।।25।।
अमरत तो पाणी भरया, बेवड़ा जी रामा।
छाटाँ तो छाटाँ, चानण चौक में।।26।।
पाबूलाल वराज्या परगट, पाट जी रामा।
हल–मल उताराँ, मंगल आरती।।27।।
गावण तो सुणोजी, पाबू धरमी जी म्हारी।
थाने वरदावाँ, बाँधाँ घूघरा।।28।।
सबदाँ ने करजो देवत, हाँचला जी रामा।
वाणी ने करजो, सगताँ वाँचणी।।29।।

केसर कालमी रो परसंग

हगरा देवी देवता ने वरदा भोपा ने फेर रणत्यो वजाड़यो, निरत करयो अर वखाण सुरु कर्‌यो –

सूता तो सूता पाबू मेहल में जी रामा,
होना रुपा रा ढरया परंगड़ा ।।30।।
हपनो तो देख्यो पेले परवड़े जी रामा,
केसर कालमी तो ऊबी जोवे वाटड़ी।।31।
सगत भवानी चत्त चारणी जी रामा,
घोड़ी तो बंधी हे देवल आँगणे।।32।।
ऊग्यो तो उग्यो हूरज ऊझलो जी रामा,
चाकर खंदाया पाबू कोठड़ियाँ।।33।।
साँवत चाँदो अन डोमो आया मेहल में जी रामा,
हाजर वेताँ ई कर्‌यो मूजरो।।34।।
हूकम फरमाओ पाबू पाल जी ओ राजल,
तारा तो लावाँ जा आगास रा।।35।।
हपना री तो वाताँ पाबू खोल दी जी रामा,
चाँदा डोमा ने सुणताँ जाण ली।।36।।
फोरन तो चालाँ गोल्ये मथाणे रे भाया,
घोड़ा तो झटपट भाया भीड़ लो।।37।।
सगत भवानी देवल चारणी रे भाया,
घोड़ी तो ऊबी हे वण रे आँगणे।।38।।
सगत भवानी केसर कालमी रे भाया,
घोड़ी तो लावाँ गा, आपाँ चला ने।।39।।

डोमा चाँदा ने लारे ले पाबू धरमी गोल्ये– मथाणे चारणी देवली रे मेहलाँ पौंच्या। देवली ने अगवाणी करी। आसन दियो। हाथ जोड़ ने बोली–

भल तो पधार्‌या पाबू मेहलजी धरमी,
देवल ने फरमाओ हूकम आप रो।।40।।
हूकम तो फरमाओ ठाकर पाबू वो,
कणी तो वचाराँ आया कोटड़ी।।41।।
हूकम तो खंदाता म्हारा नाम को जी पाबू,

हाजर तो वै जाती मेहलाँ आपरे।।42।।

पाबूजी

सुणले भवानी देवल चारणी तू हामर,
केसर कालमी बंधाई दे म्हारे आँगणे।।43।।
मोल तो चुकाऊँ हिरदा छावतो ए देवल,
होनो–रुपो खंदाऊँ ताकड़ियाँ तोल ने।।44।।

चारणी

हुणो जी हुणो पाल पाबूजी ठाकर,
होना तो म्हारे भरयो मोकरो।।45।।
घोड़ी तो लाई छी समदर पार ती जी पाबू,
सगत भवानी होंपी कालमी।।46।।
घोड़ा तो लाई गण ने चार जी पाबू ठाकर,
चारई तो म्हारा तप रा सार जी।।47।।
सुण लो पाबू पाल जी, सुरतो राखो जीव।
बारा बरस तपसा तपी, बेठ समंदर सीव।।48।।
सात समंदर पार जा, नत दन नीराहार।
सगत मात परगट वई, पूछयो हार हमार।।49।।
टूटमान वेताँ दिया, देवत घुड़ला चार।
चारई घोड़ा सगत रा, वाँट दिया उपहार।।50।।
सीतल्यो घुड़लो दियो, हाजर रामा पीर।
लीलड़यो जो दे दिया, देनारायण धीर।।51।।
तीजी घोड़ी ढलकड़ी, दी बूड़ा ने भेंट।
चौथी केसर कालमी, ऊबी बाड़े ठेट।।52।।
केसर कलमी जाणजो, सगती रो औतार।
उड़े गगन रे ऊपराँ, तरले समदर पार।।53।।
सात गोठड़ा पाछमा, तारा जड़या हात।
पाबू धरमी जाण लो, नी लागण री घात।।54।।
जो घोड़ी ले जावसी, करणो पड़सी कोल।
गायाँ री रगसा करे, वचनो देवे बोल।।55।।
धरी अमानत कालमी, खीची जी जिनराज।
थाँकाँ लागे जीजड़ा, आ जाओ थें बाज।।56।।

खीची रे गोचर चरे, गायाँ सुरभी लाख।
हिम्मत वे तो खोल लो, दाव लगे ली साख।।57।।

भवानी चारणी कछेलन देवली री वात सुण पाबूजी बोल्या–

भोरी हे भोरी देवल सुण ले वो,
गाँयाँ चराजे म्हारी लीली लीमड़ी।।58।।
पाणी को तो टोटो कोनी लीली मार वो,
थारी गायाँ की रखवारी पाबू जामनी।।59।।
खीची जो घेरे थारी गायाँ, देवल सुण ले वो,
दीजे तो हेलो म्हारी कोटड़ी।।60।।
वार तो चढ़े ला सुणताई हेलो वो,
गाँयाँ तो लावूँगा पाछी ठाण में।।61।।

पाबूजी री वात हुण देवली चारणी बोली–

डरो लूण रो देख लो, मेलूँ थाँके हात।
पण टाल्यँ गल जावसो, गरे लूण री जात।।62।।
लूण हथेरी मेलताँ, पाबू कर्‌यो कोल।
लूण गरे ज्युँ गर मरूँ, झूठा होवे बोल।।63।।
सुण ए सगती चारणी, दूपट देवाँ कोल।
वचन टर्‌याँ पाबू गरे (ज्युँ), गरे लोण रो टोल।।64।।
कूँची होंपो देवली, खोलाँ सातई गोठ।
सगत भवानी जामनी, साखी जामण होंठ।।65।।
होंठ धापमा खा पछे, दूद धवायो धाप।
जे पाबू वचना टरे, लागे दूद सराप।।66।।
दूद लजाणू मात रो, गरुँ लूण री भाँत।
बीसासी रईजे सगत, लूण धर्‌यो हे हात।।67।।
कँवला दे रो दूद हे, राठोड़ा रो खून।
वचन टरूँ तो मीलसी, करगट्या री जून।।68।।

पाबूजी री वाताँ सुण चारणी देवली बोली–

सुण लो पाबू पालजी, धर लेओ वीसास।
सातई तारा कूचियाँ, हे ऊदा रे पास।।69।।

ऊदो आवे तो खुले, तारा जड़या हात।
अतरे पौढ़ो मेहल में, राखो म्हारी वात।।70।।
सगत वे तो खोल लो, ताराँ जड़या सात।
कै तो पाछाँ जा पुगो, कोलुमंड रे भात।।71।।
सगत सवारी कालमी, सज आ जासो पाल।
केसर रहसी आप री, तिलक काढसाँ भाल।।72।।
नी छावे म्हारे हीरा मोती, होना भर्‌या भंडार।
थाँके–म्हारे बीच हे, साँभर लूण करार।।73।।
थें वचना डगजो मती, रइजो सत री ठोड़।
जे मूँ वचनाती डगूँ, देही फूटे कोढ़।।74।।

देवल चारणी री अतरी वाताँ सुण पाबूजी रोस में भर उठया। मनेमन आद सगत रो सिमरण कर सांवत डोमा नायक ती बोलया–

ऊठो साँवत डोमजी, धर पाबू रो मान।
सातई तारा खोल दो, हे पाबू री आन।।75।।
डोमो उठयो नायको, असल भीलणी पूत।
जाणे उठयो वे कोई, माता रो औ दूत।।76।।
चट्टी अंगरी खोल्या, सातई तारा कार।
पाबूजी री आन ती, छनक नी लागी वार।।77।।

वारत–सातई तारा खोलयाँ पछे पाबू धरमी हातवें गोठ पौंच्या। सातवों गोठ जाणे सातवों पातार। सातवें गोठ सगत भवानी री औतार केसर कालमी ऊबी भलकारा मारे। पाबूजी ने देख घोड़ी हींसवा लागी। पाबूजी केसर रे मेरे पौंच्या। केसर कालमी के धोग लगाई। केसर कालमी जीन श्रृँगार ती सजी–धजी ऊबी जाणे पाबूजी री वाट जोवती वे। पाबूजी ने केसर रे लगाम लगा। जीमणे हाथ ती मोर थपथपाई अने पायगा में डावो पग धार असवार वै गया। केसर ने रपटाता पाबूजी सातई गोठड़ा पारकर माणक चौक पधार गया। केसर कालमी ने माणक चौक में देख देवल चारणी औचक वई गी। वण का मूंडा ती सबद कढ़या 'धन्न–धन्न हे लछमण जती रा औरात पाबू पालजी।'

धन्न–धन्न पाबू पालजी, लछमण रा औतार।
केसर होई आप री, थें अण रा असवार।।78।।
जाओ आगासाँ उड़ो, करि लो सैर सपाट।

जाजो थाँके देस ने, खूब भोगजो ठाठ।।79।।
पाबूजी ने यूँ कहयो, चल केसर आगास।
चन्दा मामा रे घरे, रात कराँ रा वास।।80।।

अतरो सुण–पाबूजी रो हुकम पा केसर आगास में उड़ चली। डोमो–चाँदो औचक वई देखता रई गया। घोड़ी तो आँखाँ ओजल वई गी। वी जाण्या या कोई देवली रो छल दीखे। दोई रीस खाताँ बोल्या–

घोड़ी लेताँ खो गया, देवल पाबू राव।
सौदो मोंहगा मोल रो, पड़यो कारजे घाव।।81।।
पाछी फेरो कालमी, सुण लो देवल वात।
नीतर लूटाँ गामड़ी, गेहरी करसाँ घात।।82।।
गेल्यो मंथाणो कराँ, गारत धूरम धूर।
ब्याज सुदा खोयो गजब, पाबू धरमी मूर।।83।।

देवली

गेल्यो मेथाणो गणो, जिन खीची रे हात।
झटका में बटका करे, करे गेहरड़ी घात।।84।।
केसर घोड़ी लइ गया, खुद ई पाबू पाल।
खुद ई पाछाँ लावसी, औतरी खुसहाल।।85।।

अतरी वाताँ केताँ–सुणता, आगास में भलकारो वियो। हगरा देखे के पाबूजी केसर कालमी असवार धरती पे उतर रह्या रे। पाबू यूँ दीखे जाणे इन्दर देवता एरावत असवार धरती पे पधार रह्या वे। पाबूजी जी री जै–जै कार वेवा लागी। पाबूजी घोड़ी असवार माण चौड़ आई उतर्‌या। सगत भवानी चारणी ने पाबूजी री आरती उतारी। भाल पे तिलक लगायो। फूलाँ री निछावर करी। चारणी कछलेन यूँ बोली–

धन–धन पाबू पालजी, धन सत रा औतार।
धन वई केसर कालमी, आप विया असवार।।86।।
पाका गाठा राखजो, सत रा खूँटा चार।
सत रा पालन हार थें, वचना रा धरतार।।87।।
गऊ बामण रख कारणे, धर्‌यो मनुज औतार।
हे जुग रा धरमी धणी, सत–मत राखण हार।।88।।

चारणी देवल ने पाबूजी को खूब जस गायो। केसर कालमी री असवारी कोई

औतारी मनख ई करस के। एरो गैरो तो आण री वाग बी नी ढाब सके। सगत माता ने कह्यो थो केसर कालमी पे लछमन रो औतारऽज असवारी कर सकेगा। आप लछमन औतार हो। अठा ती आप सीधा पुष्कर पधारो। वठे आप बी असनान करजो। केसर ने की हपड़ावजो। आपरी औतरी लीला री सुरुआत वठातीऽज वेगा।

अतरो के चारणी देवल ने पाबूजी री फेर ती दुपट आरती उतारी। केसर कालमी री बी आरती उतारी अम। एक मोर भेंट में दे विदा कर्यो।

मलणो पाबूजी अर गोगाजी रो

पुस्कर चाल्या पालजी, वै केसर असवार।
धन्न–धन्न धीरज धणी, गउआँ रा रखवार।। 89।।
पेले वासे जा कर्यो, चम्पा बाग मुकाम।
सांगल माललण रो कर्यो, मेहल तीरथ धाम।। 90।।
दन तो दूजो ऊगताँ, पौंच्या पुसकर राज।
केसर ने हपड़ावताँ, कर्यो पूरण काज।।91।।
मरग छोड़ायो डील रो, चमक्यो चलक सरीर।
भलकरो एसो करे, ज्युँ गंगा रो नीर।।92।।
चाँदो तो असनानयो, निरमल आगम घाट।
पेली पंगत डोमयों, खूब जमायो ठाट।।93।।
घाट धराऊ पूगया, पाबू पुस्कार तार।
पंगतिया गण रपसणी, पाबू धारी धार।।94।।
पग रपस्यो पण ढाबयो, परगट गोगा चव्हाण।
कमर कटोरी सोवती, खाँधे तीर कमाण।।95।।
मुलकाता गोगा कह्यो, पाबू राखो ध्यान।
अण जग में रपसण घणी, रेहवे हरदम भान।।96।।
ज्ञानवान रपसे नहीं, पग धारे घण सोच।
होच हमज पग धारजो, रेह नी पावे पोच।।97।।

रपसणी पंगतियाँ ती पग रपसतो देख झट गोगाजी परगट विया अर पाबूजी ने ढाबता बोलया पाबूजी यो संसार रपसण्यो हे। होच हमज ने पग मेलजो। दोई औतार मुलकाणा। गरे मलया। पाबूजी ने कह्यो–

भल तो पधार्या गोगाजी पुस्कर घाट पे,

म्हारा पिराण तो रखाया बाहयाँ ढाब ने।98।
मांगो तो मांगो गोगा वासग जी,
देऊ तो देऊँ मोटा भाव ती।99।
केवो तो परणाऊँ केलमदे भतीजी वो,
चालो थे पधारो म्हारो लार ने।100।

गोगाजी

केलमदे परण्या बढ़सी म्हारो माण।
धन्न–धन्न हो जावसी, सामर गोग चव्हाण।।101।।
हे पाबू राठौड़ जी थें धरमी दातार।
वचन निभाजो वचन रो, हे सत राखणहार।
पाबूजी अर गोगाजी लारे चाल कालूमंड पौंच्या।
हरियाला बाग में गोगा जी रो मुकाम लगवायो।।102।।

गोगाजी अर केलमदे री समपण

आगले दन पाबूजी चम्पा बाग में गोगा जी ती मलवा पधार्‌या। सात कलियाँ रो रेसम झग्गो, राठौड़ी पाग, मोती माणक रा नौसरहार, मुलमुल री मोजड़ियाँ जा मान–पान रे साथ गोगाजी रे भेंट दे गले मलया। मेहल में पधारवा रो मोतो दियो।

सजधज गोगो सूरमो, पौंच्या मेहलाँ माँय।
बूड़ा जी आगम करी, भला पधार्‌या भाय।।103।।
सासन दे पधरावया, खूब करी मनवार।
गोगा जी मौको तके, मन री वात सम्हार।।104।।

गोगाजी

हात जोड़ गोगा कटे, सुणो बूड़ा जी राव।
केलम जी संग ब्याव रा हे हिरदै में चाव।।105।।
मान–पान मरजाद ती, प्रथम नमाऊँ माथ।
नमतो वै मांगूँ पछे, केलमदे रो हाथ।।106।।

बूड़ाजी

गोगा जी री वात सुण, बूड़े आयो रोस।
रीस भरया ऊबा विया, पण गोगा खामोस।।107।।
थे आया हो पाँवणा, नी खण्डू मरजाद।

नीतर खांडो हाथ ले, माथो करतो आद।।108।।
आदवेर जाणे जगत, चव्हाणा–राठौड़।
कसतर सगपण वै सके, कवो गोग राठौड़।।109।।
जसा पधार्‌यो हो अठे, वेसाई जाओ सिधार।
नी तर बढ़सी गोगाजी, घण गाठी तकरार।।110।।
थोड़ा में ई हमज लो, अरे गोग चव्हाण।
वात बढ़याँ होवसी, मान–मरज री हाण।।111।।

बूड़ा जी राठौड री रीस भरी वाताँ सुण गोग जी आसण ती उठ बाऽरने पधार गया। बाऽर ने पाबूजी ऊबा मुलकाता ऊबा था। पाबूजी मुलकाता थका बोलया–

पाबूजी मुलकवता, बोल्या सरस सनेह।
जाणे इन्दर लोकती, इमरत बरस्यो मेह।।112।।
गोगा जी धिरता धरो, बागाँ करो मुकाम।
कह्‌या वचन नी टर सके, अण धरती अणधाम।।113।।
प्राण टरे प्रण नी टरे, यो पाबू रो कोल।
केलमदे परणावसाँ, हाँचा करसाँ बोल।।114।।

गायक

पाबूजी लीला करी, अजब रचायो खेल।
वासग नाग बेठा दो, चम्पा डाली बेल।।115।।
चम्पा ऊपर बेलड़ी, जाँ पे बैठ्‌यो नाग।
केलम आई झूलवा, झूला चम्पा बाग।।116।।
चट्टी आंगर काट्‌यो, मचगी हा हा कार।
केलम जी री आँगरी, वै गी खूनाझार।।117।।
मेहलाँ में हमचो वियो, वै रई भागमभाग।
तंतर, मंतर वै चुक्या, फूटण लागा भाग।।118।।
केलमदे नी बच सके, खा गयो जेहरी नाग।
पाबू धरमी आवजो, मूँडे आया झाग।।119।।

पाबूजी

बागाँ जाओ दौड़ ने, गोग करो हमचार।
हात जोड़ विनती करो, करजो आरत पुकार।।120।।
वासग रा औतार हे, गोगा पीर सुजान।

गोगा जी वंचा सके, केलमदे रा प्रान।।121।।

गायक

बूड़ा जी बागाँ गया, गोगा जी रे वास।
लुर–लुर ने आरज करे, नम–नम ने अरदास।।122।।

गोगाजी

गोगाजी मुलकाण्या, मन चित राखी धीर।
बूड़ा जी धिरता धरो, जग में केलम सीर।।123।।
जहर उताराँ नाग रो, हर लेवाँ सब पीर।
हूकम पाबू रो बणे, करणी गोग फकीर।।124।।

गायक

तुरताँ फुरताँ पउँच्या, गोगा मेहलाँ माँय।
जहर गणो गेहरो छड़यो, देर करणी री नाँय।।125।।
केलम जी री आँगरी, धर मूँडा रे भीर।
जहर चूघयो गोगजी, हर ली तन–मन पीर।।126।।
केलम उठ ने बेठगी, जाणे सूती जाग।
गोगा जी ने देखताँ, हिरदै बाज्यो राग।।127।।
गोगा जी री वै उठी, मेहलाँ जै–जैकार।
धन्न–धन्न चव्हणजी, कौटड़िया सरकार।।128।।

पाबूजी

गोगा जी रो जाण लो, केलम पे अधकार।
हांचो हाँचल जाणजो, वासग रो औतार।।129।।
बूड़ा जी मेटो परी, बेअरथी तकरार।
गोग जी ने ढाब लो, कर लेवाँ मनवार।।130।।

गोगाजी जहर जूघ पाछा मेहल ती बाग में पधार गया। केलम रो मन बी गोग चव्हाण रे लारे लार बाग में चल्यो गयो। पाबूजी ने भोजताई ती कह्यो–

भोजाई जी ओ म्हारा, सुणो तो साम्हरो जी म्हारी वातं
बाई केलम तो वई चूकी हे, अमानत गोगा चव्हाण री।131।
गोगा जी गुसाई तो सत् रा धरमी वो,
बाई ने तो परणावाँ गोगा चव्हाण ने।132।

जोड़ी तो बणाई विधना लगना ती,
आपाँ काँ वगणा विधना लीखियो।133।
म्हारी जो मानो तो हामी भर लो भावज म्हारा वो,
नारेर तो मुकलावाँ सामर कोटड़ाँ।134।

भावज

पाबूजी म्हारी सुणो, ध्यान लगाताँ वात।
गोगा जी ने दे सकूँ, मूँ केलम रो हात।।135।।
राठौड़ चव्हाण रो, वैरो करे अड़ाव।
ठाकुर सा माने नहीं, कद्याँ परण सुझाव।।136।।
पाबू थे जाणो घणे, उग्गम–पछम विचार।
थें ई बोलो कस तरां, वे सगपण निरधार।।137।।
दादो सा हठ नी करे, यो म्हारो वीसास।
हात जोड़ करसाँ घणी, लुर–लुर ने अरदास।।138।।
केलम रे हिरदे बस्या, गोगा जी चव्हाण।
बूड़ा जी करसी अवस, नेह पेम रो माण।।139।।
राजपुतानी रे हृदय, जो नेहो बस जाय।
दूजा ने चीन्हें नहीं, प्राण भले कढ़ जाय।।140।।
बूड़ा जी ज्ञानी घणा, जगत रीत रो भान।
सूज–बूज करसी अवस, गोगा जी रो मान।।141।।

देवर भाभी री वात–विचार सुण बूड़ा जी मेहल रे भीतर पधार्‌या अर बोल्या–

वाताँ तो देवर भाभी री सुण ली गुण ली पाबू वो,
नारेर तो मोकलावाँ सामर कोटड़ाँ।142।
गोगा जी औतारी दीखे म्हने जाण्यो हे,
केलम का घण मोटा भाग जाणया।143।

पाबूजी

नारेर तो मोकलावाँ हरियल बागाँ होकम दादो सा,
टीको लै चालाँ ला सामर कोटड़े।144।

पाबूजी रा वचन–कोल पूरा विया। गोगा जी ने नारेर झेल लियो। नारेर झेलायाँ पछे पाबूजी मुकालाता थका बोल्या–गोगाजी आपने नारेर झेल म्हाँको मान बढ़ायो। आप काल पोड़े, सामर रो सफर करो। आप वठे पौंच, जान जोड़ावजो, म्हों टीको लैने

सामरकोट हाजर होवाँला। पाबूजी री वात साम्हल गोगाजी आगले दन परौड़े सामर कोटड़े रवाना वै गया।

गोगा जी अर केलमदे री परणापत

सामर कोटड़े पउँच गोगा जी चव्हाण ने जान री तियारियाँ करवा लागा। नूता मोक्लण सरु वै गया। पेलो नूतो गवरीनन्दन गणेसजी रे, दूजो नूतो वैमाता रे, तीजो नूतो कुलदेवी रे, चौथो नूतो पूरबजाँ रे, पाँचवों नूतो भैरवजी रे। छटों नूतो सतियाँ रे, सातवों नूतो कच्छप जी रे, आठों नूतो रामजी रे, नवों नूतो क्रसनजी रे, दसवों नूतो रामापीर जी रे, ग्यारवों नूतो लछमण जी, बारहवों नूतो जोगण्या–भवानी जी रे, तेहरवों नूतो मादेवजी रे, चवदवों नूतो सरवण जी रे, पंद्रहवों नूतो हणुमान जी रे, फेर हूरज, चन्द्रमो, भोमियाजी, होमियाजी रे नूता मोकलाया गया। जातमाता, गामखेड़ा रा पटेलमूखियाँ रे नोता मोकलाया। जण रे बाद हगा होई, जात बिरादरी, अन परजा रे नोता मोकलाया।

गायक

जान जोड़वा में जुट्या, वासग रा औतार।
जोड़ी विधना ने लिखी, गोग करी सवकार।।145।।
वासग री राणी बणे, केलमदे सतनार।
पाबूजी मेलो कर्यो, विधा रे निरधार।।146।।

गोगा जी चव्हाण री वारात सज धज तमितियार वैगी–

गायक

सजगी जी सजगी गोगा जी री जान वो,
वाजे तो नगाड़ा मंगल गावणा।।147।।
वासग जी तो पूज्या मारग वीचे जी,
पूजी तो पूजी जी काँकड़ खेजड़ी।।148।।
गो माता तो पूजी–पूजी रोड़ी वो,
सतियाँ अर कुल देवत हगरा पूजिया।।149।।
तीजे तोवासे जाई पौंच्या हामू तोरण वो,
राठौड़ा तो बंधायो मंगल तोरणो।।150।।
गोगा जी ने वंदियो तोरण झलमल वो,
सासूजी लै आया मंगल आरती।।151।।
आरती में छोड़ो पाँच सै माराँ वो,
रिपया तो गण देवो गोगा पाँच सै।।152।।

गोगा जी ने सासू रो मान राखताँ पाँच सै तो मोहरा अने पाँच सै रिपया आरती री थाली में नजर कर दिया। सासूजी ने रिपया माथे छड़ा गोगा जंवाई पे निछरा दिया।

निछावर करताँ सासू गोगा जी री आरती उतारवा लगा। हामू देखे तो बड़ो जंगी वासग नाग फन फैलो ऊबो। सासू जी दरप रे मार्याँ धूजवा लगा। गोगा जी ने अपणी माया पाछी हमेट ली। वी बोल्या–सासूजी असा काँ दरप्या ? थें तो यूँ दरपाया जाणे हामू कोई वासग नाग ऊबो वे। थें दरपो मती। आरती उतारो। ने पाछा मेहल में पधारो। चँवरियाँ में केलम म्हारी वाट जोवे। लगन मती चुकाड़ो। गोगा जी रो मुलकातो सज्यो–धज्यो रूप देख सासूजी हरसित वै उठ्या अने जंवाई बना री आरती उतारी। निछावर कर पाछा मेहलाँ पधार्या।

गायक

बामण ने चँवरी तो मंडाड़ी माणक चौक में जी कोई,
होम तो करवायो विदि नेम ती।।153।।
होना रूपा री तो ठोकी खीलाँ चौतराँ जी कोई,
रेसम तो लपटाया डोरो सतरंगो।।154।।
ऊपर तो पटका रेसम तंबू ताण्याजी,
हथलेवो तो जोड़ायो केलम–गोगादेव रो।।155।।
हथलेवो तो हींचाओ माऽर बाप वो,
फेरा तो फर लीया डायच देवसाँ।।156।।

डायचा री वात सुण गोगा चव्हाण मुलाकाता थका बोल्या–

डायचा में तो लेवसाँ, केलमदे सतनार।
अणा ऊपराँ ती बड़ो, नी जाणू उपहार।।157।।
केलम दे परणी करूँ, नी लेऊँ भीख अरदान।
जीवतयाँ रगसा करूँ, सदा राखसाँ मान।।158।।
कन्या नी हे दान री, नी हे बछिया गाँव।
दान भीख जो भी मले, नी वे वण रो मान।।159।।
धिक धिक एसा मिनख ने, डायच राखे आस।
अंग कमाई धरम री, जाणे सरगाँ वास।।160।।
हथलेवो भल हींचजो, करां नहीं इनकार।
जतरो जण रे मन रुचे, हींच सके परवार।।161।।

केलमदे रो परवार हतलेवो हींचवा लागो। बूड़ा जी ने एक सै धोरी गायाँ हतलेवा में हींची। गेहलोताँ रा मामा परवार ने पाँच हाती हींचया। साँवत हरदल राइका ने दखणी चीर ओढ़ाओ, माता भीणवी जी ने अपणा गरा रो नोसरहार हींचयो, साँवत चाँदा ने होना रो चूड़लो हींचयो, साँवत डोमा नायक ने हवामण गजमोती हींचया, पाबूजी आँख मूँद समाद में बेठा परमानंद में मगन वै रह्या। वण ने कई बी नी हींचयो। पाबूजी ने सुन्न–मुन्न बेठा जाण बामण केवे–

पाबूजी क्युँ छाना–माना बेठा जी,
थें बी तो हींचाओ हथलेवो केलम देइ रो।162।
बामण री पुकार सुणताँ पाबू भान्या वो,
टूटी समाध गेहरी पाबू पाल री।163।
छोड़ाओ जी हतलेवो बामण देवत वो,

पाबूजी

एक सै तो ला देऊं लंका री भूरी–राती सांडियाँ।164।
पाबूपालजी री असी अणवेती वात हुण हगरा औचक वै गया।

गायक

हगरा तो ओचकाया सुणता पाबू कोल जी,
कई जी पाबू थे होया अमलाँ पीवणा।165।

पाबूजी रा कोल सुण बाई केलमदे बोल्या–

हुणो तो हुणो जी काका पाबू धरमी वो,
अणवेता क्युँ बोलो एसा बोल जी।166।
हींचो तो हींचो जो थाँके कबजे वो,
हीचणी में बक्सा दो केसर कालमी।167।

पाबूजी

केलमदे री वात सुण, पाबू भर्या सनेह।
मुलकाता यूँ बोल्या, ज्युँ हावण रो मेह।।168।।
केसर ने यूँ जाण लो, सगती रो औतार।
जीवजड़ी म्हारी कहूँ, प्राणाँ रो आधार।।169।।
तीजे मइने लावसाँ, साँडाँ म्हारो कोल।
प्राण टरे तो भल टरे, टरे न पाबू कोल।।170।।
खुद आ थारे सासरे, साँडाँ होपूँ आय।

केलम हिरदै दाड़ रख, वचन न झूठा जाय।।171।।
केसर ने यूँ जाण लो, सगती रो औतार।
जीवजड़ी म्हारी कहूँ, प्राण रो आधार।।172।।

काका री वात सुण केलमदे छानी वई गी, अने खम्मा घणी केह अपणा बोलाँ री माफी मांगी। हथलेवो छूट्यो, फेरा व्या। गोगा जी केलमदे ने साथे ले कालूमंड ती विदा वे चव्वाणा रे सामरकोट पौंच्या। केलमदे वण रे सासरे राजी बाजी रेवा लागी।

केलमदे ने नणदबाई रो ओलमो

गायक

केलमदे री सासरे खूब होए मनवार।
गोगा जी घण मान दे, मान देय परवार।।173।।
राजा परजा दोई में, एक वात निरधार।
नणद–भोजाई में सदाँ, वेती रे तकरार।।174।।

एक दन री वात–नणदल अर भोजाई चौक में बेठी रेहटों काते। रेहटों कातताँ–कातताँ वात विचार भी चाले। केलमदे री नणदल यूँ बोली–

ऊँची तो बोली मती बोलो भोजाई म्हारी वो,
लापर तो हे थाँ रो हगरो परवार जी।।175।।
ऊँचो तो घण हुण्यो नाम थारे काका रो,
वचना रा तो झूठा पड़ ग्या साबताँ।।176।।
कठे तो गी साँडणियाँ लंका देस री,
बीतवा तो आया मइना तीन जी।।177।।
कै तो भूले पड़े ग्या गेल थाँरा काका वो,
कै तो पड़गी हे कोई लूट मारग आवताँ।।178।।
सुण्यो तो घण सुण्यो पालणहार वचना पाका हो,
कोल तो पाबूजी झूठो बोलया।।179।।
हमचो तो मोकलाओ थाँका काका ने,
गारा री बणवा ले एक सै साँडणियाँ।।180।।
वचना रो पालण कर ले थाँका काका पाबू जी,
खलकणा मोकलावे सामर कोटड़े।।181।।

नणदल असा कवड़ा बोल सुण केलमदे ने असो जणायो जाणे तीखा–तीखा जेर

बुझया बाण कारजा में धंस गया वे। रेहटों भींत पे पटक केलमदे मेहल में जा परंग पे जाई पड़ी। रोताँ–रोताँ आँखाँ हूज गी। चाकर ने भेज पटवारी तेड़ाओ। पटवारी ती सनेसो लिखवा काका पाबूजी रे कालूमंड भिजवायो। कागदमें केलम दे ने लिखड़ायो–

केलम दे

कागद लख ने भेजो जी पटवारी म्हारा काका रे,
क्युँ कर्‌या जी अणवेता कोलड़ा।।182।।
कै तो मोकलाओ जट–पट लंका सांडणियाँ,
नी तर मर मीटूँ कारजे कटारी घोंप ने।।183।।
कासी करवत लेऊँ करवत जी काका म्हारा वो,
माथो तो भड़ीकूँ ऊबी भींतड़ी।।184।।
बल ने मरमीटूँ सुण लो काका वो,
चिता तो चणवाऊँ माणक चौक में।।185।।
लागे गा सराप बेन–बेटी रो काका पाबू वो,
धोयाँ नी धूलेगा कारो डागचो।।186।।
काको सा हे ठा मने, थें सत पालणहार।
पार–पोस मोटी करी, कर्‌या नेह दुरार।।187।।
थे द्यारो तो ला सको, हूरज चंदो तार।
जाणे क्युँ थें भूल्या, अपणा कोल करार।।188।।
पड़े ओलमो बाप के, हिरदै लगे कटार।
झटपट लाओ सांडियाँ, सतरा पालणहार।।189।।
लागे गा सराप बेन–बेटी को जी काका,
मेट्‌याँ नी मीटेगा गेऽरो पाप जी।।190।।

लंका रो हरो

कागद ले हरदान मींडो कोलूमंड पाबूजी की कोटणियाँ पौंच्यो। पुकार लगाई। चाकर ड्योड़ीवान भागता–भागता मेऽहलाँ में गया। मुजरो कर खबर करी के अन्नदाता बाई केलमदे रा सासरा ती पाँवणा पधार्‌या। आप ती अबार रो अबार मलणो छहावे। ठाकर पाबूपाल ने ड्योड़ीवान रे हुकम दियो के पाँवणा ने फोरन मेऽहलाँ में लाओ।

हरदान मींडो पाबूजी रे हामू हाजर व्यो। मुजरो कर अंगरखा में ती कागद काढ़ पाबूजी रे हामू मेल दियो। कागद वंचवायो गयो। हमचो जाण पाबूजी मुलकाणा अन हरदान मींडो ती कह्‌यो–हरदान जी आप आज री रात मेऽहलाँ में ढब जाओ। हवेराँ

पाछा पधारजो। केलमदे ने कीजो के थारो काको थारी हीचावण लै खुद थारे सासरे आवेगा। पूरो पक्को वीसास राखे।

चाँदा–डोमा बुलवाया गया। वात वचार व्या। डोमो केवे ठाकर पाबू जी हूकम फरमाओ म्हें दोई लैका देस जा दरयाव पार ती साँडनियाँ घेर ने हाजर कराँ। चाँदा ने कह्यो म्हारी मानो तो पेलाँ हेरो लावाँ। फेर धावो कराँ। आगले दन दरबार लागो। बीड़ो फेर्‌यो गयो।

गायक

बीड़ो तो ले हात चारण भर कचेरी फेरियो,
हामूँ आताँ इ साँवता का माथा होवे नीचला।।191।।
बीड़ा ने तो पाछाँ फरताँ देख्यो जी हरदले,
उठ्‌यो ने बीड़ो लियो झेल जी।।192।।

पाबूजी

कण ने तो झेल्यो बीड़ो फीरतो ए डोमा।
में नी पाया जी ओरख यो वीरो कूण हे।।193।।

डोमा

बीड़ो तो झेल्यो हरदल राइके जी पाबू,
हेरो तो नी ला पावेला यो लँका भोम को।।194।।
लंका में तो वासो रागस मोकरा जी रावत,
पाछो तो नी आवे कोई जीवतो।।195।।

चाँदो

हरदल तो घण अकल वारो साँतरो रे डोमा,
हे सगत भवानी वण के लार जी।।196।।

अतरी वाताँ वेताँ करताँ, सूणताँ हरदल राइको पाबूजी के हामे हाजर होयो। मुजरो कर अरज करी–

हेरो तो लै आऊँ लंका देसरो जी पाबू धरमी वो,
लारे तो भवानी म्हारे जाणजो।।197।।
होकम तो फरमाओ धरमी पाल राजा पाबू वो
माथा पे आसीसाँ धर दो हातरी।।198।।

पाबूजी

जाओ–जाओ हरदल लंकाऊ दिसा रे भाया हरदल वो,
सगत भवानी थारे लार हे।
लेओ या कटार म्हारी सगत की ए हरदल वो,
अणके वेताँ तो नी हावे कोई घातजी।।199।।

पाबू पाल को हुकम ले, हरदल माता रो मेऽहलाँ में गयो। माता को आसीरवाद ले वदा ली। वाँती हरदल रातों रात लंकाऊ दिसा में रवाना वई गयो। मारग में पाबूजी को हरियालो बाग आयो। बाग में गोरखनाथ जी को डेरो पड़यो जाण। बाग में जा गोरखनाथजी के धोक दे अरज करी के हे गरु माराज। मूँ लंका देस साँडनियाँ रो हेरो लेवा जाऊँ। आप मने चेलो बणाओ अन आपकी सगद देओ। हरदल थूँ धरमी पाबू पाल रो कारज सारवा जावे। खुद पाबू थारी रगसा राखेला। बाबो बणनो कठन काम हे। तू बाबो बणवा को वचार छोड़ दे।

गोरखनाथ

दोरा तो लागेगा छरियाँ का घाव ए हरदल,
दोरो तो धूणी तप को तापणो।।200।

हरदल

सोरा तो लागेगा छरियाँ घाव गरुजी साँचा,
सोरो तो लागेगा तप को तापणो।।201।।

हरदल को पाको वचार जाण गुरु गोरखनाथजी ने हरदल का कान फोड़ मुंदणा फेराई दिया। कान में गरु मंतर फूक्यो। गरु गोरखनाथ ने कह्यो–

सुणले हरदल राइका, जाओ लंका देस।
काम संवारो हेरो लाओ, बिधन न आवे लेस।।202।।

गरु माराज रो आसीरवाद ले हरदल लंका के मारग चाल पड़यो। समदर के कनारे ऊबो वचार करवा लागो के अबे परले पार कसतर जाऊँ। हरदल वीनत करे–

तूठो तो तूठो पाबू धरमी हाजर नाजर वो,
हरदल री तो कर दो सायत वेगताँ।।203।।
सिमरण तो लगावे गुर गोरखनाथ रो,
सगत भवानी वेगा तो हाओ सायके।।204।।
गेलो तो बणा दरिया पार रो गेहरा दरिया रो,

उतरुँ तो उतरु परले पारजी ।।205।।

हरदल ने मनोमन पाल पाबूजी को ध्यान लगायो–

आगास में चमकारो भलकाणो। हरदल आगास में कई देखे के सगत भवानी केसर कालमी आगास ती नीचे ऊतर री है। केसर हरदल रे हामूँ आइ ने ऊबी वई गी। हरदल राइको हरख उठ्यो। अने हे पाबू धरमी। कोटड़ियाँ बेठ म्हारो हेलो हुणयो। हरदल केसर पे असवार होओ। केसर उड़ चाली समदर रे ऊपरे। देखताँ–देखताँ जा पऊँची लंका देस में समदर के पेले कनारे। हरदल घोड़ी ती नीचे उतर्‌यो। चारी चुमेर हरदल कई देखे–

गायक

दन तो ऊग्यो हे रातो ऊजलो जी कोई,
हामो हाम तो दीखे मेऽहल लंका राज रा।।206।।
मेहलाँ भलकारे आँखाँ करमरे जी रामा,
डावें तो दीखे राती, भूरी साँडणियाँ।।207।।
हरदल तो हरखाणो हिरदे छावणो जी कोई,
किरपा तो घण होई गुर गोरखनाथ री।।208।।
असा जीव तो कदी नी देख्या जी रामा,
दौड़े तो उजगावे कूबड़ ओचकी।।209।।

हरदल ने असा जी पेलाँ कदी नी देख्या था। हतरा जागा ती वाँकी चूकी हाँडाँ देखे। हरदल ने अनमान लगायो के वे नी वे ईऽज हाँडा हे। हेरो तो ले ल्यो। निसाणी लैने चालणो पड़ेगा। हरदल में खाँक ती झोलो उतार वण में मींगणिया भरली। दरयाव कनारे आ नमन कर पाबूजी अन गरु गोरखनाथ रो समरण कर्‌यो।

सगत भवानी केसर कालमी आगास ती नीचे ऊतरी। हरदल असवार वै ने दरयाव पार आयो। केसर कालमी के धोग दे रवाना करी।

कालूमंड जा मेऽहला में खबर कराई। पाबूजी के हामे पौंच मुजरो कर्‌यो। हेरो लावा रा हमचार अरज कर्‌या।

पाबूजी

धन रे हरदल राइका थारी जामण को अमर दूद,
थने आछो लगायो हेरो लंका देस को।।210।।

केवो ओ हरदल खोलने रे भाया,
कसतर तो कर्‌यो हेरो रावण देस को।।211।।

हरदल

गुर गोरखनाथ री तो होई मेहर जी पाबू,
सगत भवानी रो तो होई पूरी राख जी।।212।।
आपकी तो लागी धरमी पावती जी पाबू,
केसर भवानी ने करायो दरया पार जी।।213।।

पाल पाबूजी आप म्हारे ती क्यूँ पूछो। आप तो अगम–पच्छम हगरो जाणो हो। अतरो के हरदल ने खाँक को झोलो जाजम पे उलट दियो। जाजम पे हाँडाँ री मीगणियाँ वखरगी।

चाँदो–डोमो

खरो रे खरो थारो हेरो रे हरदल,
खरी तो ले आयो हेनाणी ठेठ ती।।214।।
धन रे धन थारी जामण रे हरदल,
धन तो हे थारी हीमत जाण ली।।215।।

पाबूजी

धन रे भाया हरदला, धन रे थारी जाम।
प्राण रो मो त्यागताँ सरयो म्हारो काम।।216।।

घेर लाया सांडणियाँ

हरदल राइका लंका रो हेरोले आयो। पाबूजी ने हरदल री खूब तारीफ करी। दो गाम अने दो कोस रो बीड़ो देताँ खूब मान बढ़ायो। राइका रो सनमान करयाँ पछे पाबूजी बोल्या–

डोमा चाँदा राइका, वै जाओ तैयार।
सस्तर साजो छावता, कम्मर खुसो कटार।।217।।
सुरता कर लो घोड़ला, वै जाओ असवार।
घुड़ला साजो तुरत ने, लो हाथाँ तरवार।।218।।
तीन–तेर जावाँ नहीं, हरदल चलसी लार।
हेरो लायो राइको, मारग जाणणहार।।219।।

साजो केसर कालमी, सगती रो औतार।
सिंह सूपतो सूरमो, करे करारो वार।।220।।
माथे मोटो करज हे, देवाँ परो उतार।
केलमदे ने होंप दाँ, साँडाँ रो उपहार।।221।।

पाबूजी डोमा–चाँदा ने लारे ले, सस्तर साज घुड़ले असवार वे लंकाऊँ दिसा ने चाल पड़या। हरदल राइको आगे चाले अन पाबू सूरमो साँवता रे साथे पाछे। घुड़ला असा दौड़े जाणे हवा रा बेटा। दूजे वासे दम ऊंगताँ दरयाव रे कनारे जा पुग्या।

डोमा

सिंध नदी कल–कल बहे, हे मोटो दरयाव।
आर–पार हूजे नहीं, गेहरो घणो बहाव।।222।।
लंक थली कसतर पुगाँ, केवे पाबू राव।
घुड़ला ती नी वै सके, पार बड़ो दरयाव।।223।।

चाँदा

पूजाँ पूरा नेम ती, जसतर पूज्यो राम।
चार नीतियाँ ती बड़ी, समता नीती साम।।224।।

पाबूजी रो हुकम पा दरयाव सिंध री पूजा करी। अरज कर कह्यो हे दरयाव देव म्हाने पार उतरवा रो मारग देओ। दरयाव तो हरवरयो कोनी। बाढ़ रो पाणी कनारा काट कोसाँ–कोस फेल गयो। असो लागे जाणे कोई समदर वे। चारी जणा वचार में पड़ गया। कराँ तो कई कराँ। पेले पार तो जाणो पड़ेगा। अतरा में डोमो बोल्यो–

हंकारी तो होयो घण सिंह दरयाव पाबू धरमी वो,
हंकार तो भाँगीजी सगत आप री।।225।।
भालो तो भलकाओ अगन बाण पाबू सूरा हो,
पाणी तो हुकाओ वेवे मारगो।।226।।
हुकम तो फरमाओ चाकर ऊबो हामू वो,
समदर तो पी जाऊँ सगत आप री।।227।।

पाबूजी

अगन बाण ती सूखसी, सिंद बड़ो दरयाव।
मरसी जीव हजारड़ा, सोचाँ बड़ा उपाव।।228।।
अरज्याँ मारग नी मले, दण्ड दियाँ ती हान।

जीव दया बड़ धरम हे, बड़ो प्राण रो दान।।229।।
वै जाओ तुरताँ सबै, घुड़ला पे असवार।
म्हारी सगती ती कराँ, सिंद समंदर पार।।230।।
ऊबी केसर कालमी, सगती रो औतार।
ले जासी हगराँ अवस, केसर परले पार।।231।।

अतरो केह हगरा घुड़ले असवार विया। केसर कालमी पे असवार पाबू धरमी भालो दरयाव में डबोक आगे चाल्या। दरयाव रा विचे चौड़ो मारग खुल गयो। चारी जणा राजी खुसी घुड़ला रपटाता दरयाव पार कर लंका थली जा पुग्या।

लंका की भोम पौंच्या तो कई देखे के हाँडाँ का झुंड का झुंड चरवा चाल पड़या। चाँदा–डोमा हाँडा देख औचक वई गया। हे भगवान थने बी कसा–कसा जीव बणाया। पाबूजी ने हुकुम दियो के डोमा राइका ने केओ के हाँडाँ ने घेर ले अन दरयाव रे पार करनो सरु कर दे। हाँडा का रखवारा हामूँ आ डट्या। चाँदा ने खाँडा रा वार ती हगरा रखवारा खंडत कर दिया। हाँडा ने घेर राइको चाल पड़यो। हाँडणियाँ घेर्याँ पछे पाबूजी ने ललकार लगाई–

घेरी के घेरी थारी हाँडाँ ए राजा रावण,
हीमतजो वे तो पाछी फेर ले।।232।।
आगे तो चाले हाँडा घुड़कारती जी रामा,
पाछे तो चाले राइको जोस में।।233।।

ठाकर पाबू राठौड़ की ललकार सुण दूदो सूमरो रावण फौज ले समदर कनारे आ डट्यो।

रावण
कण ने घेरी म्हारी साँडनियाँ रे धाड़ेती,
के कण रे तो लूमे माथे मोते रे।।234।।

पाबूजी
घाड़ेती वेता तो जाता भाग ने रे रावण दूदा सूमरा,
चौड़े तो लइ जाऊँ थारी साँडणियाँ।।235।।
घात लगाई पाबू पाल ने रे रावण सूमरा,
तू वार लगा ले पेलो परथमो।।236।।

अरे लंका को राजो रावण दूदा सूमरा सावचेत वै ने सुण ले। थारी हाँडाँ कोलूमंड को ठाकर पाबूपाल राठौड़ चौड़े चौगाने घात लगाई ने लै जावे। थारे में हीमत वे तो पाबू ने रोक ले।

गायक

अतरी तो सुणताँ रावण कोपियो जी रामा,
बाज्या तो बाज्या जंगी ढोल जी।।237।।
रावण की तो फौजा अटाटूट हो रामा,
घेरो तो घालयो चारई खूंट में।।238।।
फौजाँ तो चमकावे खाँडा वीजर्या जी रामा,
भाला तो चमकावे चारी खूँट में।।239।।

वारत–रावण की फौज रो चारी खूँट घेरो देख चाँदा ने दोई हाथाँ में तरवाराँ ढाब चकरी चला दी। जें बी चाँदा रो घोड़ो जावें वे लासाँ रा ढेर वेता जावे। डोमा ने चालया माया रा बाण। डोमा रा बाण यूँ छूटे जाणे आगास ती गड़ा पड़े। देखताँ–देखताँ रावण री फोज धूल घाणी वई गी।

पाबूपाल राठौड़ रो तो भालो चाले, अन रावण रो चाले खाँडो। दोई टकरावे ती वीजरी पड़े। वार पे वार चाल्या। रावण रो भालो खंडत वई ने धरती पे आई पड़्यो। पाबूजी धरमी रावण री छाती पे भालो टेक बोल्या–

नीहत्था ने रण में मारणो रे रावण दूदा सूमरा,
कोनी रे म्हारे धरम में लीखियो।।240।।
कै तो उठा ले खाँडो दूसरो रे रावण, कै तू लगादे पाटी ऊठने।

रावण दूदा सूमरा ने जीवतो छोड़ पाबू केसर कालमी ने रपटाता दरयाव रे मारग पे चाल पड़या। डोमो–चाँदो पाछे घुड़ला रपटाता जावे।

सांडनियाँ घेर पाबू सामर री कोटड़ियाँ पौंच्या। केलम तो मेऽहलाँ चढ़ काका री वाट तके। न अन्न खावे न पाणी पीवे। दूराँ ती पाबूजी री धजा फेहराती देख केलम दे ने ढाँढस बँध्यो। केलमदे मेऽहलाँ ती रेटे उतर माणक चौक में आई। अतरे पाबूजी बी आई पौंच्या। माणक चौक में काका भतीजी री मलनी वी।

पाबूजी

कंठ लगा पाबू कह्यो, सुणो भतीजी सार।
साँडाँ लायो अणगणी, देऊँ करज उतार।।241।।

हतलेवा री हींचणी, माथे छड़यो उधार।
देर–सवेराँ ई सई, ले लेओ उपहार।।242।।
वचना पूरो जाणजे, राठौड़ाँ रा पूत।
नण्दल जी ने केवजे, ओछी कर ली कूत।।243।।
होच हमज ने उचरयो, मने भतीजी बोल।
साँसाँ भल टूटे मगर, टूट सके नी कोल।।244।।

केलमदे ने अतरी वाताँ हमजा पाबूजी वणने हाँडाँ रे मुकाम माता रुण्डी लै गया। वठे ले जा पाबूजी ने केलमदे ती कह्यो–

हमार थारो हतलेवो केलम बेटी वो,
लंका थल ती लायो थारे साँडियाँ।।245।।
आधी तो राती गण ले बाई केलम ए,
आधी तो गणले थारे भूरकी।।246।।
एक सै तो गणवाले थारे चाकराँ ती केलम ए,
बाकी जो रैवे ला म्हारे भाग री।।247।।

काका पाबूजी री वाताँ सुण केलमदे बोल्या–काको सा. म्हने माफी दे देओ। केलमदे पाबूजी रे कंठ लग जारो–जार रोवे। पाबूजी ने वणे धीर बंधा एक मुट्ठी मोराँ मलणी में दे वठा ती विदा वे गोगा जी ती भेंट करवा गया।

गोगा जी ती खूब प्रेम ती गरे मल। वठा ती रुखसत री इजाजत मांगी। गोगाजी ने खूब मनवाराँ करी पण पाबूजी नी ढबया अर भरी दफेर सामर कोटड़ी ती रवाना वै गया। राइको हरदल हाँडाँ हाँक कालूमंड रवाना वई गयो। चाँदा–डोमा पाबूजी रे साथे चाल्या।

फूलांदे अन पाबूजी रो मेल

चव्हाणा री सामर कोटड़ी ती रवाना वे पाबूजी कालूमंड रे मारग चाल पड़या। चाँदा–डोमा पाछे ने पाबूजी आगे। दूजे वासे, अमरकोट री हीम जाई पौंच्या। ऊँचा–ऊँचा कंगूरा देख पाबूजी डोमा ती पूछवा लागा। डोमा ई ऊँचा–ऊँचा मेऽहल कणी राजा रा हे। जावती दाण तो नजराँ नी आया। आपी कठे वाट तो नी भटक गया।

डोमा ने वतायो ई मेऽहल अमरकोट राजा सोढ़ा हूरजमल प्रथीमल रा हे। जावती दाण अंधेरो थो जणती नी दीख्या। आज को मुकाम हामू का हूका बाग में करां। परोड़े चाल पड़ाँल। पाबूजी रा पगफेरा ती हूको बाग हरो वई गयो। मोर पपीड़ा बोलवा

लागवा। कोयल गीत गावा लागी। हूका बाग रे हरयालो वेवा री खबर कुँवरी सोढ़ा फूलाँ दे ने लागी। फूलाँ दे ने दो दासियाँ भेज हेरो करवायो। असा कूण सत पुरख बाग में पधार्या के बरसाँ को हूको बाग हरो वई गयो। दासियाँ हेरो ले पाछी आ सोढ़ी कँवराँ ती बोली–

गायक

बागाँ में भलकारो होयो कँवराँ हो,
फूलाँ तो मेहक्यो हूको बाग जी।।248।।
आतमणे तो अथम्यो दन हूरज हो,
बागाँ में आ वासो कर्यो रात को।।249।।

दासियाँ री वात सुण फूलाँ दे औचकी वई गी। दन ऊगताई शणगार साज संग सेलियाँ लारे ले सोढ़ी कँवराणी बाग में गी। बिरछ री ओट राख चम्पा रेटे बेठ्या पाबूजी रा दरसन कर्या। देखताँइ कँवराणी फूलाँदे पाबूजी पे मोइत वई गी। सोढी संग सेलियाँ ती यूँ केवे–

फूलाँदे

सुणो तो सुणो म्हारी संग री सेल्याँ ए,
बागाँ में तो आया इंदर राज जी।।250।।
हूरज तो भलकावे मूँडे झलमल वो,
आँखाँ में तो चलके चानण वीजरी।।251।।
कठा का तो ई राजा वाजे सेल्याँ वो,
कणी तो जामण रा जाया पूत जी।।252।।
खबराँ तो लइ आवो पूरी सेल्याँ वो,
म्हारे हिरदा में तो उठे हे हिलोर जी।।253।।

फूलाँदे सोढ़ी, संग सेलियाँ ती कँवर पाबूजी को पतो ठिकाणो वस–गोत की खबराँ लावा की बात केवे अतरा में वठे बाग की मालण छोरी आई। मालण ने कँवराणी रो मुजरो कर्यो ने फूलाँ का हार गजरा नजर कर्यो। मालण ने आयो देख कँवराणी फूलाँदे यूँ बोली–

परचै तो वता दे पूरो पको मालण बेनड़ी ए,
कठा का तो आया राजल पाँवणा।
कणा का तो वाजे कंवर के दे ए,
कई तो केवावे वंश वेलड़ो।।254।।

मालण

इंदर तो पधार्‌या कँवराँ पाँवणा,
मूंडा पे भलकारो अजबो अद्‌भुतो।।255।।

मालण छोरी तो पाबूजी को परचै सुण फूलाँदे सेल्याँती यूँ केवे–

गजरा तो गुँथवाओ झटपट सेल्याँ ए,
हार तो गुंथाड़ो फूलाँ राचणा।।256।।
सेवरा तो भाँत वरणा फूलां रा,
मालण ने लै जाओ थाँके लार ने।।257।।

संग सेल्यां ने जटपट भाँत वरणा फूल तोड़ हार, गजरा अनसेवरा गूंथया। फूल गजरा छाब में मेल फूलांदे के हामू आ मेल्या। छाब में ती फूल असा मेहके जाणे इत्तर मेहके। फूलाँदे मालण ती बोली–

धरम की तो मालण तू लागे म्हारी बेना ए,
म्हारा सेवरा तो पुगा दे पाबू राज ने।।258।।

मालण ने छाब तोकी अन चाल पड़ी। मालण ने पूरी चतराई राखी। पेलो हार तो पेरायो केसर कालमी ने। दूजो हार चाँदा जी के नजर कर्‌यो, तीजो हार दियो नायक डोमा ने अन भाँतवरणा सेवरा पाबूजी के नजराँ कर सोढ़ी फूलाँदे रो सनेसो अरज कर्‌यो। पाबूजी ने गरा ती मोत्याँ को हार काढ़ मालण ने ईनाम में दियो अन बोल्या, सुण मालण छोरी–

हमचो तो कै दीजे मालण कंवराँ सोढ़ी ने,
वाट तो नी जोवे पाबूपाल री।।259।।
सत रो तो हतलेवो जुड़यो छोरी मालण ए
वचना ती तो होया फेरा हात जी।।260।।

पाबूजी रो हमचो ले मालण फूलाँदे रे मेरे जा पाउँची। मालण बोली– कँवराणी साथे म्हारी वात सुणो। पाबूजी तो सत का पालनहार अन वचना का राखणहार हे। वी तो जती–सती हे। थें वणा री आसा मति राखो। ऊबे पगे थाँके मेहलाँ ने पधारो।

सोढ़ी कंवरी

सुण ले तो सुण ले तू मालण छोरी ए,
विदना रा लिख्या नी मीटे लेख जी।।261।।

सतका तो औतार पाबू धरमी वो,
सतरा तो हतलेवो म्हने जोड़ ल्यो।।262।।
हतलेवा अन फेरा तो जग रीताँ वो,
मन रा तो भरतार म्हारा पाबू पाल जी।।263।।

फूलाँदे अर पाबूजी रो ब्याव

तीजे वासे कोलूमंड जो पौंच्या। दरबार लागो। सांवत, चाकर, ड्योड़ीवान हगरा रा हगरा हाजर। पाबूजी ने कह्यो–ई हाँडौं राजा रो धनहे। अणा ने चरावा री अन राखवा री जुमेवारी कण पे राखाँ। कोई हामी नी भरे। अटपट्यो जनावर। कोई जाणकार नी हे। हरदल ऊबो वै ने अरज करे। अन्नदाता पाबूजी आप यो काम मने होंप दो। पाबूजी ने हरदल ती कह्यो–मने थारो इज बीसास थो। आज ती हाँडाँ थारे जिम्मे। पाँच गाम अन लीमड़ी को आदी चरणोई थारी जागीर में काढ़ी आगले दन दरबार जुड़्यो। पाबूजी पाट वराज्या।

पाबूजी अर फूलाँदे रो सगपण अने अधूरी परणापत

गायक

लाग्यो हे दरबार पाबू धरमी रो,
चारण तो वरदावे पूरा चाव ती।।264।।
लंका ने तो जीत हाँडाँ लाया जी,
मान तो रखायो केलम देइ रो।।265।।

चारण ने वरद वखाण पूरो कर्यो। पाबूजी री जे–जेकार वेवा लागी। अतरा में अमरकोट रो खवास अन पुरोत रे आवा रा हमचार ड्योड़ीवान ने अरज कर्या। पुरोत ने अम्मरकोट रो नारेर पाबूजी रे हामू कर्यो। होकम वे तो टीको हाजर करौं। पाबूजी कई बी बोल नी पाया। डोमा साँवत ने उठ अरज करी अन्नदाता नारेर तो झेलनो पड़ेगा। आप सोढ़ी राजा अन फूलाँ दे रो मान राखलो। सावतां री मनवार जाण पाबूजी ने नारेर झेल लियो।

गायक

टीको तो झेलायो अम्मर कोट री जी रामा,
विदना ने जोड़ाया मंगल जोड़ जी।।266।।
माऽरत तो कढ़वायो मंगल ब्याव को जी झटपट
जोसी ती लखाया लग्गन ब्याव का।।267।।

पाबूजी रे ब्याव री तैयारियाँ वेवा लागी। चाँदी रे कूँडे केसर घोर्‌यो गयो। केसर रा घोल में पाबूजी रो मोल्यो रंगायो गयो। नौ मण चांवर हरद में रंगाया। नूता भेजणा सरु कर्‌या। पेलो नोतो तो भिजवायो गजानन जी माराज रे। दूजो नोतो क्रसन जी अन रुकमण जी रे, तीजो नोतो रामजी लच्छमण जी अन सीता माता रे, चौथो नोतो सगत भवानी जी रे, पाँचवों नोतो हुणमान जी रे, फेर सतियाँ, जतियाँ, कुल भैरव, पितर, पितराणियाँ, मादेजी, हूरज–चंद्रमाजी कारा अन गोराजी, चोसठ जोगणियाँ जी, सरवरणजी, कावड़िया जी, गंगामाई, समदराँ, नदियाँ, तीरथाँ रे। नोतचारी चौकड़े राज की परजा ने नोत्यो, बेन बेटियाँ, हगा–हमदी नोत्या। धरती, आणास, पाताल रा धारग नोत्या, बासगजी नोत्या, दसी दगपाल, सुमाता–वैमाता नोत्या। पाबूजी री जान चढ़वा लागी। जीमणवार निपट वारात मारगाँ चाली। चारण–भाट वरद बखाणे।

सगत भवानी देवल कछेलन हामू करी ने केवा लागी। आप तो पधारर्‌या जान जोड़ ने आमरकोट। आपने अठे कोटड़ियाँ री रखवारी कण के जम्मे राखी ? चारणी देवल की वात साम्हल पाबूजी बोल्या– चारणी देवल कोटड़ियाँ री रखवाली तो राखी छप्पन भैरव अन चौसठ जोगणियाँ के जिम्मे। तू अठे निहची रइजे। थारी गायाँ की रखवारी म्हारे जिम्मे हे। थारे पे जो बका पड़ जावे तो थूँ हेमरी बण उड़ अन अम्मर कोट आ जाजे। पाबू पाल राठौड़ थारी गायाँ फेर ने पाछी थारे गोठड़े लावेगा। यो पाबू रो कोल है–

दे दे तू आसीस सगत भवानी वो,
थारी तो आसीसाँ आऊँ तोरण वींद ने।।268।।
परणी ने तो लाऊँ सोढ़ी फूलाँ दे,
मान तो राखूँला राठौड़ी राज रो।।269।।
तू रइजे तो बीसासी सगत भवानी ए,
बीसासी तो रइजे थारे हीवड़े।।270।।
जे चूकेगा पाबू वचना कोलाँ ती,
दूद तो लाजेगा जामण बाई रो।।271।।
वचना जो चूके यो पाबू सूण ले ए,
गरने वइ जावे पाणी लूण ज्यूँ।।272।।

पाबूजी रा वचन सुण देवल चारणी बीसासी वे आसीस दे पाबूजी री आरती उतार वदा कर्‌यो। भवानी देवल चारणी री आसीस ले पाबूजी जान जोड़ केसर कालमी पे असवार वै मारगाँ चाल्या। मारग में अवसगन वेवा लागा। डावें तो हीयार बोल्या, जीमणे

तीतर बोल्या। दन के उजाले आतमणे तारो खंडायो। आगे चाल्या तो मारग में न्हार ऊबो। न्हार ने देख वारात में भागम–भाग मचगी। पाबूजी मुलकाया। डोमो घोड़ी ती कूद न्हार के हामूँ आयो ने खाँड रा वार ती न्हार री गाबड़ काट दी। न्हार ने मर्‌यो देख पाबूजी रोस में आया– अरे डोमा थने यो कई करदियो, अरे यो न्हार तो सगत भवानी की असवारी हे। यो तो आपणे अगवानी में सगत माता ने भिजवायो। अणने तो जीवाणो पड़ेगा। चाँदा–डोमा थें जटपट न्हार रो माथो गाबड़ ती जोड़ो। मूँ अण ने जींदो करुँ। डोमा–चाँदा ने लोथ ती माथो जोड़ दियो। पाबूजी ने आद भवानी सगत माता रो हुकम ले भाला की नोग कटी गाबड़ पर फेर न्हार ने जिंदो कर दियो। न्हार ऊबो वई गयो। पाबूजी माराज ने न्हार ती खम्मण कर कह्यो– हे न्हार देवत थें म्हाँने माफी दे दो। अबे आप सगत भवानी रा दरबार में पधारो। वठेऽज आपणी मुराकात वेगा। न्हार तो गयो वन में। वारात आगे चाली अने दूजे वासे अम्मरकोट जा पऊँची। खूब अगवानी वी, ढोल नगारा वाजवा लागा। परोताँ रा मंगलाचार वेवा लागा। मंगल गीताचार वेवा लागी। वारात रो मुकाम हरियाला वाग में दियो गयो। खूब मिजमानियाँ वेवा लागी। अंतर–फुलेल मेहकवा लागा। नीरत गाण वेवा लागा। पूतरियाँ, नटणियाँ नीरत करे। वारातियाँ ने रिंजावे। जानी मोजाँ करवा लागा। जण री जसी सोक–मौज थी वा वेवा लागी।

जोसी माराज रे मेऽल के माणक चौक में चँवरियाँ मांडी। होना–रूपा री चार खूँटियाँ रोप दी। ऊपरे रेसम पाट रा पटूका ताण्या। केरा पाना ती मंगल चँवरियाँ तैयार करी। होम रो कुंडो बणायो।

पाबूजी जान चढ़ा तोरण पधार्‌या। तोरण वंदायो। सासूजी ने मंगल आरती उतारी। हुआगणा ने मंगलगीत गाया। सासूजी ने पाबूजी की निवछारल करी। नौ धोबा मोती अन नौ धोपा मोहराँ भेंट करी। पाबूजी चँवरियाँ वराज्या। हतलेवो जुड़्यो। सोढ़ी फूलाँदे अन पाबूजी असा बेठ्या जाणे गौरा ने मादे। लच्छमी ने विस्नु जी। इन्दर राजा अन सची रानी बेठ्या वे। खूब डायचो हतलेवा में छड़्यो। फेरा वेवा लागा–

गायाँ रा रखवारा पाबू धरमी

गायक

पेलो तो फेरो लियो जी पाबू साबतो जी कोई,
दूजा में तो पड़्यो वीघन खोटलो।।273।।
उड़ती तो आ पउँची देवल वणने हेमरी जी कोई,
होई तो परगट चँवरियां बीच जी।।274।।

सुणो तो सुणो पाबू पाल राठौड़ाँ जी ऽऽ
म्हारी सुरभी गायाँ तो लइ गयो खीची घेर ने।।275।।
वचना का हाँचोड़ा पाबू हुण लो जी,
गायाँ तो थें लाओ पाछी घेर ने।।276।।

पाबूजी

क्यूँ तो कुरलावे देवल चारिणी बेना ए,
मन में तो राखो थोड़ो ढाढ़ जी।।277।।
गायाँ तो ले आऊँ थारी फेर ने ए देवल सगति ए,
फेरा तो फरुँगा पाछो आई ने।।278।।
जीजा तो लागे म्हारा खीची जीणा जी,
पेमा तो लागे हे म्हारी बेनड़ी।।279।।
खौची ने नी मारूँ गायाँ लाउँ ए,
अम्मर तो राखूँ पेमा रो चूड़लो।।280।।

डोमा चाँदा थें जटपट घोड़ा भीलड़ लो। म्हारे आवा तक गायाँ रा घाड़ेती खीची ने ढाबो। मूँ थाँके पाछे–पाछे आऊँ। डोमा–चाँदा घोड़ा रपटाता जा पउँच्या। खीची जीण जी रे ललकार लगाई।

डोमा–ढब जाओ ओ खीची धाड़वी, हो जाओ हुसियार।
डोमो ऊबो हाम ने झेलण थारो वार।।281।।
हीमत वे तो आ भिड़ो, ले खाँडा ने हात।
हूनी कोटाँ देखने, खूब लगाड़ी घात।।282।।
मान घटायो रजपूती रो, लायो गायाँ घेर।
धिग रे खीची चोरड़ा, लेओ घाघरो फेर।।283।।

डोमा रा अतरा ओछा बोल सुण जिनराज खीची खाँडो लेहरातो डोमा रे हामू आ डट्यो। डोमा अन खीची भिड़ गया। चाँदो दोइ हाथाँ में तरवाराँ ले चकरी चलावा लागो। खीची री फौजाँ यूँ ढरे जाणे वाड़ रो खेत ढरे। अतरा में पाबूजी केसर कालमी असवार आ पउँच्या।

पाबूजी

पाबूजी आ पौंच्या केसर पे असवार।
चाँदा ने परमो हटा, झेल्यो खीची वार।।284।।
गायाँ पाछी फेर दो, जीजा मानो वात।

अमर काँचरी बेनकी, नी कर पाऊँ घात।।285।।
सगत भवानी देवली, मूँ वचना रो दास।
सौगंध खाइ लूण री, हिरदे हे बीसास।।286।।

खीची

घोड़ी देओ कालमी, गायाँ देऊँ फेर।
म्हारी घोड़ी घेर ने, थाँने बांध्यो वेर।।287।।

पाबूजी

मूँ बंध्यो मरजाद में, पेमा म्हारी बेन।
फेरे लाँबी काँचरी, तो म्हने सरापे वेण।।288।।
सगत भवानी कालमी, सगत होए असवार।
थें घाड़ेती ठेठ रा, पाप कमावण हार।।289।।

पाबूजी रा असा तीखा बोल सुण खीची रोस में भरि उठ्यो। आँखाँ ती झाराँ फूटवा लागी। पाबूजी पे वार पे वार करवा लागो। पाबूजी वार झेले पण फलटवार नी करे। मोको देख पाबूजी ने एक असो जोर रो वार कर्‌यो के खीची रो खाण्डो दो टूक वै धरती पे जाई पड़्यो। पाबूजी ने खीची री छाती पे खाँडो अड़ा दियो। वणा ने डोमा–चाँदा ती कह्यो–थें गायाँ घेर ने गोल्ये मथाणिये री वाट चालो। मूँ पाछे–पाछे आऊँ। हाल जीजाजी रो नेग चुकाणो बाकी है। डोमा–चाँदा गायाँ घेर चाल पड़्या। अतरा में पाँच–पच्चीस बाण पाबूजी रा डील में आइ धस्या। पाबूजी ने कह्यो खीची मूँ थाँने जीवतो छोडूँ। वणा ने एक हात ती बाण काढ़ ने परमा फेंक्यो। खीची जीजा सुणो। देवली री गायाँ तो म्हारे कबजे वई गी। मूँ छाऊँ तो थाँको कारजो फाड़ सकूँ। अबे म्हने तो जीवा को अन मरवा री होज नी हे।

पाबूजी

रोम–रोम बींध्ये ए जीजा, कोलाँ वचना पारताँ,
नी फाडूँ थारी छाती ए जीजा, नी फेराऊँ पेमा ने लांबी काँचरी।।290।।
फोजाँ तो थारी मरी खुटी ए जीजा, तू दे दे पाटी जोर री,
जाओ पाछा थाँका धराँ ने ओ जीजा, वाट तके म्हारी बेनड़ी।।291।।

पाबूजी री वात सुण खीची को माथो नम गयो। पिराण राख खीची पाटी दे पड़तो–गुड़तो घर री गेल भाग चाल्यो। पाबूजी केसर पे असवार वई गोलिये मथणियें जाई पौंच्या। देवल भवानी चारणी री गायाँ वण ने होंप वचना ती मुगत क्या।

पाबूजी

हामारो थारी सुरभी गायाँ ए देवल,
वचना ती तो देओ म्हाँने छूट जी।।292।।
आयो हे वेवाण लेवा सरगाँ ती,
म्हे तो जावाँलो म्हाँके देस ने।।293।।

चरणी देवल

पाछाँ तो फेरो यो वीवण पाबू धरमी हो,
सगत भवानी रगसा राख ले।।294।।

पाबूजी

वचना रो तो पालन होयो सगत भवानी वो,
सोढ़ी फूलाँ रई गी अपरणी बापड़ी।।295।।
जनमा का तो जोग विधना लिख्या वो,
धीरज तो बंधाजो फूलाँ देइ ने।।296।।

देवल चारणी

म्हारी सगत ढाबूँ गा थाँका जीव ने जी पाबू धरमी वो,
विरद वखाणू देवत आपरी।।297।।
भूलाँ की तो माफी दे दो धरमी को,
देवल तो वरदावे पाबू आपने।।298।।

सगत भवानी री अरज मान पाबूजी पाट वराज्या। देवली भवानी कछेलन ने आरती उतारी। कंकू को तलक कर्‌यो। आँखाँ मूंद बेठगी अन पाबूजी री वरदावली बखाणवा लागी। वचना का पालन हार, गायाँ का गुवार, लछमण जी का सेस औतार धरम धारक सूरमा पाल पाबूजी ने सगत भवानी कछेलन देवली रा परवाड़ा हुण्या। परवाड़ा हुण्या बाद बोल्या देवली अबे थारी माया हमेट। वेवाण खोटी वे। म्हाने म्हाँके देस जावा दे। चारणी चेतमान वी अन केवालागी। म्हें तो जावाँ म्हाँके देस।

देवल

जावा दो वेवाण, पाबू धरमी हो,
केसर तो ले जावे थाँके देस ने।।299।।
राजा–राजी जाओ थाँका देस पाबू धरमी हो,
अम्मत रो रेवेगा थाँको नाम जी।।300।।
खड़े–खड़े देवरा थरपावे थाँका चाकर हो,

धजा तो फेहरे ला थाँका नाम री।।301।।
सत राख्यो पत राखी दाता पाबू हो,
वचना रा तो पाका अम्मर नाम जी।।302।।
गौआँ का रखवारा सतरा धारी हो,
जुग–जुग तो रेवेगा अम्मर नाम जी।।303।।
पेलाँ जेसा आया वेसा आजो जी,
वेगाँ–वेगाँ आजो हेलो पाड़ताँ।।304।।
हेलो जो पाड़ो तो पाबू आवे जी,
हिरदा में बीसास पूरो राखजो।।305।।
दुखियाँ रो तो हेलो सुणताइ आवाँजी,
आरत री पूकार पाबू आवसी।।306।।
देवल थें हो सगत भवानी म्हाने जाणी हो,
वका जो पड़े तो हेला पाड़जो।।307।।

देवल चारणी ने कह्यो देवत पाबू पाल धरमी आप भले सरगाँ पधारो पण म्हाँक पे जद वका पड़े तो हेलो सुणताई मदद पे पधारजो। पाबूजी ने देवल चारणी के बीसयो। दुखियाँ रो हेलो सुणताइ मूँ आऊँला यो पाबू का वचन जाणजो। असो के पाबूजी जावा लागा। डोमा–चाँदा अणमण्या ऊबा, न बोल सके न चाल सके।

गायकी

अणमण्या क्यों ऊबा भाया म्हारा हो,
आवण अर जावण तो जग री रीत जी।।308।।
ऊग्यो जो हूरज ऊ आथम जावे हो,
छाया अर माया रो चाले खेल जी।।309।।
म्हें तो जावाँ म्हाँके देस सुण लो डोमा–चाँदा हो,
थें बी राजी–बाजी जाजो थाँका देस ने।।310।।
हरदल ने तो कीजो रामासामी हो,
वंस तो राखूँला वण रो नामजी।।311।।

अतरो के पाबू धरमी केसर कालमी रे मेरे गया। केसर की पीठ पे हाथ थपथपायो। चारणी कछेलन देवली ने हात जोड़ धरमी पाबू जी के वदा कर्यो। पाबूजी केसर कालमी पे असवार होया। आगास में संख–घड़ियाल वाजवा लागा। वेवाण तो चाल्यो आगे अन पाबूजी की असवारी पाछे–पाछे चाली। पाबूजी री औतरी लीला पूरी

वी। पाबूजी सरगाँ सिधार्‌या। देवली कछेलन ने पाबू धरमी रा बखाण गामो–गाम बखाण्या।

धन तो देवल चारणी जण ने धरमी पाबू री वरद वखाणी धन या धरती जठे पाबूजी ने लीला करी। धन हे जावण कंवलाँदे जणा री कोख ती धरमी पाल पाबूजी जलम्या।

पाबूजी माराज री जे।
वचना का पालनहार री जे।।312।।
सोढ़ी रा भरतार री जे।
जुद्ध सूरमा खाँडा धार री जे।।313।।
गाम राम री जे।
पंचा पाँवणा री जे।।314।।

भला नाम ठकाराँ, पाबूजी रा सुणे, सांभले जाँका रा। सुणे अदाता री कथा चित्त लग आवे ई वाह! वधे धन अन पाप रो खोज जावे। मंडगी हे ठाकर रे पाबूजी री जोत। उठे भाग जावे बारां बरसां री बस्ती खेड़ा री चौथ। हगरा रो होवे सुभ। रोग–रोग मिट जावे। नेम धरम ठिकाणे रेहवे।

टीप– लंका सिंध क्षेत्र (अब पाकिस्तान) में लंकाथली राज्य था। वहाँ दूदा सूमरा का राज्य था। उसे वहाँ रावण का अवतार माना जाता था। उसके आचरण के कारण लोग उसे रावण ही पुकारते थे। पाबूजी लक्ष्मण (शेष) का अवतार माने जाते हैं। सोढ़ी फूलांदे– शूर्पनखा का अवतार मानी जाती है। इस जन्म में भी लक्ष्मण(पाबूजी) से उसका विवाह नहीं हो सका। डोमा हनुमान जी का अवतार माना गया। चाँदा–भैरव का रूप माना गया।